रुपया, रूप और रोटी

Rupiya, Roop Aur Rotti

विनोद रस्तोगी

Vinod Rastogi.

प्रकाशक
नवयुग प्रकाशन
दिल्ली

Nav yug Parkashan
Delhi

रुपया, रूप और रोटी

Rupiya, Roop Aur Rotti

विनोद रस्तोगी

Vinod Restogi.

प्रकाशक

नवयुग प्रकाशन

दिल्ली

Nav yug Parkashan

Delhi

मूल्य—पाँच रुपये, पचास नये पैसे

प्रकाशक—नवयुग प्रकाशन, दिल्ली
मुद्रक—राज आर्ट प्रेस, दिल्ली

चूँगा।

नहीं ! नहीं !! नहीं !!!

चलते-चलते उसने गर्दन को दृढ़ता से झटका दिया और फिर जूती टरे की गली में घुस गया।

"आज बहुत ढीले हो, मुरारी भैया !" गली के पान वाले ने टोका।

"हूँ···नहीं तो।" वह चौंक कर बोला। "गर्मी भी तो देखो। आग बरस रही है, आग।"

और मुरारी पान वाले की दूकान पर रुक गया।

"ऐसी गर्मी अपनी याद में तो देखी नहीं, भैया।" पान वाला अपने गन्दे अंगौछे से पसीना पोंछता हुआ बोला। "सुना है, एक बार शाहजहाँ के जमाने में पड़ी थी। जमना सूख गई थी तब।"

बेमतलब की बात सुनकर मुरारी ऊब गया।

उसे चलने को उद्यत देख पान वाला बोला—"आज तो बरफ पीने की बहार है, भैया ! दे दूं ?"

"दे दो एक आने की।" कह कर मुरारी ने इकन्नी दूकान पर फेंक दी।

"और बीड़ी-माचिस···?"

"बीड़ी तो हैं अभी सात-आठ ! हाँ, माचिस···।" और फिर पैन्ट की जेब से माचिस की डिबिया निकाल कर मुरारी ने बजाई। "माचिस भी है अभी ! रात कट जायेगी।"

ढाक के पत्ते में बर्फ लेकर मुरारी चल दिया। गली के छोर पर ही उसका घर था।

मस्तक का पसीना पोंछ कर उसने द्वार पर दस्तक दी और फिर द्वार खुलने की प्रतीक्षा करने लगा।

दो मिनट का समय मुरारी को दो युगों सा लगा।

उसने फिर द्वार खटखटाया—इस बार अपेक्षाकृत जोर से।

द्वार खुल गया। मुरारी अन्दर गया। माया आँगन में बिछी चटाई पर लेट गयी।

मुरारी ने देखा, माया उदास है; चेहरा धुँधला पड़ गया है जैसे चाँद को ग्रहण लगा हो; गोरा-चिट्टा रंग झुलसा गया है मानो कमल पर हिमपात हुआ हो।

"आज तो घर कुम्हार के आँवाँ की तरह दहक रहा है।" चप्पल उतार कर स्टूल पर बैठता हुआ मुरारी बोला। 'बरफ ले आया हूँ। ज़रा पानी तो बना लो।"

माया ने सुन कर भी नहीं सुना। उसी प्रकार लेटी रही।

मुरारी ने कमीज उतार कर अरगनी पर सूखने के लिए फैला दी। पैन्ट उतार कर गंदी लुंगी पहन ली।

"क्यों, तबियत तो ठीक है?" पेन्ट अरगनी पर टाँगते हुए मुरारी ने पूछा।

'तुम्हारी बला से।" कह कर माया ने मुंह दूसरी ओर कर लिया।

मुरारी मौन रहा। वह जानता था कि यदि उसने कुछ भी कहा तो नित्य की भाँति हाय-तोबा मच जायेगी; रोना-धोना शुरू हो जायेगा। चुपचाप बरफ़ धोयी और पतीली में पानी भर कर बरफ़ उसमें छोड़ दी। पतीली स्टूल पर रख कर हाथ-मुंह धोने लगा।

हाथ-मुंह धोने के बाद वह कुछ स्वस्थ हुआ। शीशे के गिलास में शीतल जल भर कर माया की ओर बढ़ाते हुए बोला—"लो, पानी पी लो।"

माया उसी प्रकार लेटी रही—आँखें बंद किये, पसीने से तर।

"सुना नहीं?"

"मुझे प्यास नहीं है। तुम्हीं पियो।" माया के स्वर में रूखापन था।

"आखिर इस क्रोध का कारण क्या है?" गिलास फर्श पर रख कर मुरारी ने पूछा।

माया मौन रही।

"कुछ बोलोगी भी या यों ही लेटी रहोगी?" मुरारी चिढ़ कर बोला।

"बोलूँ उसके सामने जो कुछ सुने।" कह कर माया उठ कर बैठ गई।

"मैं बहरा हूँ?" आवेश में आकर मुरारी टहलने लगा।

"तुम्हें शाम को भी यह घर आँवाँ सा लगता है और मैं···मैं क्या करूँ? तुम तो दफ्तर जाकर खस की टट्टियों में बैठ जाते हो। कभी यह भी सोचा है कि तपती दोपहरी में मेरा क्या हाल होता है। अंग-अंग भुन जाता है, पर···पर तुम्हें मेरे सुख-दुःख का क्या···?" और माया अपनी बाहों में मुँह छिपा कर सिसकने लगी।

मुरारी टहलता रहा !

माया सिसकती रही !!

"इतने बड़े आगरा शहर में तुम्हें कोई दूसरा मकान ही नहीं मिलता।" कुछ देर बाद माया फिर बोली। "इस मकान में तो जीना दूभर है। जाड़ों में धूप के दर्शन नहीं होते; गर्मियों में दिन भर धूप भरी रहती है; बरसात में कमरे में गंगा-जमुना भर जाती है।"

मुरारी को इन कष्टों का ध्यान न हो, ऐसी बात न थी। वह स्वयं समझता था कि जिस मकान में वह रहता है वह इन्सानों के लिए नहीं, जानवरों के लिए है। पर क्या करे! मजबूर था। इन्सान हो कर भी जानवर की जिन्दगी गुजार रहा था।

"तुम समझती हो मुझे चिन्ता नहीं है?" बेबसी के स्वर में मुरारी बोला। "मगर मैं क्या करूँ? बीस रुपये देना ही हड़ जाता है। और अधिक किराये का मकान कैसे लूँ?'

माया मौन रही। तरह-तरह के विचार उसके मस्तिष्क में आते-जाते रहे।

"तो एक पंखा ही ले लो!" कुछ देर बाद वह बोली।

"सौ-सवा सौ से कम का कोई पंखा भी नहीं मिलेगा।" मुरारी माया के पास ही चटाई पर बैठ कर बोला। "अब तुम्हीं सोचो, हम पंखा कैसे ले सकते हैं?"

बेबसी की रेखायें कुछ और गहरी हो गयीं। मुरारी के मुख से एक दीर्घ निःश्वास निकल गया।

"और लोग कैसे लेते हैं?" माया खीझ कर बोली। "तुम्हारे ही दफ्तर का शर्मा भी तो रहता है इसी कटरे में। 'कूलर' लगा रक्खा है घर में।"

"और वह पत्नी के लिए रेशमी साड़ियाँ लाता है; ज़ेवर बनवाता है! क्यों···?" अजीव से स्वर में मुरारी बोला।

"हाँ! और दूसरे-चौथे दिन सिनेमा देखने जाते हैं वे लोग।" माया दृष्टि नीची करके धीमे स्वर में बोली।

"उनके यहाँ खाना बनाने के लिए महराजिन है; बर्तन धोने के लिए महरी है; बच्चा खिलाने के लिए आया है! यही न···।"

"हाँ···हाँ···हाँ! और वह कोई बड़ा साहब तो है नहीं। तुम्हारी ही तरह वह भी बाबू ही है।"

"और मैं न अच्छा मकान ले सकता हूँ, न पंखा; न साड़ियाँ ला सकता हूँ, न ज़ेवर; न महराजिन रख सकता हूँ, न महरी! और कुछ कहना है?" आवेश के कारण मुरारी का स्वर काँप उठा।

"आखिर शर्मा यह सब कैसे कर लेता है?" माया का स्वर धीमा था।

"वह बेईमान है; घूसखोर है!" मुरारी चीख कर बोला। साँस की गति तीव्र हो गई; वह हाँफने लगा।

"तुम ईमानदारी का ढोल पीटते रहो। मैं पूछती हूँ, क्या बदला मिलता है ईमानदारी का? ग़रीबी, भूख, बेबसी, आँसू···।" बोलते

बोलते माया का स्वर अवरुद्ध हो गया और आँखों से आँसू झरने लगे—सावन की झड़ी की तरह !

मुरारी ने फर्श से गिलास उठाया और उसे एक ही साँस में खाली कर दिया। सूखा हुआ कंठ तर हुआ; अन्तर में आग सी दहकती हुई प्यास कुछ शान्त हुई।

"तुम्हें सच्चाई का बदला बेबसी, आँसू, दुःख, दर्द में ही दिखाई देता है।" खाली गिलास स्टूल पर रख कर मुरारी बोला। "आत्म-संतोष का सुख तुम क्या जानो ? यही हम दोनों में अन्तर है।"

मुरारी की बात सुन कर माया चिढ़ गई। हृदय-सागर में क्रोध का ज्वार आ गया। आँखों के डोरे लाल हो गये। अधर काँपने लगे।

मुरारी ने फिर गिलास भरा और पानी पीने लगा।

बाहर, गली से फल वाले की आवाज़ आई—"शरबती फ़ालसा ! ठंडी मीठी लीची !!"

मुरारी ने द्वार की ओर देखा, उठ कर पैन्ट की जेब से बीड़ी-दियासलाई निकाली और बीड़ी सुलगा कर आँगन में टहलने लगा।

"तुम अपनी ईमानदारी और सच्चाई लिये बैठे रहो और मैं…! देख लेना, किसी दिन अनर्थ हो जायेगा इस घर में।" माया तेज़ स्वर में बोली।

मुरारी ने माया की ओर देखा, बीड़ी का धुँआ मुँह से निकाला और फिर टहलने लगा।

पति की उपेक्षा ने पत्नी के क्रोध में घी का काम किया। तिल-मिला कर, आक्रोशयुक्त स्वर में बोली—"मैं इस घर से, इस जीवन से तंग आ गयी हूँ। मेरा रोम-रोम गीले ईंधन की तरह सुलग रहा है। अभी तुम्हें धुँआ नहीं दिखाई देता मगर एक दिन…एक दिन…।" और अपना वाक्य अपूर्ण छोड़ कर माया फिर सिसकने लगी।

"क्या होगा एक दिन, ज़रा मैं भीं तो सुनूँ…?" मुरारी ने उपेक्षा

और लापरवाही से पूछा।

"इस नरक से मैं ऊब गई हूँ..."

"घर को स्वर्ग या नरक बनाना स्त्री के ही हाथ में होता है।" मुरारी सीधे-साधे लहज़े में बोला। "जिस घर के द्वार पर थके-हारे पति का स्वागत करने के लिए अधरों पर मुस्कान लिए पत्नी खड़ी रहती है, वही स्वर्ग है।"

"और पत्नी के सुख-दुख की चिन्ता रखना पति का भी धर्म है।" माया उठ कर बोली। 'जिस पत्नी की आँखों को पति ने आँसू ही दिए हों, वह अधरों पर मुस्कान कहाँ से लाये ?"

मुरारी को लगा, जैसे उसके गाल पर माया ने तमाचा मार दिया हो। अपनी सीमाओं पर क्रोध आ गया, आँखों में आँसू आ गये।

अभी तुम मेरी बात पर ध्यान नहीं देते हो! मगर मैं कहती हूँ, किसी दिन दफ्तर लौटने पर तुम्हें मैं नहीं, मेरी लाश मिलेगी।"

माया की बात सुन कर मुरारी चौंक पड़ा। बीड़ी बुझा कर फेंक दी। माया का हाथ अपने हाथ में लेकर रुद्ध कंठ से बोला—"ऐसा न कहो, माया, ऐसा न कहो! मेरी मजबूरियों को समझो! जो कुछ मिलता है उससे रोजमर्रा की जरूरतें ही पूरी नहीं हो पाती, फिर शौक और आराम की चीज़ें कैसे जुटाऊं ? कुछ सोचने-समझने की कोशिश करो।"

माया ने धीरे से अपना हाथ खींच लिया।

"यह न समझो कि मैं तुम्हें अच्छी-अच्छी साड़ियों में देखना नहीं चाहता। मेरी भी इच्छा होती है कि तुम्हारे लिए आभूषण बनवाऊँ, अच्चे-अच्छे वस्त्र लाऊँ; हम लोग अच्छे मकान में रहें; घूमें-फिरें। मगर यह सब हो कैसे ? घूस की कानी कौड़ी भी छूना पाप है मेरे लिए! मेहनत की कमाई का ही भरोसा है। अगर भगवान ने चाहा तो कभी न कभी...।"

"कभी-न-कभी सुनते-सुनते तो चार साल हो गये।" मुरारी की बात बीच में ही काट कर माया बोली। "धीरज की भी सीमा होती है। ज़रा सोचो तो, शादी से पहले हमने क्या सपने देखे थे···। और आज आज कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं···।" माया का गला भर आया।

मुरारी की आँखों में भी अतीत के चित्र घूम गये। संयत होकर धीमे स्वर में बोला—"मैं जानता हूँ, माया! मगर धीरज रखने के सिवाय और चारा ही क्या है?"

"है क्यों नहीं?" माया मीठे स्वर में समझाती हुई बोली। "अपने आदर्शों को तिलांजली देकर बहती गंगा में हाथ धोओ।"

"यह तुम कह रही हो, माया, तुम···! तुम्हें क्या हो गया है?" मुरारी दुखी स्वर में बोला।

"समय के साथ चल कर ही हम ज़िन्दा रह सकते हैं। आज के युग में शरीफ वही है जो साफ कपड़े पहनता है, जिसके पास पैसा है।" माया ने फिर समझाया। "तुम्हीं देख लो! कटरे भर में शर्मा का मान है। तुम्हें पूछता है कोई टके को भी?"

मुरारी इस कटु सत्य के विष का तीखा घूंट पीकर रह गया। माया की बात में सच्चाई थी। वह जानता था कि वह मोहल्ले भर की उपेक्षा का पात्र है! दफ्तर में भी उसकी कोई इज्ज़त नहीं। और तो और चपरासी तक उसे कुछ नहीं समझते। क्यों? क्योंकि वह अच्छे वस्त्र नहीं पहनता, शान-शौकत से नहीं रहता।

और शर्मा?

उसका मोहल्ले भर में भी मान है और दफ्तर में भी! बड़े बाबू उससे सलाह लेते हैं; चपरासी उससे डरते हैं।

मगर क्या शर्मा के पास आत्मसम्मान है? क्या वह आँखें उठा कर चल सकता है? नहीं, कभी नहीं! क्योंकि जिसका हाथ आगे फैलता है उसकी··आँखें झुक जाती हैं, उसका आत्मसम्मान मर जाता

है ! शर्मा अपनी आत्मा बेच चुका है, अपने आदर्शों का गला घोंटें चुका है !

"क्या सोच रहे हो ?" प्रसन्न स्वर में माया ने पूछा। उसने समझा कि मुरारी के दिल में उसकी बातें घर कर रही हैं।

"कुछ भी नहीं।" अपने आन्तरिक भावों को छिपाते हुए मुरारी ने उत्तर दिया। "पानी पीलो माया ! गरम करने से क्या लाभ ?"

माया ने गिलास में पानी भरा और पी लिया। प्यासी तो थी ही। जान में जान आयी। दूसरा गिलास भी भर कर खाली कर दिया।

"मेरी बातें तुम्हें बुरी तो लगती होंगी ?" खाली गिलास स्टूल पर रख कर माया मीठे स्वर में बोली। "मगर मैं स्त्री हूँ ! क्या करूँ... चुप रहा नहीं जाता।"

मुरारी चटाई पर बैठ गया। उसके मन में भयंकर तूफान उठा था।

"चतुर लोग साध्य को देखते हैं, साधन को नहीं।" मुरारी के पास ही बैठ कर माया ने कहा। "आज आदर्शों का नहीं, अर्थ का युग है।"

"तुम चाहती हो कि अर्थ के लिए मैं अपनी आत्मा बेच दूं ?" मुरारी ने माया की दृष्टि से दृष्टि मिला कर पूछा।

"इसमें हर्ज क्या है ? सभी ऐसा करते हैं।"

"करते होंगे ! मगर मैं ऐसा नहीं कर सकता।" मुरारी के स्वर में दृढ़ता थी। वह एक झटके के साथ खड़ा हो गया।

"तो पहले अपने हाथों से मेरा गला घोंट दो ! फिर जो जी में आये सो करना।" खड़ी हो कर साश्रु नयनों से मुरारी की ओर देख कर माया बोली।

मुरारी को चक्कर सा आने लगा।

क्या यह वही माया है जिसने उससे प्रेम-विवाह किया है।

माया में इतना परिवर्तन क्यों ?

क्यों ?

क्यों ??

"तुम मुझे पागल कर दोगी, माया।" मुरारी चीख कर बोला और फिर तेज़ी से बाहर निकल गया।

माया कुछ देर तक खुले द्वार की ओर देखती रही और फिर चटाई पर लेट कर फूट-फूट कर रोने लगी।

२

***

जब मनुष्य सुखी और संतुष्ट होता है तब वह वर्तमान के जाले में ही फँसा रहता है। उसे न अतीत की स्मृति ही सताती है और न भविष्य की चिन्ता। वह अपने 'आज' में ही खोया रहता है। इसके विपरीत जब वह दुखी व्यथित और असंतुष्ट होता है तब अतीत और भविष्य दोनों ही साकार उठते हैं। एक ओर बीते हुए कल की स्मृतियाँ मन को कचोटती हैं तो दूसरी ओर आने वाले कल की चिन्तायें दिन का चैन और रात की नींद छीन लेती हैं! मुरारी अपने वर्तमान से दुखी था, पीड़ित था। माया की बातों का आघात सहन करने की क्षमता उसमें न थी। जीवन की कटुताओं, विवशताओं और सीमाओं से मुक्ति पाने के लिए उसने अतीत का आश्रय लिया।

आकाश में तारे जगमगा रहे थे। हवा भी चलने लगी थी। पार्क मोहल्ले के बच्चों, जवानों और बूढ़ों से भरा था। बच्चे उछल-कूद कर खेल रहे थे; जवान परस्पर हास-परिहास कर रहे थे; बूढ़े गुमसुम बैठे अपनी युवावस्था के रंगीन दिनों की मीठी-मीठी यादों में खोये थे। मुरारी था तो २५-२६ वर्ष का जवान, पर उस समय वह बूढ़ा बना हुआ था। पार्क के एक कोने में, घास पर बैठा हुआ अतीत-पुस्तिका के पृष्ठ उलट रहा था।

उसके पिता अलीगढ़ में नौकरी करते थे। वह वहीं पढ़ता था। कोई भाई-बहन था नहीं; माँ की ममता और पिता के प्यार का एकमात्र अधिकारी था। माँ अक्सर बीमार रहा करती थी। पिता के वेतन का

अधिकांश भाग माँ के इलाज में ही व्यय हो जाता था।

हाई स्कूल का परीक्षा-फल निकला। वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ था। हर्ष का पारावार लहरा उठा। पर दूसरे दिन ही दुख का भयंकर तूफ़ान आ गया। लम्बी बीमारी के बाद माँ का देहांत हो गया।

पिता की इच्छा थी कि मुरारी पढ़ना छोड़ कर कोई छोटी-मोटी नौकरी कर ले। पर उसके मन में पढ़ने की लगन थी, आँखों में बी० ए० एम० ए०, करके डिप्टी कलक्टर बनने के स्वप्न थे। उसकी हठ के आगे पिता को झुकना पड़ा!

किसी प्रकार उसने द्वितीय श्रेणी में एफ० ए० भी पास कर लिया।

और तभी एक दिन फिर बज्रपात हुआ। हृदय-गति रुक जाने से पिता भी परलोकवासी हुये। उसकी कमर टूट गई; आँखों के सामने अँधेरा छा गया।

मोहल्ले वालों ने समझाया—पढ़ाई में क्या रखा है, कहीं नौकरी करके पेट पालने का उपाय करो। मगर उसने विश्वविद्यालय में नाम लिखाने का दृढ़ संकल्प किया। घर का रहा-सहा सामान बेच कर रुपये जुटाये और जुलाई में बी० ए० में नाम लिखा लिया।

मोहल्ले के दो-एक भले आदमियों ने अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए उसे रख लिया। ट्यूशन से पचास-साठ रुपये मिलने लगे। न फीस की फिक्र रही, न खाने-पहनने की।

उसी वर्ष माया ने भी बी० ए० में दाखिला लिया था।

मुरारी ने देखा कि और लड़कियाँ तो बन-सँवर कर आती हैं, शोख-चंचल अदाओं से लड़कों को अपनी ओर आकर्षित करने की चपल चेष्टायें करती हैं; परन्तु माया सदा दृष्टि नीची रखती है, सादे वस्त्र पहनती है। उसकी सरलता और सादगी के प्रति कुछ कुछ आकर्षण हुआ उसके हृदय में।

"तेल मालिश!" चम्पी वाले के तेज स्वर ने उसकी विचार धारा

भंग कर दी।

उसने देखा कि पार्क में बच्चे बहुत कम रह गये हैं, बूढ़े भी धीरे-खिसकने लगे हैं; हाँ, जवानों के क़हकहे अब भी गूँज रहे हैं। वह अँगड़ाई लेकर घास पर लेट गया।

अतीत के चित्र उसके मन की आँखों के सामने फिर एक-एक करके आने लगे।

अगस्त की एक शाम !

बगल में पुस्तकें दबाये, दृष्टि नीची किये माया पैदल ही घर जा रही थी। लगभग पचास कदम पीछे ही वह था। सामने से सायकिल पर एक विद्यार्थी आया। जान-बूझ कर उसने सायकिल माया से लड़ा दी। वह बेचारी गिरते-गिरते बची। मुरारी का रक्त खौल उठा। पैरों में बिजली भर गई; हाथों में फौलादी ताकत आ गई। दौड़ कर पास पहुँचा और बिना कुछ कहे-सुने विद्यार्थी की मरम्मत करने लगा। वह बेचारा लाख कहता रहा कि दुर्घटना धोखे में हुई है, माफी भी माँगता रहा, परन्तु उसका हाथ न रुका। उसने पीटना तब बन्द किया जब स्वयं माया ने मना किया। वह लड़का सायकिल पर चढ़ा और जान बचा कर भागा।

"अनेक धन्यवाद !" माया का मीठा स्वर झंकृत हो उठा।

"इसमें धन्यवाद की क्या बात है ? यह तो मेरा धर्म था।" मुरारी ने स्वर को सहज रखने की चेष्टा करते हुए कहा। "और फिर आप तो मेरी 'क्लास फैलो' हैं !"

आश्चर्य से मुरारी की ओर देख कर माया बोली—"अच्छा !"

मीन सी मनोहर आँखों के जादू में उसका मन बँध गया।

"चलिये, आप को घर तक छोड़ आऊँ।" उसके स्वर में विनय थी।

"रहने दीजिये। क्यों कष्ट करेंगे।" संकुचित होकर माया बोली। फिर दृष्टि नीची करके पूछा—"आप रहते कहाँ हैं !"

मुरारी ने अपना पता बता दिया।

"अरे, उसी मोहल्ले के पास ही तो मैं भी रहती हूं।" माया के मुख से निकल गया।

"तब तो मेरे संग चलने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए आपको।" कह कर मुरारी हँस पड़ा।

माया लजा गयी।

दोनों साथ चल दिये। इस छोटी सी घटना ने उन्हें समीप ला दिया। समीपता बढ़ती गई। परिचय की मिट्टी में घनिष्टता का बीज प्यार का अंकुर बन कर फूट पड़ा।

प्रीवियस की परीक्षायें समाप्त हो गयीं।

गर्मी की छुट्टियों में भी वे एक दूसरे से मिलते रहे—कभी किसी पार्क में, कभी किसी सिनेमा में।

एक दिन शाम को दोनों मैरिस रोड पर टहल रहे थे। वहीं भेंट हो गई दिलीप से। दिलीप और मुरारी बचपन के मित्र थे। वैसे दोनों में कोई समानता न थी। दिलीप बड़े बाप का बेटा था, अच्छा खाने-पहनने का अभ्यस्त था। हमेशा बीमा-एजेंट की तरह टिप-टाप रहता था; बातें भी वैसी ही लच्छेदार होती थीं। सिगरेट-सिनेमा का शौक था। बात-बात पर हँसना उसका स्वभाव था। चेहरे पर हमेशा मस्ती का भाव, हर बात में एक भोली लापरवाही! लोगों को आश्चर्य होता था कि दिलीप की मुरारी से पटती कैसे है! फिर भी दिलीप ने रूखे स्वभाव वाले मुरारी में न जाने क्या देखा था कि वह हमेशा उसको अपना सबसे बड़ा मित्र घोषित करता था। हाई-स्कूल तक दोनों की दाँत कटी रोटी रही थी। इन्टर में दिलीप ने विज्ञान ले लिया था और मुरारी कला-विभाग में ही रहा था। फिर भी दोनों का मिलना-जुलना पहले सा ही था। इन्टर करके दिलीप डाक्टरी पढ़ने के लिए आगरा चला गया था।

दिलीप को देख कर मुरारी स्वयं तो रुक गया मगर उसने माया को आगे बढ़ने का संकेत किया। माया आगे बढ़ गई।

"आगरे से कब आये ?" ये मुरारी का प्रश्न था।

'आज सुबह ही आया हूँ ! दो-एक दिन में चला जाऊँगा।" दिलीप ने सिगरेट सुलगा कर कहा और फिर हँस कर धीमे स्वर में पूछा—"यह चिड़िया कहाँ से फाँस लाये ?"

यदि किसी और ने ऐसी बात कही होती तो मुरारी मार बैठता, मगर वह दिलीप के स्वभाव से परिचित था। गंभीर स्वर में बोला—"मेरी सहपाठिनी है। बेचारी मुझे बहुत मानती है।"

मुरारी ने जान-बूझ कर प्यार की बात छिपा ली। मगर दिलीप की तीक्ष्ण दृष्टि से यह छिपा न रहा कि मुरारी उसे प्यार करता है। हँस कर बोला—"जरा सँभल कर रहना, यार। यह ज़ालिम बड़ी बेवफ़ा होती हैं।"

मुरारी हँस कर आगे बढ़ गया। उसने सोचा, दिलीप अभी तक वैसा ही अल्हड़ और मस्त है।

विश्वविद्यालय फिर खुला।

प्यार की आग छिपाये से नहीं छिपती। उसके शोले दूर-दूर तक दिखाई देते हैं। आँखें चार हुईं, दो दिलों के तार मिले, और संसार में भूडोल आ गया। प्यार की ऐसी ही रीति है।

मुरारी और माया का प्यार भी विद्यार्थियों की चर्चा का विषय बन गया। पर उन्होंने तनिक भी चिन्ता न की। धीरे-धीरे बात अध्यापकों के कानों तक पहुँची। विद्यार्थी खुले आम आवाजकशी करने लगे। मुरारी घबरा गया। सोचा, मेरा क्या है ! मैं तो पुरुष हूँ ! फिर बेचारी माया व्यर्थ में बदनाम हो रही है। ऐसा नहीं होना चाहिए—नहीं होना चाहिए।

और एक दिन वह माया से कह बैठा—"माया अब हम दोनों का

अधिक मिलना-जुलना ठीक नहीं।"

"क्यों ?" माया ने भोलेपन से पूछा।

"लड़के हमारी बदनामी करते हैं।"

"सच्चा प्यार बदनामी से नहीं डरता।"

मुरारी को उसके साहस पर विस्मय हुआ; श्रद्धा हुई।

"खूब सोच लो, माया।" मुरारी दृष्टि झुका कर बोला। "मैं पुरुष हूँ। इस बदनामी से मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। मगर तुम नारी हो और नारी के अन्चल पर लगा हुआ बदनामी का दाग़ जनम-जनम तक नहीं छूट सकता।"

"मैं नारी अवश्य हूँ, पर मोम की पुतली नहीं। मेरे दिल में तुम्हारे लिए प्यार है और प्यार करना पाप नहीं है। मैं ज़रा भी नहीं डरती बदनामी से। लेकिन हाँ, अगर तुम्हारा ही मन मुझसे खिच रहा रहा हो तो दूसरी बात है।"

माया के व्यंग्य से मुरारी तिलमिला गया। माया नारी होकर नहीं डरती और वह पुरुष हो कर काँप रहा है। अपना कायरता पर लज्जा आयी।

"मेरा परिहास न करो, माया।" मुरारी गम्भीर हो कर बोला। "कब किसका प्यार किससे ऊबता है इसका निर्णय तो समय ही करेगा।"

माया समझ गई कि मुरारी उसकी बात का बुरा मान गया है। उसे आत्म-ग्लानि हुई कि उसने, मुरारी के मन को दुखाने वाली बात क्यों कही। मुरारी की आँखों ने उसकी हार्दिक दशा पढ़ ली। वह मन-ही-मन प्रसन्न हो उठा।

"शायद तुम नाराज़ हो गये ?" माया ने दुखी स्वर में कहा।

"तुमने ऐसी बात ही कही थी।" कृत्रिम क्रोध प्रदर्शित करता हुआ मुरारी रूखे स्वर में बोला।

माया खिलखिला कर हँस पड़ी।

"बड़े भोंदू हो तुम !" वह हँसी रोक कर मुरारी की ओर तिरछी दृष्टि से देखती हुई बोली।

और फिर उत्तर में मुरारी को भी मुस्कराना पड़ा।

दिन बीतते गये।

परीक्षायें निकट आ गयीं।

मुरारी ने अनुभव किया कि माया खोई-खोई सी रहती है।

"खोयी-खोयी सी क्यों रहती हो आजकल ?" एक दिन उसने पूछा।

"नहीं तो !" माया ने उत्तर दिया।

"मुझ से झूठ बोलती हो !"

माया मौन रही।

"बोलो, क्या बात है ?" मुरारी ने फिर प्रश्न किया।

"मुरारी," सहसा माया मुरारी के अति निकट आकर उसका हाथ अपने हाथ में लेती हुई बोली। "अब हमें जल्द से जल्द शादी कर लेनी चाहिये।"

"शादी···।" चौंक पड़ा मुरारी।

"हाँ, मेरे मोहल्ले में भी हम लोगों को लेकर चर्चा शुरू हो गई है।"

"अच्छा !" चिन्तित स्वर में मुरारी बोला।

"बात चाचा जी के कानों तक पहुँच गई है। एक दिन पूछने लगे। मैंने साफ़-साफ़ कह दिया कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।"

"सुन कर क्या बोले ?" मुरारी ने घबरा कर पूछा।

"कहने लगे—तेरे सुख में मेरा सुख है। अगर तू मुरारी को प्यार करती है तो उससे शादी कर ले। मगर···मगर इस तरह बिना शादी के घुलना-मिलना मुझे पसन्द नहीं। इससे बदनामी होती है।"

मुरारी माया को प्यार करता था···सच्चे दिल से प्यार करता था। माया का प्रस्ताव सुन कर वह उस अन्धे की तरह प्रसन्न हो उठा जिसे सहसा ही दोनों आँखें मिल जायें।

"माया," वह फुसफुसा कर बोला। "तुम्हें पाकर मैं धन्य हो जाऊँगा, मेरा जीवन सफल हो जायेगा! परन्तु···।"

"यह परन्तु क्या बला है?" आँखों-ही-आँखों में मुस्करा कर माया बोली।

'तुमसे मेरी कोई बात छिपी तो नहीं! तुम सुखी रह सकोगी मेरे साथ?"

"क्यों नहीं? भगवान ने चाहा तो एक दिन तुम डिप्टी बनोगे, जज बनोगे! हमेशा एक से दिन नहीं रहते किसी के!" माया के स्वर में विश्वास की दृढ़ता और प्रसन्नता थी।

"सपने तो मैं भी ऐसे ही देखता हूँ। पर सपने सपने हैं। पूरे हों या न हो, कौन जानता है! हो सकता है मैं सिर्फ क्लर्क बन कर ही रह जाऊँ!" मुरारी उदास स्वर में बोला।

"तब भी मुझे कोई शिकायत नहीं होगी। तुम्हारे साथ मैं नरक में भी सुखी रहूँगी।" माया ने आवेश में आकर कहा।

"अच्छी तरह सोच लो, माया! ऐसा न हो कि बाद में इस छोटी सी भूल के लिए जीवन भर पछताना पड़े।"

"मेरे प्यार का अपमान न करो, मुरारी! तुमने मुझे समझ क्या रक्खा है?" माया ने उत्तर दिया। एक क्षण रुक कर फिर बोली—"हाँ, अगर तुम्हारी नज़र में कोई मालदार लड़की हो तो···।"

"माया!" चीख पड़ा मुरारी!

माया को सन्तोष हुआ।

"तुम जानती हो कि जीवन में मैंने सिर्फ तुम्हें प्यार किया है—सिर्फ तुम्हें! अब दुनिया की कोई शक्ति तुम्हें मुझ से छीन नहीं सकती। हम एक थे, एक हैं, एक रहेंगे।" और भावुकता में आ कर माया को मुरारी ने आलिंगन में कस लिया।

"अरे, बहुत उतावले हो तुम!" अपने को मुक्त करती हुई माया

मीठी फटकार सुनाती हुई बोली। "तुम जानते हो, मैं अनाथ हूँ। चाचा-चाची के टुकड़ों पर पली हूँ। वे साधारण स्थिति के आदमी हैं। दान-दहेज...।"

"मेरे लिए सबसे बड़ा दहेज तुम्हीं हो।" कह कर मुरारी ने फिर अपनी भुजायें फैला दीं।

माया ने झुक कर मुरारी की चरण-रज अपने मस्तक में लगा ली।

विश्वविद्यालय में समाचार फैलते देर न लगी कि मुरारी और माया की शादी होने वाली है।

"प्रम विवाह किसी का भी सफल हुआ है कि इन्हीं का होगा!" एक विद्यार्थी ने शंका की।

"अरे देखना, साल दो साल में ही अगर जूता-लात की नौबत न आ जाये तो नाम बदल दूं।" दूसरा बोला।

मुरारी ने सुना। मुस्करा कर रह गया। उसे पूर्ण विश्वास था कि समय की शिला उसके वैवाहिक जीवन के सुख की तरी को चूर नहीं कर सकती उसे अपने पर भरोसा था और यह भी विश्वास था कि माया का प्यार भी न तो दूध में आये उफान की तरह है और न सागर की छाती पर तैरने वाले फेन की तरह!

बी० ए० की परीक्षा समाप्त हुई। एक सप्ताह बाद ही मुरारी और माया दाम्पत्य-सूत्र में बँध गये।

दो शरीर होकर भी मन एक हो गया।

दोनों प्रसन्न थे, संतुष्ट थे!

परीक्षाफल घोषित हुआ।

माया पास हो गई, पर मुरारी फ़ेल!

सपनों का महल दुर्भाग्य के थपेड़े से ढह कर धूल में मिल गया।

माया ने भगवान से शिकायत की—'तू बड़ा अन्यायी है, देव! मुझे फेल करके उन्हें पास कर देता।"

मुरारी की आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। आत्मग्लानि और लज्जा ने अपना घेरा डाल दिया।

माया ने दिलासा देते हुए कहा—"बच्चों की तरह क्यों रोते हो ? पास-फेल तो लगा ही रहता है। इस साल पास हो जाओगे।"

मगर मुरारी के सामने प्रश्न था आजीविका का। अभी तक तो अकेला पेट था। जो मिल गया, सो खा लिया। अब माया के लिए कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा।

और परिस्थितियों की आँधी ने उसे अलीगढ़ से उठा कर आगरे में पटक दिया। वह इन्कमटैक्स आफिस में क्लर्क हो गया।

डिप्टी और जज बनने का स्वप्न क्लर्क का सत्य बन कर रह गया।

मुरारी सोचते-सोचते थक गया। उसने उठ कर अपने चारों ओर देखा। पार्क में केवल दस-पाँच व्यक्ति ही रह गये थे।

तभी दूर से बारह घन्टे बजने की आवाज़ आयी।

मुरारी उठ कर फुहारे के पास गया। वहीं बैठ कर जल की बनती बिगड़ती बूंदों का खेल देखने लगा।

उसे याद आया. कितनी प्रसन्न हुई थी माया जब उसने पहले महीने का वेतन उसके हाथ पर रखा था !

कितना उत्साह था माया में !

रूखा-सूखा खाकर और मोटा-झोटा पहन कर भी संतुष्ट थी वह !

हर शाम को अपनी मधुर मुस्कान से स्वागत करती थी उसका।

मगर धीरे-धीरे उत्साह मन्द पड़ गया, मुस्कान उदासी में बदल गई ! और आज···ओह···! क्या यह वही माया है !

जो माया उसके साथ नरक में जाने को तैयार थी वही इस जीवन से ऊब गई !

सोचते-सोचते मुरारी को लगा, जैसे उसकी तरी भयंकर तूफान में फँस गई है ! तरी डगमगा रही है; भूखी लहरें उसे निगल लेना चाहती

हैं ! प्यार के पतवार……!

नहीं ! नहीं !! नहीं !!!

प्यार के पतवार अब भी मजबूत हैं ! उनमें दुर्बलता नहीं आयी, कभी नहीं आयी ! वह माया को प्यार करता है; माया के प्यार में भी कोई कमी नहीं !

फिर जीवन में कलह क्यों…?

और तभी किसी का भयंकर अट्टहास उसके कानों में गूँज गया।

चौंककर उसने इधर-उधर देखा। कहीं कोई न था। वह अकेला था. एक दम अकेला।

फिर यह अट्टहास किसका था ?

अर्थ-पिशाच का !

हाँ, अर्थ-पिशाच ही हँस रहा था। उसी के लौह–पंजों में फँस कर दाम्पत्य-जीवन का दम घुट रहा था।

और मुरारी को लगा कि कोई सचमुच ही उसका गला घोंट रहा है। वह हाँफने लगा।

उस घुटन से घबरा कर वह पार्क के बाहर निकल गया।

घर पहुँच कर देखा, द्वार खुला पड़ा है।

माया उसी तरह चटाई पर पड़ी हुई थी। चूल्हा ठण्डा पड़ा था। दोपहर के जूठे बर्तन वैसे ही पड़े थे। मुरारी समझ गया कि माया ने खाना नहीं बनाया है।

मुरारी दरी लेकर छत पर चला गया। लेट कर बीड़ी जलाई और फिर निर्निमेष दृष्टि से तारों की ओर देखने लगा, मानों वह उनके द्वारा अपना भविष्य जानने की चेष्टा कर रहा हो; उन्हीं में जीवन की विषमताओं का समाधान खोज रहा हो।

उस रात न मुरारी सो सका, न माया।

मुरारी अपने विचारों में डूबा रहा।

माया सोचती रही, आखिर क्या हो गया है मुरारी को ? यही मुरारी कभी मेरे संकेत पर जान देता था, मुझे प्रसन्न करने के लिए सब कुछ करने को तैयार रहता था और वही आज मेरी उपेक्षा करता है, मेरे सुख-दुख पर ध्यान नहीं देता, मेरी अपेक्षा अपने आदर्शों और सिद्धान्तों को अधिक प्रिय समझता है ! आदर्श एवं सिद्धान्त तो हमें सुखी और संतुष्ट बनाने के लिए हैं। ऐसे आदर्श मिथ्या हैं जो हमें भूखा रक्खें, नंगा रक्खें, बेवस रक्खें !

और माया ने मन ही मन दृढ़ संकल्प किया कि वह एक दिन अपनी बात मुरारी से मनवा कर ही रहेगी।

छत पर लेटा हुआ मुरारी काफी मनो-मंथन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि जिस प्रकार भी हो माया का भौतिकवादी दृष्टिकोण बदलना ही होगा तभी गृहस्थी का यह रथ सुख और सन्तोष के राज पथ पर चल सकेगा अन्यथा यह रथ कलह और वैमनस्य के दलदल में फँसा रहेगा, धीरे-धीरे पहिये जर्जर हो जायेंगे, रथ टूट जायेगा, बिखर जायेगा !

३

※※※

सुबह के बाद शाम और शाम के बाद सुबह !

सृष्टि का क्रम चलता रहा।

न तो माया ही मुरारी से अपनी बात मनवा सकी और न मुरारी हा माया के दृष्टिकोण को बदल सका। आये दिन वाद-विवाद होते रहे और उनका अन्त भी उसी प्रकार होता रहा—माया का रुदन और मुरारी का पार्क के लिए गमन !

पहली जुलाई को जून का वेतन लेकर मुरारी घर की ओर चला। हर रोज तो गली-कूचों से होकर निकल जाता था, परन्तु उस दिन किनारी बाज़ार होता हुआ गया। बाज़ार में चहल-पहल थी। मंगल का दिन था। सोमवार की बन्दी के बाद बाज़ार खुला था। इसी से भीड़ अधिक थी। वस्त्र विक्रेताओं, सराफ़ों और बिसातियों की दूकानों पर जमघट लगा था। पान बेचने वालों के हाथ मशीन की तरह चल रहे थे।

सहसा एक दूकान के साइन बोर्ड को देख कर मुरारी ठिठक गया। उस दूकान पर डिस्पोज़ल के पंखे बिकते थे। नकद भी और किश्तों पर भी। मुरारी ने सोचा, क्यों न एक पंखा किश्तों पर ले लिया जाये। डिस्पोज़ल का माल है; सस्ता मिल जायेगा। बरसात की सड़ी गर्मी से माया को मुक्ति मिल जायेगी। पंखा देख कर कितनी प्रसन्न होगी वह !

और मुरारी दूकान पर चढ़ गया।

"आइये, बैठिये साहब !" दूकानदार ने व्यवसायिक लहज़े में कहा।

जब मुरारी एक कुर्सी पर बैठ गया तब बोला—"क्या सेवा करूँ आपकी ?'

"एक पंखा चाहिये ।"

"अभी लीजिये ।" कह कर दूकानदार ने नौकर को आदेश दिया। मिनट भर में ही कई पंखे सामने आ गये। सभी पंखे जी० ई० सी० के थे।

"पसन्द कर लीजिये !" दूकानदार हँस कर बोला। "डिस्पोज़ल का तो नाम है, साहब ! वैसे पंखे एकदम नये हैं। सालों हिलाये न हिलेंगे।"

मुरारी ने एक पंखा पसन्द कर लिया। पूछा–"क्या दाम हैं ?"

"नकद में सौ रुपये और किश्त पर एक सौ बीस ! साल भर तक दस रुपये महीना देना पड़ेगा।"

"दाम तो बहुत बता रहे हैं आप !" मुरारी उदास होकर बोला।

"इसी भाव पर बेचे हैं। आपको कागज़ दिखा दूँगा।" दूकानदार एक फायल उठा कर बोला—'किसी दफ्तर में काम करते हैं ?"

"हाँ ! इन्कमटैक्स आफिस में।" मुरारी ने सहज भाव से कह दिया।

इन्कमटैक्स आफिस का नाम सुन कर दूकानदार का व्यवहार एक दम बदल गया। नौकर को पान-सिगरेट लाने का आदेश दिया। मुरारी मना करता रहा, पर उसने एक न सुनी।

"औरों को तो इसी दाम पर दिये हैं ! पर अब आप से क्या नफ़ा लेना ! दाम के दाम ले लूँगा। आप तो नक़द लेंगे शायद ?"

"हम बाबू लोग नकद कहाँ से ले सकते हैं ? किश्तों पर ही लूँगा।"

"आप आठ रुपये महीना दे दीजियेगा। साल भर में सिर्फ छियानवे रुपये देने पड़ेंगे।"

मुरारी को यह सौदा बुरा नहीं लगा। वह राज़ी हो गया।

नौकर पान-सिगरेट ले आया।

दूकानदार के आग्रह को मुरारी टाल न सका। पान खाकर उसने सिगरेट सुलगा ली।

दूकानदार ने एक फार्म भर कर मुरारी के सामने रख दिया।

मुरारी ने हस्ताक्षर कर दिये और आठ रुपये की पहली किश्त अदा कर दी।

"बाबू जी के लिए एक रिक्शा तो रोक ले।" दूकानदार ने नौकर से कहा।

मुरारी प्रतिवाद न कर सका।

रिक्शे पर पंखा रख वह भी बैठ गया।

"जती कटरा चलो।" उसने रिक्शे वाले को आदेश दिया।

मुरारी का अनुमान अक्षरशः सत्य निकला। माया पंखा देख कर हर्षित हो उठी। जिस प्रकार कोई बालक किसी नये खिलौने को पा कर फूला नहीं समाता उसी प्रकार माया भी झूम उठी। पंखे को कभी इधर से देखती कभी उधर से।

"पसन्द आया?" मुरारी ने पूछा।

"बहुत अच्छा है। चलो, गर्मी और उमस से छुटकारा तो मिला।" कह कर माया ने पंखे का होल्डर प्लग में खोंस दिया।

जड़ पंखा चेतन हो उठा।

माया मुरारी का हाथ पकड़ कर पंखे के सामने बैठ गयी। शीतल हवा के झोंकों से उसके केश लहराने लगे।

"कितने का मिला?" माया ने प्रसन्न स्वर में पूछा।

"किश्त पर लाया हूँ। आठ रुपये महीना देने पड़ेंगे।"

"कब तक?"

"साल भर तक।"

माया ने हिसाब लगाकर कहा—"छियानवे का पड़ेगा। बुरा नहीं है। मगर तनख्वाह में से..........।"

"सब हो जायगा।" मुरारी बीच में ही बोल पड़ा। तीन-चार रुपये महीने की तो बीड़ी पी जाता था। आज से बीड़ी बन्द। चार-पाँच रुपय

तुम घर के खर्चे से बचाना।"

मुरारी की बात सुनकर माया सोच में पड़ गयी। उसकी समझ में न आया कि चार-पाँच रुपये किस प्रकार बचाये जा सकते हैं।

"किस सोच में पड़ गयीं ?"

"मैं...नहीं तो...ऐसे ही...।" और माया हँस पड़ी।

मुरारी के अधरों पर भी स्मित खेल गया।

और पंखा काल-चक्र की भाँति चलता रहा—चलता रहा।

४

***

आकाश मेघों से घिरा था। लगता था, मूसलाधार वर्षा होगी। मुरारी तीव्र गति से जती कटरे की ओर जा रहा था। वह चाहता था कि वर्षा शुरू होने से पहले ही घर पहुँच जाये। सहसा उसे लगा कि किसी ने उसे पुकारा है। ठिठक कर चारों ओर देखा। कुछ दूर पर ही एक नीली कार के पास दिलीप मुस्करा रहा था। दिलीप को देख कर मुरारी हर्षित हो उठा।

"हाँ, भाई हम ग़रीबों को क्यों पहचानोगे अब ?' दिलीप ने आग बढ़कर मुस्कराते हुये कहा।

"मैं देख नहीं पाया था, यार ! यह तो बताओ, क्या अभी तक डाक्टरी पढ़ रहे हो !" मुरारी ने उसका हाथ थाम कर पूछा।

"जनाब, अब मैं डाक्टर बन गया हूँ। सरकारी अस्पताल में डाक्टर हूँ। और तुम···?" सिगरेट का धुँआ छोड़ कर दिलीप ने पूछा।

"इन्कमटैक्स आफिस में क्लर्क हूँ।"

दिलीप ने मुरारी को सिर से पैर तक निरीक्षक की दृष्टि से देखा और फिर हँसने लगा।

"इसमें हँसने की क्या बात है !"

"यार, मैं ही रह गया हूँ मजाक करने के लिए !' कह कर दिलीप ने जेब से सिगरेट की डिब्बी तथा दियासलाई निकाल कर मुरारी की ओर बढ़ा दी।

मुरारी इन्कार न कर सका। सिगरेट सुलगा कर डिब्बी और दिया-सलाई लौटा दी।

"तुम्हारा हुलिया देखकर विश्वास नहीं होता कि तुम इन्कमटैक्स आफिस में हो।"

मुरारी ने लक्ष किया कि दिलीप का स्वभाव अब भी पहले सा ही है। बात-बात पर हँसना बातचीत में लापरवाही, चेहरे पर मस्ती का आलम और तौर-तरीक़ों में वही भोली बेतकल्लुफी! वस्त्र भी बहु-मूल्य, कलाई पर कीमती घड़ी, सोने की चेन, जेब में पार्कर कलम, पैन्ट की हिप-पाकेट में मोटा पर्स!

"यह कार तो बहुत अच्छी है! क्या...?"

"अपनी ही है!"

"पिता जी ने दी होगी?"

"जी नहीं, अपनी ही कमाई से ली है।"

"अच्छा!" आश्चर्य से मुरारी बोला। 'काफी लम्बी तनख्वाह मिलती है क्या?"

दिलीप के अधरों पर मुस्कान खेल गयी। धीमे स्वर में बोला—' बड़े भोंदू हो यार! तनख्वाह से तो जेबखर्च ही पूरा नहीं हो पाता।"

"फिर यह कार...!"

"यह एक राज़ है, मेरी जान!' बीच में ही दिलीप बोल पड़ा। सिगरेट का अधजला टुकड़ा फेंक कर बोला। "चलो, ज़रा चाय पीलें।"

दोनों कार पर बैठ गये। कार सेव बाज़ार की ओर बढ़ गयी। कार फौवारे के पास रोक कर दोनों उतर पड़े और पैदल ही वेस्टएन्ड होटल की तरफ चल दिये।

सेव बाज़ार में नीचे तो वस्त्र, फल, मिठाइयों आदि की दूकाने हैं ऊपर कोठों पर शरीरों के [illegible] हैं। जब नीचे की दूकानें बन्द हो जाती हैं तब ऊपर की दूकानें खुलती हैं। ख़रीदार आते-जाते हैं।
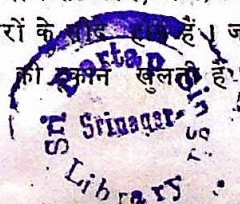
कागज़ के टुकड़ों पर वहाँ कौमार्य बिकता है, ईमान बिकता है, इन्सा-नियत बिकती है। समाज के अंग का यह कोढ़ वहाँ फलता-फूलता है। न तो उसका उपचार किया जाता है और न उसे नियंत्रित करने की ही चेष्टा।

सेव बाज़ार पहुँच कर मुरारी का दम घुटने लगा। दृष्टि उठाना कठिन हो गया। दिलीप उसी प्रकार हँस रहा था और बार-बार ऊपर देख रहा था। दिलीप की यह निर्लज्जता मुरारी को बहुत ही अखर रही थी।

"चलो यहाँ से ! मेरा तो दम घुट रहा है।" मुरारी ने अजीब से स्वर में कहा।

"अजीब आदमी हो यार ! चाय तो पीलें।"

वैस्टएन्ड में पहुँच कर दिलीप ने चाय का आर्डर दे दिया।

"तुम्हें वेश्याओं से चिढ़ क्यों है ?" चाय की चुस्की लेकर दिलीप ने पूछा।

"क्यों कि वे बुरा कर्म करती हैं।" मुरारी का उत्तर था।

"और इसकी ज़िम्मेदारी किस पर है ?" सिगरेट सुलगा कर दिलीप अत्यन्त गम्भीर स्वर में पूछ बैठा।

मुरारी ने इस विषय पर कभी सोचा ही न था। कुछ उत्तर न दिया।

"उन्हें बुरा कर्म करने के लिए मजबूर कौन करता है ? हम, जनाब हम ! घृणित वे नहीं, हम हैं !" दिलीप आवेश में आ गया। "हम···जो समाज के ठेकेदार बनते हैं, धर्म और संस्कृति के रक्षक बनते हैं। वेश्या-वृत्ति समाप्त करने के लिए हमें सामाजिक व्यवस्था और आर्थिक ढांचे को बदलना पड़ेगा। कभी सोचा है इस विषय पर ?"

मुरारी ने नकारात्मक सिर हिला दिया।

"पेट की आग शान्त करने के लिए ही ये लड़कियाँ अपना शरीर

बचती हैं। उन्हें इस नरक-कुन्ड में झोंकने वाला वह समाज है जो पुरुष के बड़े-से बड़े पाप को भूल जाता है पर नारी की छोटी सी भूल भी क्षमा नहीं कर सकता।"

दिलीप ने चाय का प्याला एक ओर खिसका दिया। सिगरेट बुझा कर आमलेट खाने लगा। मुरारी ने टोस्ट का टुकड़ा मुँह में रख लिया।

"मैं एक ऐसी लड़की को जानता हूँ जिसका पति निकम्मा है। भूख और बेबसी से तंग आकर वह इस बाज़ार में आने के लि मजबूर हुई। आज अपनी कमाई से ही पति का पेट भरती है।"

"बस करो।" सहसा मुरारी चीख पड़ा। उसने आँखें बन्द कर लीं। अपनी बेबसी और माया की माँगों के चित्र नंगे होकर नाच रहे थे।

दिलीप ने बिल अदा कर दिया। दोनों फौवारे पर आगये।

"कहाँ रहते हो ? चलो घर तक छोड़ आऊँ !"

"जती कटरा !" कह कर मुरारी कार पर बैठ गया।

"अभी शादी-वादी की या नहीं ? रास्ते में दिलीप ने पूछा।

मुरारी ने सिर हिला दिया।

"अच्छा उस्ताद ! मुझे खबर तक न दी। आज भाभी जी से जरूर मिठाई खाऊँगा।" कह कर दिलीप फिर हँस पड़ा। "भाभी कैसी हैं ?"

"तुम देख चुके हो। मैरिस रोड पर मेरे साथ जो लड़की थी उसी से शादी की है।" कह कर मुरारी कुछ देर तक तो मौन बैठा रहा। फिर धीमे स्वर में पूछा—"तुमने अभी की या नहीं ?"

"शादी के जंजाल में कौन पड़े यार ! अपने तो क्वाँरे ही ठीक हैं।" दिलीप दार्शनिक की भाँति गंभीर होकर बोला। "तुम्हीं बताओ, शादी करके तुम्हें कौन सा सुख मिला है !'

दिलीप का प्रश्न मुरारी के मानस-पटल पर एक गहरी लकीर सी कर गया। वह मौन रह कर सड़क की ओर देखने लगा।

"नोन-तेल-लकड़ी का चक्कर आदमी को पागल कर देता है।"

दिलीप कार का हार्न बजाता हुआ बोला ।

रास्ते भर मुरारी गंभीर रहा । रह-रह कर दिलीप का प्रश्न उसके मन को कचोट रहा था । जब उसने घर का द्वार खटखटाया तब भी वह उदास था । जीवन का सारा रस, सारा उत्साह जैसे किसी के निष्ठुर हाथों ने छीन लिया हो ।

माया ने द्वार खोला । मुरारी के साथ दिलीप को देख कर घबरा गयी । उस समय वह गन्दी धोती पहने थी । लज्जित होकर भागी और कोठरी में छिप गयी ।

मुरारी और दिलीप अन्दर गये । दिलीप ने आलोचनात्मक दृष्टि से मकान का निरीक्षण किया । मुरारी का संकेत पाकर वह स्टूल पर बैठ गया । मुरारी चटाई पर बैठ गया । उसने पंखे की गति तीव्र कर दी।

"क्या समझ कर इस कबूतरखाने को लिया है ?" आखिर दिलीप कह ही बैठा । "मैं तो यहाँ एक घड़ी भी नहीं रह सकता ।"

"तुम बड़े आदमी हो । मुरारी रूखी हँसी हँस कर बोला । फिर कोठरी की ओर मुँह करके पुकारा—"अरे, अन्दर घुसी क्या कर रही हो माया ? बाहर आओ । यह दिलीप हैं अलीगढ़ वाला ।"

और माया सिमटी-सिकुड़ी सी बाहर आ गयी । मुरारी ने देखा, उसने धोती बदल ली है ।

"यह हैं मेरे बचपन के साथी दिलीप । यहाँ डाक्टर हैं ।" मुरारी परिचय कराता हुआ बोला । "और यह हैं मेरे जीवन की साथिन माया ।

"नमस्ते भाभी ।" दिलीप ने दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन किया । "एक बार अलीगढ़ में देख चुका हूँ तुम्हें ! पहचाना......?"

माया ने भी हाथ जोड़ दिये । पर उसकी दृष्टि नीची ही रही । दिलीप के वस्त्र देख कर, और घर की दुर्दशा का ध्यान करके उसे मुरारी पर क्रोध आ रहा था । घर की दशा जानते हुए भी वह दिलीप को क्यों ले आया ? पहले से बता देता तो कुछ ठीक-ठाक तो कर देती ।

"बैठ जाओ !" मुरारी ने हाथ से चटाई की ओर संकेत करके कहा।

माया मुरारी के पास ही चटाई पर बैठ गयी।

"इस दरबे में तुम्हारा दम नहीं घुटता भाभी ?" दिलीप ने मुस्करा कर माया की ओर देख कर पूछा।

माया के मन में पहले तो आया कि कहदे—तुम कौन हो पूछने वाले ? मगर फिर न जाने क्या सोच कर कुछ कह न सकी।

दिलीप ने देखा, माया सुन्दर है, किन्तु उसके चाँद से चेहरे पर उदासी की घटा है, आँखों की ऊपर से शान्त दिखाई देने वाली झीलों में दर्द के अनगिन तूफान छिपे हैं। वह समझ गया कि माया इस घर और जीवन से सुखी नहीं है।

"तुम्हें बाज़ार में फटे हाल देख कर मैंने सोचा था कि तुम्हारा यह वेश दुनिया को दिखाने के लिए है। घर में शान से रहते होगे। मगर यहाँ का हाल देख कर लगता है कि तुम अब भी साधू-संन्यासी बने हुये हो !" दिलीप अजीब से लहज़े में मुरारी से बोला।"क्या ऊपर की आमदनी बिल्कुल नहीं है ?"

"घूस लेना महापाप समझते हैं यह !" माया के मुख से निकल गया।

"सबसे बड़ा पाप है ग़रीबी।" दिलीप ने सफल वक्ता की मुद्रा धारण करके कहा।" इस पाप को दूर करने के लिए जो कुछ भी किया जाए वह पाप नहीं हो सकता। मुझी को देख लो, भाभी ! अगर सिर्फ तनख्वाह के भरोसे रहूँ तो यह शान-शौकत,कार-बँगला, नौकर-चाकर सब क़ाफूर हो जायें।"

माया को यह जान कर हर्ष हुआ कि दिलीप के विचार उसी की तरह के हैं। उसने सोचा कि अब उसका पक्ष प्रबल हो गया है और मुरारी को निश्चय ही उन दोनों के आगे झुकना पड़ेगा।

"मैं तो समझाते-समझाते हार गयी। अब आप ही समझाइये

इन्हें।" माया ने संकोच त्याग कर दिलीप से कहा।

"क्यों बच्चू, अपनी जीवन-संगिनी की बात नहीं मानते हो ? इससे बड़ा पाप और क्या हो सकता है ?" दिलीप ने अपनी बात कुछ इस ढंग से कही कि मुरारी हँस पड़ा।

माया के अधरों पर मुस्कराहट खेल गयी।

"यह हँसने की बात नहीं है, मुरारी।" सहसा गंभीर होकर दिलीप बोला। "बहती गंगा में हाथ धोना ही बुद्धिमानी है। अवसर बार-बार नहीं आता। आदर्शों और सिद्धान्तों को ताक पर रख कर पैसा कमाने की कोशिश करो। इसी में तुम्हारा कल्याण है, भाभी का कल्याण है और और...मेरे होने वाले भतीजों का कल्याण है।"

दिलीप की अन्तिम बात से माया लजा गयी। उसने मुँह दूसरी ओर कर लिया।

"तुम अपना कल्याण करते रहो,यार, मेरी चिन्ता न करो।" कुछ उदासी सी हँसी हँस कर मुरारी बोला।

"अपना कल्याण तो कर ही रहा हूँ। तुम अपना धर्म भी तो समझो ! अगर मेरी तरह क्वाँरे होते तो चाहे जो करते, मगर जब शादी की है तो भाभी को सुखी रखना तुम्हारा कर्त्तव्य है। देखो तो, क्या हाल हो गया बिचारी का !"

माया ने सहानुभूति के शब्द सुने तो दिल भर आया। उसने दिलीप की ओर देखा। वह उसकी तरफ देख रहा था। बड़ी कठिनाई से माया अपने आँसू रोक सकी।

मुरारी की विचित्र दशा थी। वह मन ही मन कुढ़ रहा था। अगर वह यह जानता कि दिलीप ऐसी बातें करेगा तो वह उसे कभी भी घर न लाता। माया वैसे ही असन्तुष्ट है, दिलीप उस असन्तोष की आग को घी से और अधिक धधकाने की चेष्टा कर रहा है !

"कभी सिनेमा-इनेमा भी दिखाता है यह ?" दिलीप ने माया से

पूछा। माया मौन रही।

"बहुत चोंच हो यार तुम!" मुरारी को सम्बोधित करके दिलीप ने कहा। 'तुम जैसे साधुओं को तो शादी करनी ही नहीं चाहिए।"

और मुरारी को लगा कि दिलीप सच कह रहा है। शादी करके उसने भूल की है, बहुत भारी भूल की है। माया का जीवन नष्ट कर दिया है उसने।

"उठो, कपड़े बदल कर तैयार हो जाओ। आज हम लोग पिक्चर देखेंगे।" दिलीप ने आदेश दिया।

माया मुरारी की ओर देखने लगी।

"जल्दी से तैयार हो जाओ, माया।" इच्छा न होते हुए भी मुरारी को कहना ही पड़ा। वह जानता था कि अगर उसने इन्कार किया तो दिलीप और भी खोटी-खरी सुनाएगा।

"अभी तो खाना···।"

"आज खाना भी होटल में होगा।" माया की बात को काटते हुए दिलीप ने कहा और फिर जेब से सिगरेट का पैकेट और दियासलाई निकाल कर सिगरेट सुलगाने लगा।

माया ने सहेज कर रखी हुई एक रंगीन इकलाई पहनी। मुरारी ने भी वस्त्र बदले। पाँच मिनट में ही दोनों तैयार हो गए। मुरारी के हृदय का भाव तटस्थ था; पर माया प्रसन्न थी। वर्षों के बाद चित्र देखने का अवसर मिला था। हाँ, उसके मन में बार-बार यह भाव उठ रहा था कि काश, आज मेरे पास कोई अच्छी साड़ी होती!

तीनों कार पर बैठ गए। कार चल दी।

"कौन सा चित्र देखा जाए?" दिलीप ने मुरारी से पूछा।

"जो तुम्हारी इच्छा हो।" कह कर मुरारी चुप हो गया।

"अभी 'नागिन' लगा है या चला गया?" माया धीमे स्वर में पूछ बैठी।

"अभी चल रहा है वहीं चलूँ ?"

माया ने सिर हिला दिया। पास-परोस की स्त्रियों से उसने 'नागिन' की वहुत प्रशंसा सुन रक्खी थी।

कार 'जसवन्त-टाकीज़' के सामने रुक गयी; दिलीप ने टिकट खरीदे। तीनों बाल्कनी में जाकर बैठ गए। दिलीप और मुरारी के बीच में थी माया !

चित्र प्रारम्भ होने में देर थी। दिलीप ने चाय का आर्डर दे दिया।

"अभी तो चाय पी है !" मुरारी ने विरोध किया।

"हमने पी है, मगर भाभी ने तो नहीं।" दिलीप हँस कर बोला। "तभी तो कहता हूँ कि तुम अपना ही पेट देखते हो। भाभी की तुम्हें रत्ती भर भी चिन्ता नहीं।"

मुरारी न जाने क्यों झेंप गया। उसे लगा कि दिलीप जान-बूझ कर माया के सामने उसे नीचा दिखाने की चेष्टा कर रहा है।

मुरारी के मन का भाव ताड़ कर माया मुस्करा पड़ी।

चाय आ गई। दिलीप और मुरारी ने खाली चाय पी। माया ने चाय के साथ टोस्ट और विस्कुट भी लिए।

चित्र प्रारम्भ हुआ। बीन की मधुर ध्वनि सुन कर माया का मन हिलोरें लेने लगा। वह वास्तविक जगत से दूर कल्पना-लोक में जा पहुँची। उसे ज्ञात ही न हुआ कि दिलीप ने उसके हाथ पर अपना हाथ रख दिया है।

इन्टरवल में दिलीप ने पूछा—"चित्र कैसा लग रहा है, भाभी ?"

"बहुत सुन्दर।" माया ने उत्साह से कहा।

"खाक सुन्दर है। न कोई कहानी है, न कोई ढंग की बात। सिवाय संगीत के और कुछ है ही नहीं।" मुरारी ने अपना मत प्रकट किया।

दिलीप और मुरारी सिगरेट पीने के लिए बाहर चले गये। माया अन्दर ही बैठी रही। वह अब भी रंगीन कल्पनाओं में डूबी थी।

इन्टरवल समाप्त हो गया। दोनों मित्र अन्दर आ गए।

दिलीप ने माया के हाथ पर अपना हाथ जान कर रखा था। जब माया ने अपना हाथ नहीं खींचा तो उसका साहस बढ़ गया। उसने फिर अपना हाथ उसके हाथ पर रख दिया। धीरे-धीरे हाथ का दबाव बढ़ता रहा। जब दिलीप ने काफी जोर से उसका हाथ दबाया तब माया को होश आया। उसने धीरे से अपना हाथ खींच लिया। फिर न तो दिलीप का मन चित्र में ही लगा और न उसका साहस माया के हाथ को छूने का ही हुआ। वह खोया सा बैठा रहा।

पिक्चर हाल से निकल कर तीनों जब बाहर आये तो देखा कि सड़कें भीगी हुई हैं।काफी कीचड़ हो गयी थी।

"शायद पानी बरसा है।" मुरारी बोला।

"मगर अब आकाश खुल गया है।" ऊपर देख कर दिलीप ने कहा। 'देखो चाँद, हँस रहा है।"

"आप तो कवि मालूम होते हैं।" माया ने मुस्करा कर कहा।

"जीवन में एक क्षण ऐसा भी आता है जब हर व्यक्ति कवि बन जाता है।" दिलीप ने गंभीर भाव से कहा।

तीनों ने 'काश्मीर होटल' में भोजन किया।

दिलीप ने लक्ष किया कि माया तो चाव से खा रही है पर मुरारी की रुचि भोजन में नहीं है।

"क्या खाना पसन्द नहीं आया ?" उसने प्रश्न किया।

'होटल के भोजन का आदी नहीं हूँ। मुझे तो माया के हाथ का रूखा-सूखा ही अच्छा लगता है।" माया की ओर प्यार भरी दष्टि से देख कर मुरारी ने उत्तर दिया।

माया का हृदय गर्व से भर गया।

"बड़े भाग्यशाली हो, यार जो भाभी जैसी पत्नी मिली। तुम्हें तो कोई कुरूप ओर कर्कशा मिलनी चाहिए थी।" कह करदिलीप हँस पड़ा।

"और तुम क्या माया को सुन्दर समझते हो ?" मुरारी ने चुटकी ली।

"सौन्दर्य और सरलता की साकार प्रतिमा।"

दिलीप का उत्तर सुनकर मुरारी तो हँस पड़ा, मगर माया का चेहरा लज्जा से लाल हो गया।

"चापलूसी करना कोई आपसे सीखे।" धीमे स्वर में वह बोली।

भोजन के बाद दिलीप उन्हें घर तक छोड़ गया।

रात को बहुत देर तक माया दिलीप के बारे में सोचती रही। कितना निश्चिन्त जीवन है उसका। कितनी शान से रहता है। कितना हँसमुख है। सोचते-सोचते उसे ध्यान आया कि उसने उसका हाथ दबाया था। तो क्या...... ? नहीं, वह ऐसा नहीं है ! धोखे में हाथ दब गया होगा।

मरुथल में जैसे वर्षा की झड़ी आनन्ददायक होती है, वैसे ही माया के शुष्क जीवन में उस दिन का कार्य-क्रम उल्लासदायक था। वह सन्तुष्ट थी, प्रसन्न थी ! उत्साह की लहर अंग-अंग को आन्दोलित कर रही थी।

आकाश में जैसे बादल छटने के बाद चाँद हँस रहा था वैसे ही उदासी की घटा हटने के बाद माया का चेहरा खिल गया था।

मुरारी को न चित्र में विशेष आनन्द आया था और न भोजन में। हाँ, उसने यह अवश्य लक्ष किया था कि माया प्रसन्न है। और उसकी प्रसन्नता में ही वह अपनी प्रसन्नता समझता था !

दिलीप की रात करवटें बदलते बीती। बार-बार माया का सुन्दर चेहरा उसकी आँखों के सामने घूम जाता। उसे मुरारी के भाग्य के प्रति ईर्ष्या होती ! माया के हाथ का स्पर्श पाकर जो आनन्द और रस उसे प्राप्त हुआ था उसका जादू उसके रोम-रोम में समा गया था। चरित्र के गेहूं को बिलास का घुन खोखला कर देता है। दिलीप बिलासी था। अस्पताल की नर्सों से लेकर बाजार की वेश्याओं तक से

उसका सम्पर्क था। उसका विलासी मन माया को पाने के लिए चंचल हो उठा, जैसे बच्चा चाँद को पाने के लिए उतावला हो उठता है। इतना तो वह समझ ही गया था कि परिस्थितियाँ उसके पक्ष में हैं। मुरारी भोंदू है—अपने सड़े-गले आदर्शों और सिद्धान्तों से चिपका हुआ मूर्ख! माया को न अच्छा खिला सकता है, न पहना सकता है; घुमाना-फिराना तो दूर रहा! माया भी आखिर नारी ही है, और जो नारी अच्छे वस्त्रों, आभूषणों आदि की कामना न करे वह नारी नहीं, पत्थर की मूर्ति है! कितनी प्रसन्न थी आज माया! कितने ध्यान से चित्र देख रही थी! लगता था सालों बाद देख रही है।

और माया को प्राप्त करने की नाना योजनायें बनाता हुआ दिलीप तब सोया जब उषा की लालिमा जागरण का सन्देश लाकर आकाश पर छा गयी।

५

※※※

दिलीप मुरारी के घर आये दिन आने लगा। वह हँस-हँस कर माया से बातें करता, उसकी प्रशंसा करता, मुरारी को चिढ़ाता। मुरारी मन ही मन कुढ़ता। घर आने के लिए मना भी नहीं कर सकता था। धीरे-धीरे माया का संकोच एक दम कम हो गया। वह भी दिलीप से हँसती, परिहास करती।

दिलीप के पास पैसे की कमी थी नहीं। रोज़ नये-नये प्रोग्राम बनते। कभी पिक्चर का, कभी पिकनिक का। शहर में सर्कस आया हुआ था। तीनों सर्कस भी देख आये। माया को सर्कस बहुत पसन्द आया।

धीरे-धीरे मुरारी को डर लगने लगा। उसने किसी पुस्तक में पढ़ा था कि जो मित्र तुम्हारी पत्नी से सहानुभूति प्रदर्शित करे वह मित्र नहीं, शत्रु है। वह यह भी अनुभव कर रहा था कि माया दिलीप के आने के बाद खिल उठती है, वाचाल हो उठती है। उसकी अनुपस्थिति में मौन रहती है, उदास रहती है।

एक दिन उसने डरते-डरते दिलीप को टोक ही दिया—"पानी की तरह पैसा क्यों बहाते हो ? रोज़-रोज़ का प्रोग्राम ठीक नहीं !"

"पैसा मेरा है, मैं खर्च करता हूँ। तुम्हें क्यों बुरा लगता है ?" दिलीप ने अपनी स्वाभाविक हँसी हँस कर कहा।

मुरारी चुप हो गया, पर उसे दिलीप का उत्तर ठीक न लगा।

"इनको जलन होती है।" माया ने व्यंग्य किया। "खुद तो कमा

नहीं सकते ! सोचते हैं दूसरा भी इन्हीं की तरह साधू बना रहे ।"

दिलीप ठहाका मार कर हँस पड़ा ।

मुरारी का चेहरा क्रोध, अपमान और तैश से लाल हो गया ।

"अब ज्यादा न चिढ़ाओ बेचारे को !' दिलीप मुँह बना कर बोला । "नहीं तो कल से ही घूस लेने लगेगा ।"

माया ने चाय के प्याले दिलीप और मुरारी के सामने रख दिये स्वयं गिलास में पीने लगी ।

"शक्कर नहीं थी तो नमक ही डाल देतीं !" चाय में शक्कर कम पाकर चिढ़े स्वर में मुरारी बोला ।

'मुझे तो बहुत मीठी लग रही है । यार, कैसा टेस्ट है तुम्हारा ?" दिलीप ने चिढ़ाया ।

"खाक मीठी है ।" मुरारी के स्वर में झुँझलाहट थी ।

माया ने मुरारी के प्याले में और शक्कर डाल दी । जब दिलीप को देने लगी तो उसने मना कर दिया । मुस्करा कर बोला—"तुम्हारे हाथ में मिश्री की मिठास है, भाभी ! शक्कर ले कर क्या करूंगा ?'

माया ने तिरछी दृष्टि से मुरारी की ओर देखा और फिर मुस्करा कर बोली—"धन्यवाद ! इन्हें तो मेरे हाथ में ज़हर दिखाई देता है ।"

"माया !" चीख पड़ा मुरारी !

माया सहम गयी; दिलीप गम्भीर हो गया ।

उस दिन फिर कोई प्रोग्राम न बन सका । दिलीप ने कहा भी, पर मुरारी ने साफ़ इन्कार कर दिया । माया मन मसोस कर रह गयी । दिलीप उठ कर चला गया ।

माया को भय हुआ कि कहीं दिलीप बुरा न मान गया हो । चिन्ता की बदलियों ने हृदय-आकाश को आच्छादित कर दिया । वह उदास हो गयी । चेहरा उतर गया । मन ही मन मुरारी के रूखे व्यवहार पर क्रोध भी आया, पर कुछ कह न सकी ।

मुरारी से माया के मन का भाव छिपा न रहा। वह समझ गया कि उसने दिलीप का कहना नहीं माना; इसलिए माया रुष्ट हो गयी है। उसने फिर भी मनाने की चेष्टा नहीं की। छत पर जाकर लेट गया। सोचने लगा कि माया अब मोम की पुतली नहीं है जिसे मन चाहा रूप दिया जा सके; वह मिट्टी की पकी हुई प्रतिमा की भाँति है जो टूट जायेगी पर मोड़ी न जा सकेगी। उसने निश्चय किया कि वह माया को सुखी रखने के लिए और अधिक कमायेगा; उसकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए रात-दिन कठिन परिश्रम करेगा।

तीन-चार दिन बीत गये। दिलीप नहीं आया। माया का सन्देह विश्वास में बदल गया। दिलीप अवश्य रुष्ट हो गया है, तभी तो नहीं आया। उसकी इच्छा हुई कि मुरारी से उसे बुला लाने के लिए कहे। फिर सोचा, मुरारी न जाने क्या सोचे! मौन रहना ही श्रेष्ठ समझा। जब दिलीप आता था तब उसे अपने अन्दर एक स्फूर्ति का अनुभव होता था। उसके न आने से फिर वही सूनापन छा गया।

जुलाई का वेतन लेकर मुरारी पंखे की किश्त देने के लिए जब दूकान पर पहुँचा तो दूकानदार ने पहले से अधिक आवाभगत की। मुरारी ने समझा कि वह अपना कोई काम निकालना चाहता है।

"यह लीजिये आठ रुपये!' कह कर मुरारी ने रुपये दूकानदार के सामने रख दिये।

'तीन-चार दिन हुए मैं आपके दफ्तर गया था।" रुपये सन्दूकची में रखता हुआ दूकानदार बोला। "बड़े बाबू से आपके बारे में बात हुई थी।"

"अच्छा! मैंने नहीं देखा आपको!' आश्चर्य से मुरारी ने कहा।

"आप उस दिन छुट्टी पर थे।"

"मेरी बुराई कर रहे होंगे बड़े बाबू! मुझसे काफी नाराज़ रहते हैं।"

"नहीं तो! वे तारीफ कर रहे थे। कह रहे थे मुरारी बाबू जैसा

ईमानदार व्यक्ति दफ्तर में नहीं है।"

दूकानदार की बात सुन कर मुरारी को हर्ष और सन्तोष हुआ। वह तो समझता था कि बड़े बाबू उससे असन्तुष्ट रहते हैं। चलो, ईमानदारी का एक प्रशंसक तो मिला।

"इस मँहगाई के ज़माने में बसर मुश्किल से होती होगी ?" दूकानदार से सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए पूछा।

"रूखा-सूखा खाकर और मोटा-झोटा पहन कर ही मैं सुखी हूँ।" मुरारी ने आत्म-विश्वास के साथ कहा।

"ईमानदारी का फल हमेशा मीठा होता है।" दूकानदार एक महान विचारक और अनभवी व्यक्ति की भांति बोला। "बुरा न मानें, तो एक बात कहूँ !"

"कहिये ! बुरा मानने की क्या बात है !"

"आपको कुछ कष्ट देना चाहता हूँ।"

मुरारी सनका। सोचा, अब अपने मतलब की बात करेगा। रूखे स्वर में बोला—"मेरे योग्य सेवा हो तो बताइये ! मगर इतना ध्यान रहे कि मैं कोई बेकायदा काम······।"

"आपने मुझे ग़लत समझा।" बीच में ही हँस कर दूकानदार बोला। "क्या आप शाम को कुछ समय निकाल सकते हैं ?"

"हाँ।"

"मेरी लड़की इस साल मैट्रिक में आयी है। क्या आप उसे पढ़ाने का कष्ट कर सकते हैं ?"

"मैं···मैं···!" घबरा कर मुरारी बोला। "मैं तो एकदम आउट आफ टच हूँ ! आप किसी दूसरे शिक्षक को क्यों नहीं रख लेते ?"

"ज़माना खराब है, बाबू जी ! सयानी लड़की है। आप को इतनी कृपा तो करनी ही होगी। वैसे लड़की पढ़ने में तेज़ है। अँग्रेज़ी कुछ कमजोर है। देखिये, मुझे निराश न कीजिये। रही फीस, सो आप जो

कहेंगे, दे दूँगा।"

मुरारी असमंजस में पड़ गया।

"क्या सोच रहे हैं ?"

"कुछ नहीं।" कहकर मुरारी फिर सोचने लगा। विद्यार्थी-जीवन में उसने बच्चों को पढ़ाया था। पढ़ाने का अनुभव और अभ्यास था। आत्मविश्वास की कमी न थी। उसे अपने पर भरोसा था कि वह मैट्रिक के विद्यार्थी को अच्छी तरह पढ़ा लेगा। घण्टे-डेढ़ घण्टे के बीस-पच्चीस मिल ही जायेंगे। क्या हानि है ? माया भी प्रसन्न होगी। उसके लिए अच्छे वस्त्र लाये जा सकेंगे।

"क्या मैं निराश हो जाऊँ ?" दूकानदार ने मुरारी को सोच में पड़ा देखकर पूछा।

"नहीं। मैं आपकी लड़की को अवश्य पढ़ाऊँगा। फीस आप जो ठीक समझें दे दें।"

दूकानदार ने घण्टे भर के पच्चीस रुपये देने के लिए कहा। मुरारी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।"

"कब से शुरू करेंगे ?"

"आज पहली तारीख है। दिन भी गुरुवार है। क्यों न आज से ही शुरू कर दिया जाये !" मुरारी ने उमंग से कहा।

"ठीक है !" कह कर दूकानदार ने दूकान नौकर पर छोड़ दी और मुरारी को लेकर अपने घर की ओर चल पड़ा।

× × ×

माया मुरारी की प्रतीक्षा करते-करते थक गयी।

छह बज गये। माया सोचने लगी, मुरारी रोज़ तो पाँच बजे तक घर आ जाता था। आज क्या बात हो गयी। विचार उठा, आज पहली तारीख है; शायद तनख्वाह लेने में देर हो गयी हो। तभी मन ने शंका की—हमेशा तो पहली तारीख को देर नहीं होती थी। फिर याद आया

कि पंखे की किश्त भी आज ही देनी है। मुरारी वहीं चला गया होगा।

अचानक आकाश पर घिरे बादल गरज उठे। बिजली की कड़क ने उसे चौंका दिया। वह चिन्तित हो उठी। यदि वर्षा होने लगी तो मुरारी घर कैसे आयेगा। शायद रास्ते में ही हो। तब तो भीग ही जायेगा।

उसी क्षण बिजली की तरह ही उसके मस्तिष्क में यह विचार कौंध गया कि मुरारी को अवश्य ही मार्ग में दिलीप मिल गया होगा। इसी कारण देर हुई है। उसकी यह धारणा कि दिलीप भी मुरारी के साथ आयेगा, विश्वास में बदल गयी। उसने उठकर मुँह धोया, केश ठीक किये और स्वच्छ धोती पहन ली। ब्लाउज भी बदल डाला।

आँगन के एक कोने में अँगीठी सुलग रही थी। पतीली में चाय के लिए पानी गरम हो रहा था। पास ही चाय का छोटा पैकेट, दूध का गिलास; शक्कर का डिब्बा और प्याले आदि रक्खे थे, माया ने चाय छानने के लिए एक साफ कपड़ा भी कोठरी से निकाल कर वहीं रख दिया।

बाहर से किसी ने द्वार खटखटाया। माया पुलकित हो उठी। शीघ्रता से द्वार खोलने गयी। बाहर मुँह में सिगरेट दबाये और पैन्ट की जेबों में दोनों हाथ डाले दिलीप खड़ा था। मुरारी का कहीं निशान भी न था।

"मुरारी है ?" दिलीप ने सिगरेट दबाये हुये ही पूछा।

"मैं तो समझती थी आपके साथ होंगे। क्या आपको नहीं मिले ?" माया ने प्रश्न किया।

दिलीप ने कोई उत्तर नहीं दिया। बाँया हाथ जेब से निकाल कर सिगरेट का टुकड़ा फेंक दिया।

"अन्दर आ जाइये।" कह कर माया एक ओर हट गयी।

दिलीप अन्दर आ गया।

चटाई पर बैठ कर माया बोली—"बैठ जाइये खड़े क्यों हैं ?"

"अभी आया, एक मिनट में !" कहकर दिलीप बाहर चला गया।

माया की समझ में उसका यह व्यवहार न आया। वह उदास हो गयी।

पाँच मिनट बाद ही मुस्कराता हुआ दिलीप आ गया। उसके हाथ में एक टोकरी थी।

"इसमें क्या है ?" माया ने कुतूहल से पूछा।

"पेठा और दाल मोठ ! सेव बाज़ार गया था। भीमा की दूकान से लेता आया।" कह कर उसने टोकरी माया को थमा दी। फिर हँस कर बोला—"टोकरी कार में रक्खी थी मगर मुझे याद ही नहीं रही थी। यहाँ आकर चाय की तैयारी देखी तो एकाएक याद आ गयी।"

दिलीप स्टूल पर बैठ गया। माया ने चटाई पर बैठ कर टोकरी खोली। लगभग दो सेर पेठा और सेर भर दाल मोठ थी।

माया ने चाय बनायी। एक तश्तरी में पेठा और दाल मोठ रक्खी। चाय का प्याला दिलीप की ओर बढ़ा कर बोली—"पीजिये।"

"और तुम ?' प्याला ले कर दिलीप ने पूछा।

"मैं बाद में पी लूंगी।" माया धीमे स्वर में बोली। फिर एक क्षण रुक कर कहा—"वे अभी तक नहीं आये। कहीं पानी बरसने लगा तो······।"

"बादलों का तो काम ही बरसना है, आँखों की तरह।' दिलीप ने हँस कर कहा।

"मैं कहती हूँ कि आपको कवि होना चाहिए था, डाक्टर नहीं !" माया ने मुस्करा कर कहा।

"और मैं कहता हूँ कि तुम्हारी जैसी भाभी पाकर भी जो कवि न बने वह इन्सान नहीं, पत्थर है।

अपनी प्रशंसा सुन कर हर नारी प्रसन्न हो उठती है। माया भी नारी ही थी, पर उसने अपनी प्रसन्नता को व्यक्त न होने दिया।

"चाय पीजिये ! ठन्डी करने से क्या फ़ायदा है ?' विषय बदलने के उद्देश्य से माया बोली।

"जब तक तुम नहीं पिओगी, मैं भी नहीं पिऊँगा।"

और तब माया को दिलीप का साथ देना पड़ा।

"मैं तो समझती थी कि आप······।"

"आप शब्द दूरी का द्योतक है। बीच में ही दिलीप बोल पड़ा। "मैं तो पहले ही दिन से तुम का प्रयोग कर रहा हूँ। शायद तुम मुझे अपने से बहुत दूर······!"

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं है।"

"तब आप के बजाय तुम कहो। भाभी देवर के बीच आप की दावार ठीक नहीं।" कह कर दिलीप खिलखिला कर हँस पड़ा।

माया भी अपनी हँसी न रोक सकी !

"मैं तो समझती थी कि तुम हमसे रूठ गये हो।" चाय का प्याला फर्श पर रख कर माया ने दृष्टि नीची करके कहा।

'रूठना और मनाना भाग्य से मिलता है, भाभी !" दीर्घ निःश्वास छोड़कर उदास और दुखी स्वर में दिलीप बोला। "जब कोई मनाने वाला ही नहीं है तो रूठूँ किससे ?"

"मनाने वाली ले क्यों नहीं आते ?" शरारत पूर्ण स्वर में माया बोली।

"कोई अच्छी लड़की मिले भी तो !"

"मैं खोज लाऊँगी। बताओ, कैसी लड़की चाहते हो ?"

"बताऊँ ?"

"कहीं इन्द्रलोक की अप्सरा न माँग बैठना जो लेने के देने पड़ जायें। मुस्करा कर माया ने कहा।

"मैं जैसी लड़की चाहता हूँ उसके सामने इन्द्रलोक की अप्सरा भी कुछ नहीं है।" स्वर को गम्भीर करके दिलीप ने कहा।

'अच्छा !' माया ने मुक्त हास्य बिखेर कर कहा। "ज़रा मैं भी तो सुनूं, कैसी लड़की चाहते हो ?"

"बिल्कुल तुम्हारी तरह" माया की आँखों में अपनी आंखें गड़ा कर दिलीप ने कहा।

माया के गोरे कपोलों पर उषा की लालिमा फैल गयी। दृष्टि स्वतः नीची हो गयी। वह कुछ बोल न सकी। उँगली से चटाई पर रेखायें खींचने लगी।

माया के मौन से दिलीप डर गया। सोचा, माया नाराज़ तो नहीं हो गयी ! क्या वह आवश्यकता से अधिक उतावला हो गया है ?

'रुष्ट हो गयीं ?" उसने डरे हुए स्वर में पूछा।

"नहीं तो" चौंक कर माया बोली। फिर उसकी ओर तिरछी दृष्टि से देखती हुई कहने लगी—"सोच रही हूँ, अभी तुम्हारी शादी तो हुई नहीं। फिर औरतों को बनाने वाली मीठी बातें कहाँ से सीखीं ?'

दिलीप के मन का बोझ हल्का हो गया। मीठी हँसी हँस कर बोला—"मैं बना नहीं रहा हूँ, सच कह रहा हूँ भाभी। कभी-कभी तो मुरारी के सौभाग्य से ईर्ष्या होने लगती हैं।

"जो डाक्टर स्वयं जलता है वह मरीज़ों की जलन कैसे दूर कर सकता है ?" माया ने व्यंग्य किया।

"आग ही आग को ठण्डा करती है, भाभी। और दिलीप ने आगे बढ कर माया का हाथ अपने हाथ में ले लिया। कृत्रिम घबराहट से बोला—"अरे तुम्हें तो बुखार मालूम होता है !"

"अजीब डाक्टर हो ! हाथ तुम्हारा गर्म है और बुखार मुझे बता बता रहे हो।" कह कर माया ने अपना हाथ खींच लिया।

जिस प्रकार मनों तेल और मठा से सींची गई अखाड़े की मिट्टी के स्पर्श मात्र से पहलवान का शरीर फूलकर दूना हो जाता है उसी प्रकार माया के कोमल कर के स्पर्श से दिलीप का हृदय प्रसन्नता से फल

गया। माया के हाव-भाव से उसने यह अनुमान लगा लिया कि उस पर धीरे-धीरे मेरा जादू हो रहा है और वह दिन दूर नहीं जब वह मेरी हो जायेगी। अपनी विजय निश्चित समझ वह मुस्करा पड़ा।

"तुमने ताजमहल देखा है, भाभी ?" एक क्षण बाद उसने प्रश्न किया।

माया को आये चार वर्ष हो गये थे, परन्तु उसने ताजमहल नहीं देखा था। दिलीप के प्रश्न ने उसे चक्कर में डाल दिया। यदि वह सच बोलती है तो दिलीप हँसी उड़ायेगा। तो क्या झूठ बोले ? कहदे कि हाँ, एक बार नहीं, कई बार देखा है ? बोलने के लिए मुँह खोला पर लाख चेष्टा करने पर भी झूठ न बोल सकी।

"अगर कहूँ कि नहीं देखा है, तो मेरी हँसी उड़ाओगे ?" दिलीप के प्रश्न का उत्तर न देकर वह स्वयं प्रश्न कर बैठी।

"नहीं ! मगर हाँ, मुरारी के लिए ज़रूर कहूँगा कि वह मनुष्य नहीं स्वार्थी पशु है ! आखिर वह पत्नी को समझता क्या है ? पत्नी केवल विलास की ही वस्तु नहीं है ! उसका स्वतन्त्र अस्तित्व है, उसका अपना व्यक्तित्व है।" दिलीप ने अपने स्वर में आवेश भर कर कहा।

माया ने अनुभव किया कि दिलीप सच कह रहा है। मुरारी ने उसे भोग की सामग्री के अतिरिक्त और कुछ समझा ही नहीं। क्या पत्नी ही पति के लिए अपनी जान देती रहे, शरीर घुलाती रहे ? क्या पति का कोई कर्त्तव्य नहीं, कोई उत्तरदायित्व नहीं ?

दिलीप ने समझ लिया कि तीर लक्ष्य पर बैठा है। गम्भीर स्वर में फिर बोला—"बन्दर जो दशा आरसी की करता है, वही दशा मुरारी ने तुम्हारी की है। न ढंग का पहनाना, न खिलाना। अपने आदर्शों और सिद्धान्तों के पीछे तुम्हारा जीवन नष्ट कर रहा है ! पागल !"

"उनकी समझ में यह नहीं आता कि आजकल ईमानदारों को कोई नहीं पूछता। इज्ज़त उसी की होती है जिसके पास चार पैसे होते हैं।"

माया का असन्तोष स्वर में उभर आया। "सोचती हूँ किसी स्कूल में मास्टरी कर लूँ। आखिर बी० ए० तक पढ़ना किस काम आयेगा ?"

"यह क्या कह रही हो तुम ?" दिलीप ने तत्काल ही कहा। "नौकरी करें तुम्हारे दुश्मन। मेरे रहते तुम्हें नौकरी करनी पड़े तो मेरे जीवन को धिक्कार है। क्या भाभी पर देवर का इतना भी अधिकार नहीं है कि वह भाभी के सुख और आराम के लिए कुछ कर सके ?"

"यह तुम्हारी कृपा है। मगर……।"

"अगर तुमने नौकरी की तो मैं जमुना में डूब मरूँगा। कहे देता हूँ।" दिलीप की बात करने की शैली ने माया को हँसा दिया।

दिलीप भी बच्चों की तरह भोली हँसी हँस दिया।

"सच ?" उसने हर्षातिरेक से पूछा।

"हाँ।" उठ कर दिलीप बोला। "अच्छा, अब चलता हूँ भाभी। मुरारी न जाने कब तक आये ?"

"बैठो न। ऐसी जल्दी भी क्या है ?" माया के स्वर में आग्रह था।

"मन तो होता है कि दिन-रात तुम्हारे पास ही बैठा रहूँ। मगर क्या करूँ! हँस कर दिलीप बोला। "साढ़े सात बजे अस्पताल पहुँचना है।"

माया दिलीप के साथ द्वार तक गयी। दिलीप चला गया। द्वार अन्दर से बन्द करके माया चारपाई पर लेट गई। वर्षों से अन्तर में पलने वाली ताजमहल देखने की साध पूरी होने वाली थी। वह उसी सुख की कल्पना में खो सी गयी।

और माया की कल्पना-धारा तब भंग हुई जब मुरारी ने बाहर से द्वार खटखटाया। वह उठ कर दरवाज़ा खोलने गयी।

"आज बहुत देर कर दी ?" मुरारी जब अन्दर आया तब माया ने पूछा।

"हाँ! एक ट्यूशन मिल गया है आज से! पच्चीस रुपये मिलेंगे।"

मुरारी ने समझा था कि माया इस समाचार से प्रसन्न होगी। पर प्रसन्न होने के बजाय वह खीझ कर बोली—"बस, बीस-पच्चीस रुपयों के लिए खून-पानी एक करते रहो। यह तो होता नहीं कि शर्मा की तरह......।"

"तुम्हारी ज़ुबान पर तो हर समय शर्मा का ही नाम रहता है।" चिढ़ कर मुरारी बोला। "अगर वैभव-विलास ही इतना प्रिय था तो मुझसे शादी ही क्यों की थी ?"

यदि मुरारी माया के गाल पर तमाचा मार देता तो शायद उसे इतना दुःख न होता जितना उसकी इस बात से हुआ। तिलमिला कर क्रुद्ध स्वर में बोली—"और तुमने क्या मुझे भूखी-नंगी रखने के लिए ही शादी की थी ?"

मुरारी उत्तर देना चाहता था, परन्तु तभी उसकी दृष्टि कोने में रखी टोकरी पर पड़ी। आगे बढ़कर उसने टोकरी खोल डाली।

"यह सामान कहाँ से आया ?" कठोर स्वर में उसने पूछा।

"दिलीप लाया था। बहुत देर तक तुम्हारी राह देखता रहा, फिर चला गया।" कहकर माया कोठरी में घुस गयी। कोठरी के अँधेरे में पहुँच कर उसकी इच्छा हुई कि रोए, जी भर कर रोए।

मुरारी टोकरी की ओर आग्नेय नेत्रों से घूरता रहा। उसे लगा कि दिलीप उसके लिए विष के बीज बो रहा है। मन हुआ कि टोकरी को पैर की ठोकर से बाहर की ओर फेंक दे, मगर पैर में उठने की शक्ति ही न थी। वह कटे हुए वृक्ष की तरह धड़ाम से चटाई पर बैठ गया और दोनों हाथों से मस्तक दाबने लगा।

माया ने बत्ती जला दी। बाहर आकर चाय बनायी। तश्तरी में पेठा और दालमोठ रख कर चाय का प्याला मुरारी के सामने रख दिया।

"चाय पीलो !" वह धीमे स्वर में बोली।

मुरारी ने चाय के प्याले की ओर देखा, फिर तश्तरी में रखे सामान की ओर देखा । बिना कुछ बोले चाय का प्याला उठा कर अधरों से लगा लिया ।

"पेठा और दालमोठ भी तो खाओ ।" कह कर माया ने तश्तरी कुछ और आगे सरका दी ।

"मीठा-नमकीन तुम्हीं को मुबारक हो । मेरे लिए खाली चाय ही ठीक है ।" मुरारी ने रूखे स्वर में कहा ।

मुरारी के स्वर में व्यंग्य की गन्ध पाकर माया भड़क उठी । तेज स्वर में बोली—"क्यों मेरी जान लेने पर तुले हो ? अगर यह सामान वापस कर देती तो दिलीप बुरा न मानता ?"

"ठीक है ! आज मीठा-नमकीन लाया है, कल साड़ियाँ लायेगा, परसों जेवर लायेगा; तुम सब रखती रहना । दिलीप को खुश रखने के लिए जो वह चाहे सो···।"

"तुम्हें शर्म नहीं आती ऐसी बातें करते हुए ?" गरज कर माया ने कहा । "मैं पूछती हूँ, क्या मैं दिलीप को बुलाने गई थी ? क्यों लाए थे उसे घर में ? क्यों परिचय कराया था ? अब चाहते हो कि जब वह आए तो दुत्कार दूँ; उसकी लायी हुई साधारण चीजों को भी ठुकरा दूँ ! आखिर क्यों ? तुम ऐसा कर सकते हो; मैं नहीं कर सकती ! अभी मुझ में शिष्टाचार बाकी है ।"

मुरारी पागल सा हो गया । चाय का प्याला रख कर उसने माया के गालों पर जोर से दो तमाचे मार दिए और क्रुद्ध स्वर में बोला—"और लड़ाओगी मुझसे जुबान ?"

माया ने चाहा कि वह चीख कर उससे कहे कि तुम आदमी नहीं जानवर हो ! मगर वह चीख न सकी; मुँह से बोल न फूटा । मुरारी ने पहली बार उस पर हाथ उठाया था । गालों से अधिक चोट दिल पर पहुँची थी । अपनी बाहों में मुँह छिपा कर सिसकने लगी ।

मुरारी उठ कर बाहर चला गया । पार्क में पहुँच कर मन शांत हुआ। सोचा व्यर्थ ही बिचारी को मारा ! आत्म-ग्लानि से मन भारी हो गया।

माया सिसकती रही। उसे मुरारी पर क्रोध आ रहा था, अपने पर क्रोध आ रहा था, उस क्षण पर क्रोध आ रहा था जिसने उसके हृदय में मुरारी के प्रति प्यार का बीज बोया था। उसकी दुखी आत्मा विद्रोह पर उतर आई। उसने निश्चय किया कि अब वह मुरारी की धौंस नहीं सहेगी !

उस रात को भी मुरारी को भूखा ही सोना पड़ा। माया ने जान-बूझ कर भोजन नहीं बनाया।

६

***

शनिवार को जब मुरारी आफिस जाने लगा तो माया बोली—"आज पढ़ाने न जाना ! सीधे घर आ जाना !"

मुरारी के द्वार की ओर बढ़ते हुये चरण ठिठक गये। घूम कर रूखे स्वर में पूछा—"क्यों ?"

"दिलीप ताजमहल चलने के लिए कह गया था। वह तीन बजे आ जायेगा।" मुरारी की दृष्टि बचाकर माया ने कहा।

"कल इतवार है। अगर आए तो कल के लिए कह देना।" कह-कर मुरारी द्वार की ओर बढ़ने लगा।

माया चिढ़ गई। आगे बढ़ कर तीखे स्वर में बोली—"और आज क्या बात है ? आज भी तो जल्दी छुट्टी हो जायेगी ?"

"आजकल काम बहुत है। दफ्तर में ही चार बज जायेंगे। नई-नई ट्यूशन है। पढ़ाने भी जाना है।" मुरारी ने बिना घूमे ही उत्तर दिया।

"काम तो तुम्हें उम्र भर लगा रहेगा !" माया विद्रोह के स्वर में बोली। "मैं अब इस चारदीवारी से घिरे नरक की आग में और अधिक नहीं जल सकती। पक्का प्रोग्राम बन गया है। मैं तो आज ही जाऊँगी।"

माया के स्वर में विद्रोह की दृढ़ता पाकर मुरारी चौंक पड़ा। धीरे-धीरे घूमता हुआ मन्द स्वर में बोला—"मैं आज नहीं जा सकता !"

"तो मैं अकेली ही चली जाऊँगी।" कह कर माया कोठरी में घुस गयी !

मुरारी हतबुद्धि सा खड़ा रहा।

"यह लो ताले की दूसरी चाभी!" एक क्षण बाद ही बाहर आकर माया बोली। "हो सकता है लौटने में हमें देर हो जाय।"

मुरारी ने कम्पित हाथ से कुंजी लेली और फिर सिर झुकाकर मन्द गति से बाहर चला गया।

रास्ते में वह कितनों से टकराया, कितनों ने उसे अन्धा-बहरा कहा, कितनों ने पागल कह कर हँसी उड़ायी, उसे इसका कुछ भी ज्ञान नहीं।

घर में माया तब तक बहुत, उद्विग्न और आकुल रही जब तक दिलीप आ न गया।

'अभी तक मुरारी नहीं आया?" दिलीप ने आते ही प्रश्न किया।

"उन्हें 'छुट्टी' नहीं है।" माया छुट्टी शब्द पर ज़ोर देकर बोली। "मैं अभी, एक मिनट में तैयार होती हूँ।"

"लेकिन......।"

"मुझे अकेले ले चलने में डर लगता है क्या?" कजरारी आँखों में बिजली सी मुस्कान भर कर माया ने पूछा।

"तुम तो मज़ाक करती हो, भाभी!" हँसकर दिलीप बोला। "मैं तो यह सोच रहा था कि मुरारी अपने मन में क्या कहेगा।"

"मुझे अब किसी की परवाह नहीं है। मैं आज़ाद हूँ। मैंने उनसे कह भी दिया है कि मैं अकेली ही चली जाऊँगी।" एक क्षण रुक कर माया दिलीप की ओर तिरछी दृष्टि से देखती हुई बोली—"हाँ, अगर तुम्हें कुछ आपत्ति हो......।"

"मुझे क्या आपत्ति हो सकती है?" इस अवसर को मैं अपना परम सौभाग्य समझता हूँ।" कहकर दिलीप सिगरेट सुलगाने लगा।

माया दिलीप को आँगन में छोड़कर कोठरी में चली गयी।

दिलीप प्रसन्न था। उसे मुँह माँगा वरदान मिला था। फिर भी वह अपनी प्रसन्नता को छिपाने की भरसक चेष्टा कर रहा था।

वह नहीं चाहता था कि माया उसके हार्दिक भावों से अभी अवगत हो जाय। सिगरेट के धुँयें के छल्ले बनाता हुआ, वह आँगन में टहलने लगा।

कोठरी में वस्त्र बदलते समय माया सोच रही थी—अब मुरारी को पता लग जायेगा कि मैं किसी की दासी नहीं हूँ; मेरा भी स्वतन्त्र अस्तित्व है—इच्छायें हैं और मैं जो चाहूँ कर सकती हूँ। आज के बाद बुद्धि ठिकाने आजायेगी। फिर कभी उपेक्षा करने का साहस न कर सकेगा। अभी तो समझता है कि उसके बिना मैं कुछ कर नहीं सकती, कहीं जा नहीं सकती! मगर मैं सिद्ध कर दूँगी कि पत्नी पति की छाया मात्र ही नहीं होती।

बन-सँवर कर माया जब बाहर आयी तो दिलीप देखता रह गया। साधारण वस्त्रों में भी अप्सरा लग रही थी। नागिन सी बल खाती हुई लम्बी वेणी, नरगिसी आँखों में काजल की महीन रेखायें, अधरों पर यौवन की सहज लाली, दायें कपोल पर काजल से बनाया गया नन्हा सा तिल, चेहरे पर अजीब भोलापन, साँचे में ढला हुआ सुन्दर शरीर!

"अच्छी लग रहूँ न?" दिलीप को अपनी ओर अपलक दृष्टि से देखता हुआ देख कर माया ने पूछा।

"इच्छा होती है कि इस मनोहर छवि को आँखों में बन्द करके पलकों के द्वार बन्द कर लूँ।" अपने स्वर को मुस्कान के मीठे रस में घोल कर दिलीप बोला।

'झूठी प्रशंसा किसी और के लिए रहने दो। चलो, देर हो रही है।" माया ने भी मुस्कराते हुए कहा।

दोनों बाहर आ गये। माया ने द्वार बन्द करके ताला लगा दिया और ताली रूमाल में बाँध ली।

गली के बाहर कार खड़ी थी। दोनों अगली सीट पर बैठ गये। दिलीप ने कार स्टार्ट कर दी।

"आश्चर्य है कि जिस ताज को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं उसे तुमने आगरे में रहते हुए भी नहीं देखा !" मार्ग में दिलीप ने कहा।

"यह मेरा दुर्भाग्य है।" धीमे स्वर में माया बोली। "कई बार उन से कहा भी पर वे हमेशा टालते रहे। एक बार तो यहाँ तक कह दिया कि क्या रक्खा है ताज में ! पत्थरों का ढेर है।"

"अच्छा···?"

"हाँ ! कहते हैं कि ताज हम निर्धनों के प्यार का परिहास करता है। हर प्रेमिका अपने प्रेमी के प्यार को ताज की कसौटी पर ही कसना चाहती है।"

"इसी डर से वह तुम्हें ताज नहीं ले गया। डरता था कि कहीं तुम भी अपनी स्मृति में ताज बनवाने की माँग न कर बैठो।" हँस कर दिलीप बोला।

"जो ठीक से खिला और पहना नहीं सकता वह भला ताज क्या बनवायेगा !" मुँह बिगाड़ कर असन्तुष्ट स्वर में माया ने कहा।

माया के हृदय में मुरारी के प्रति पनपते हुए असन्तोष की धधकती हुई आग को देख कर दिलीप हर्षित हो उठा। मक्खी को अपने रेशमी सुनहरे जाल के पास आते देख कर जो दशा भूखी मकड़ी की होती है, वही दशा उस समय दिलीप की थी। आनन्द विभोर होकर उसने कार का हार्न अकारण ही बजा दिया।

'अगर बुरा न मानो तो एक बात पूछूँ ?" कुछ देर बाद दिलीप ने कहा।

"पूछो !" हँस कर माया ने कहा और फिर अपने बाल ठीक करने लगी।

"तुमने क्या देख कर मुरारी से शादी की ?"

दिलीप का प्रश्न सुन कर माया सहसा गम्भीर हो गयी। दिलीप

घबरा गया। सोचा—मैं भी कैसा मूर्ख हूँ जो ऐसा बेहूदा सवाल कर बैठा।

"अगर मेरे प्रश्न से तुम्हें दुख हुआ तो···।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है।" दिलीप की बात बीच में ही काट कर मन्द स्वर में माया बोली—"मेरी समझ में खुद नहीं आता कि मैंने उनमें ऐसी क्या विशेषता देखी थी! मैं उनसे प्यार करने लगी थी; परन्तु··· परन्तु आज लगता है कि वह मेरी भूल था। क्षणिक आवेश में आकर अपने जीवन का गला अपने ही हाथों से घोंट बैठी हूँ।"

बोलते-बोलते माया का कन्ठ अवरुद्ध हो गया। दिलीप को लगा कि वह रो पड़ेगी। पर माया ने अपने को संयत कर लिया और फिर वह निरन्तर पीछे छूटने वाले वृक्षों की ओर देखने लगी।

कार ताजमहल के समीप पहुँच गयी।

भारतवर्ष ही कदाचित संसार में एक ऐसा देश है जिसके किसी भी कोने में चले जाइये, आपको भिखारियों से मुक्ति नहीं मिल सकती। शहरों से लेकर देहातों तक, देवालयों से लेकर वेश्यालयों तक, तीर्थों से लेकर व्यभिचार के अड्डों तक—हर स्थान पर भीख माँगने वाले दिखाई देंगे। जैसे ही दिलीप की कार रुकी वैसे ही एक बूढ़ी भिखारिन पास आकर खड़ी हो गयी।

"दाता, एक पैसा मिल जाये। दूधों नहाओ, पूतों फलो! बूढ़ी पर दया हो जाये, दाता! जोड़ी सलामत रहे मालिक की!" दिलीप और माया को कार से उतरते देख भिखारिन ने अपने सधे हुये लहजे में कहा।

भिखारिन का अन्तिम आशीर्वाद सुन कर माया लज्जा से पानी-पानी हो गयी। दिलीप की आँखों में शरारत और अधरों पर मुस्कान खेल गयी। उसने एक दुवन्नी भिखारिन को दे दी।

"जुग-जुग जियो, बेटा!" भिखारिन ने फिर आशीर्वाद दिया।

भिखारिन को पीछे छोड़ कर दोनों आगे बढ़ गये।

"ये भिखारिनें भी बड़ी दुष्ट होती हैं।" सीढ़ियों पर चढ़ते हुए माया ने कहा। "न जाने क्या-क्या बकने लगती हैं ?"

दिलीप खिलखिला कर हँस पड़ा। माया फिर शर्म से लाल हो गयी।

सामने ही प्यार का प्रतीक, संगमरमर का दुग्ध-धवल ताज खड़ा था। देख कर माया के मन में हिलोरें सी उठने लगीं। जीवन की वास्तविकताओं विषमताओं और कटुताओं को पीछे छोड़ कर वह काल्पनिक लोक में पहुँच गयी।

"मैंने स्वप्न में भी न सोचा था कि ताजमहल इतना सुन्दर होगा।" ताज के स्वर्गीय सौंदर्य को आँखों में बन्दी कर लेने की चेष्टा करती हुई माया बोली।

"ताज सौंदर्य की साकार प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त···।"

"रुक क्यों गये ? हाँ, इसके अतिरिक्त···?"

"प्यार भरे दो दिलों के लिए यह एक पावन तीर्थ है।" कह कर दिलीप उसकी ओर गूढ़ दृष्टि से देखने लगा।

माया ने भी दिलीप की ओर देखा, पर कुछ बोली नहीं ! वह रंग-बिरंगे वस्त्र पहने हुए, इधर-उधर तितलियों सी उड़ने वाली युवतियों की ओर देखने लगी। सोचा—कोई अपने पति के साथ होगी और कोई अपने प्रेमी के साथ···!

"प्यार भरे दो दिलों के लिये यह पावन तीर्थ है।" दिलीप का स्वर उसके कानों में फिर गूँज उठा।

प्यार भरे दिल···! पावन तीर्थ···! प्यार भरे दिल···! कभी मेरे दिल में भी प्यार का सागर लहरा रहा था···, पर आज···आज वह जैसे सूख गया है, क्योंकि जिस चाँद को देख कर सागर में आन्दोलन होता था, ज्वार आता था, वह चाँद धोखा निकला, छल निकला !

माया के मुख से एक दीर्घ निःश्वास निकल गया। क्या उस मुर्दा प्यार को फिर जिन्दा नहीं किया जा सकता ? इस प्रश्न की प्रतिध्वनि उसके अन्तर में गूंज कर रह गयी।

"चलो, अन्दर चल कर मुमताज़ की समाधि देखें।" दिलीप ने माया का हाथ पकड़ कर कहा।

माया ने हाथ छुड़ाने की चेष्टा नहीं की। मन्त्र-मुग्ध सी उसके साथ चल दी। हाँ, उसका शरीर एक बार काँप अवश्य गया—जैसे हवा के हल्के झोंके से पीपल का पत्ता काँप जाता है।

लालटेन के धीमे प्रकाश में उन्होंने मुमताज़ की समाधि देखी। माया का हाथ उस समय भी दिलीप के हाथ में था। उस अँधेरे कक्ष में पूरी शान्ति थी और मुमताज़ मानो अपने शयन-कक्ष में सो रही थी। दोनों ने समाधि की परिक्रमा की। तभी दिलीप को लगा कि माया का हाथ ज़ोर से काँपा है। उसका पूरा शरीर लता की तरह काँपने लगा।

"मेरे शाहजहाँ, कहाँ हो तुम ?" माया के मुख से अस्फुट स्वर निकले।

"मैं तुम्हारे साथ हूँ, मुमताज़ !" कह कर दिलीप माया से सट गया।

माया का शरीर शिथिल हो गया। वह दिलीप के ऊपर झुक सी गयी। दिलीप ने प्रोत्साहित होकर उसे आलिंगन में कस लिया, किन्तु तभी उसे ज्ञात हो गया कि माया बेसुध सी हो रही है और किसी भी क्षण वह मूर्छित हो सकती है। दिलीप चिन्तित हो उठा। सहारा देकर उसे ऊपर ले आया। बाहर आकर ठन्डी हवा के झोंकों से माया सचेत हुई।

"अब मैं ठीक हूँ। अंदर दम सा घुटने लगा था।" कह कर माया ने अपना हाथ धीरे से खींच लिया।

"थोड़ी देर हरी-हरी दूब पर आराम कर लो।" दिलीप ने कहा।

दोनों लान पर बैठ गये।

"अब तबियत ठीक है ? मैं तो घबरा गया था !" दिलीप ने माया का हाथ फिर अपने हाथ में ले लिया।

"अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ। समाधि के पास न जाने कैसा लगने लगा था।" माया धीमे स्वर में बोली। "सच, मुझे लगा जैसे मुमताज़ की आत्मा मेरे शरीर में प्रवेश कर गयी हैं !"

"कुछ ऐसा ही अनुभव मुझे भी हुआ।" अवसर से लाभ उठाने के उद्देश्य से दिलीप बोला। "शाहजहाँ की आत्मा मेरे शरीर में आ गयी थी।"

"शायद दोनों की आत्मायें उस कमरे में भटकती हैं।" दूब का एक नन्हा पौधा अधरों के बीच रख कर माया ने कहा।

"और वे उन शरीरों में प्रवेश कर जाती हैं जिनमें प्यार भरे दिल की धड़कनें होती हैं। आज दो भटकती हुई आत्माओं का मिलन हुआ है, माया।"

दिलीप के मुख से अपना नाम सुन कर माया चौंक पड़ी। दृष्टि उठा कर दिलीप की ओर देखा। वह मुस्करा रहा था।

"क्या भाभी-देवर का नाता पसन्द नहीं ?" माया ने शरारत भरे स्वर में पूछा।

"दिल का रिश्ता सबसे बड़ा होता है।"

"तुम ठीक कहते हो ! दिल का रिश्ता सबसे बड़ा होता है, दिलीप !" कह कर माया ताजमहल की ओर अपलक दृष्टि से देखने लगी। कुछ देर बाद बोली—"पर मेरा दिल एक वीरान घाटी की तरह है जिसमें न पेड़ों की छाया है और न नदियों की शीतलता ! अभावों ने मेरे प्यार का गला घोंट दिया है, मेरे जीवन को एक भयानक रेगिस्तान बना दिया है।"

माया का स्वर रुँध गया। आँखों में आँसू आ गये।

"वह वीरान घाटी आबाद हो सकती माया! रेगिस्तान में भी दूब उग सकती है! हिम्मत से काम लो। रोने और सिसकने से दिल की मुराद पूरी नहीं होती।" दिलीप ने माया की पीठ पर हाथ रख कर कहा।

सहानुभूति के स्वर सुन कर दुखी हृदय उमड़ पड़ा। माया सिसक-सिसक कर रोने लगी।

दिलीप ने अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछे और धीमे स्वर में कहा—"रोना बन्द करो, माया! लोग देखेंगे तो क्या सोचेंगे?"

कुछ देर बाद माया ने अपने को संयत कर लिया।

दोनों कुछ समय तक मौन बैठे रहे।

"तुम्हारी उपस्थिति में मैं अपने दुःखों को भूल जाती हूँ।" माया ने दृष्टि उठा कर कहा। "मगर वे मेरा यह सुख भी नहीं देख सकते।"

"छोड़ो इन बातों को।" दिलीप उठ कर बोला। "चलो, बाहर रेस्तराँ है। कुछ जलपान कर लें।"

माया ने प्रतिवाद नहीं किया। साथ चल दी।

जलपान करके दोनों कार पर बैठ गये, कार नगर की ओर चल दी।

"यहाँ जितनी भी औरतें थीं सब रेशमी साड़ियाँ पहने थीं। एक मैं ही थी जो मामूली इकलाई······।"

'मगर फिर भी तुम सबसे सुन्दर लग रही थीं।" माया की बात काट कर दिलीप बोला।

"इससे क्या हुआ? क्या मेरी इच्छा नहीं होती कि मैं भी अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनूँ, श्रृंगार करूँ, घूमूँ-फिरूँ?"

"अपने दिलीप पर भरोसा रक्खो। सब हो जायेगा।"

"कैसे?" माया ने आश्चर्य से पूछा।

"तुम्हारी शादी किस महीने में हुई थी?"

"अप्रेल में ! क्यों ?" दिलीप के प्रश्न का आशय न समझ कर माया ने पूछा ।

"और जन्म कब हुआ था ?"

"अगस्त में ।"

"अगस्त में ?" प्रसन्न होकर दिलीप ने पूछा । "तारीख याद है ?

"हाँ ! पाँच अगस्त !"

"आज तीन तारीख है । परसों तुम्हारा जन्म-दिन है । है न ?"

दिलीप की बात माया की समझ में आ गयी । बोली—"है तो ! मगर अभी तक तो जन्म-दिन मनाया नहीं ।"

"क्या हुआ ? इस बार मनाना ।" दिलीप हँस कर बोला । "तुम मुझे अपने हाथ की चाय पिलाना और मैं उपहार में अच्छी-अच्छी साड़ियाँ, ब्लाउज़, पेटीकोट और···और···।"

"बस, बस ! रहने दो ! समझ गयी मैं । संकुचित होकर माया ने कहा । फिर उदास होकर बोली—'मगर वे लेने देंगे ?"

"पढ़ी-लिखी होकर भी कैसी बातें करती हो, माया ? क्या तुम्हें अपना जन्म-दिन मनाने और उपहार लेने का भी अधिकार नहीं ? मैं कहता हूँ, अपने को पहचानो, अपने अधिकारों को पहचानो ।" दिलीप ने माया को पानी पर चढ़ाते हुये कहा ।"

"तुम ठीक कहते हो ! मैं अपने अधिकारों के लिए लड़ूँगी ।" माया के स्वर में निश्चय की दृढ़ता थी ।

"और उसी दिन हम सीकरी चलेंगे । ठीक है न ?

"और किला ? मैंन तो किला भी नहीं देखा है । क्यों न आज ही देख लें ?" उत्साह से माया ने प्रस्ताव रक्खा ।

"मगर फिर लौटने में देर हो जायेगी । मुरारी···।"

"मैंने एक चाभी उन्हें दे दी है । कह भी दिया था, शायद देर हो जाये ।" माया ने कहा ।

दिलीप तो चाहता ही था कि माया अधिक से अधिक समय तक साथ रहे। राजी हो गया। कार किले के बाहर रोक कर उसने टिकट खरीदे और फिर दोनों अन्दर घुस गये।

माया ने किले को उसी उत्साह और चाव से देखा जिससे बच्चे नयी-नयी सुन्दर वस्तुओं को देखते हैं। वह उस छोटे से पत्थर को देख कर दंग रह गयी जिसमें ताजमहल का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखाई देता है।

"मुग़ल बहुत कल-प्रेमी थे।" उत्कृष्ट शिल्प-कला की बानगी देख कर माया ने कहा।

"सीकरी का बुलन्द दरवाजा देखोगी तो दाँतों तले उँगली दबा लोगी।" दिलीप का उत्तर था।

'सच ? तब तो जरूर चलूँगी परसों।" कह कर उसने दिलीप का हाथ इस प्रकार थाम लिया जैसे डूबते हुये प्राणी को कोई सहारा मिल गया हो।

'आज खुली हवा में साँस लेकर अनुभव हुआ है कि मैं भी ज़िन्दा हूँ।" किले के बाहर आकर माया बोली। "लगता है जैसे नरक की यन्त्रणाओं से मुक्ति पाकर आत्मा स्वर्ग में विहार कर रही है।

दिलीप मौन रहा। वह मन ही मन परसों के लिए योजनायें बना रहा था। मछली ने चारा खा लिया था, बस अब उसे पकड़ने की देर थी।

कार किले को छोड़ कर आगे बढ़ गयी।

"कहीं आज का सुख भी सपना न बना देना, दिलीप !" उसके कंधे पर हाथ रख कर माया ने कहा।

"सपना तो तुम्हारा कल तक का जीवन था। आज से सत्य शुरू होता है।" दिलीप ने आश्वासन दिया।

'मुझे तुमसे डर लगता है, दिलीप।" माया के स्वर में शरारत थी।

"क्यों ?" दिलीप ने चौंक कर पूछा।

"तुमने किसी बीमा-एजेंट को देखा है ?"

"बहुतों को।"

"जब तक उन्हें पालिसी नहीं मिलती तब तक तो वे ग्राहक से चिकनी-चुपड़ी बातें करते हैं, सुबह-शाम घर के चक्कर लगाते हैं; मगर जब पालिसी मिल जाती है तब बात भी नहीं करते, आँखें चराते हैं, सामने पड़ जाने पर भी पहचानते नहीं। कहीं तुम भी ऐसा ही न करना, दिलीप ! जीने की प्रेरणा दी है तो जीवन भर साथ देना।"

"तुम बहुत भावुक हो, माया।" हँस कर दिलीप बोला।

"सच, जब तुम कई दिनों तक नहीं आये थे तब न जाने कैसा लगता था ! मैं तो डर गयी थी कि तुम नाराज़ हो गये हो और अब कभी नहीं आओगे ! बोलो, क्या तुम सचमुच नाराज़ हो गये थे ?" माया ने आकुलता से पूछा और उसके कन्धे पर अपना हाथ रख दिया।

जिस तरह एक सफल और पक्का पतंगबाज़ यह जानता है कि कब पतंग को खींचना चाहिये और कब ढील देनी चाहिये, उसी प्रकार दिलीप भी प्यार के दाँव-पेंचों से पूर्णतया परिचित था। वह माया के घर कई दिनों तक इसीलिए नहीं गया था कि उस समय ढील आवश्यक थी। वह यह भी जानता था कि उसके न जाने से माया यही समझेगी कि वह रुष्ट हो गया है। वही वह चाहता भी था। माया का प्रश्न सुन कर प्यार भरे स्वर में बोला—"तुम्हें बिना देखे मेरी जो दशा हुई थी उन दिनों, यदि यह जानना चाहो तो किसी दिन आकर मेरे नौकर से पूछ लेना।

दिलीप का उत्तर एक प्रकार से माया को अपने घर बुलाने का निमन्त्रण था।

"आऊँगी कभी तुम्हारे घर।" हँस कर बोली। "पर डरो मत। नौकर से मैं कुछ नहीं पूछूँगी।"

और फिर दोनों मुस्करा पड़े, मानो एक दूसरे के मन का प्रभाव उन्होंने समझ लिया हो और अब अधिक पूछने-समझने के लिए कुछ शेष ही न रहा हो।

७

***

दफ्तर में मुरारी बहुत उद्विग्न रहा। बार-बार ध्यान काम से हट कर घर की ओर पहुँच जाता। रह-रह कर माया का स्वर कानों में गूंज उठता। गर्म तवे पर पड़ी बूंद की तरह मन की शांति नष्ट हो गयी और उसे लगा जैसे एक भारी पत्थर उसके कलेजे पर नियति के क्रूर हाथों ने रख दिया है। उसे एक अजीब सी घुटन का अनुभव हुआ। ग्लेशियर की तरह एक शीतल दाह उसके अंग २ में रेंगने लगा। कई बार इच्छा हुई कि बड़े बाबू से छुट्टी लेकर घर चला जाये, परन्तु हर बार स्वाभिमान पत्थर की दीवार बन कर खड़ा हो गया। जब माया को मेरी चिन्ता नहीं, जब वह अकेली ही दिलीप के साथ जा सकती है तो फिर मैं क्यों उसके लिए चिंता करूँ, उसने सोचा।

मुरारी की व्याकुलता बड़े बाबू से छिपी न रही। उन्होंने टोका भी। 'तबियत कुछ भारी है,' कह कर मुरारी टाल गया। बड़े बाबू छुट्टी देने को तैयार भी हो गये, परन्तु उसने इन्कार करदी। छुट्टी लेकर घर जाने का अर्थ था उसकी पराजय और माया की विजय। यदि वह घर गया तो माया का दिमाग़ आसमान पर चढ़ जायेगा। नहीं, वह घर नहीं जायेगा। उसे दिलीप के साथ अकेले ही जाने का साहस कैसे हुआ? शायद वह समझती थी कि अकेले जाने की बात सुन कर मैं छुट्टी ले लूंगा, पढाने नहीं जाऊँगा। नहीं, मैं इतना दुर्बल नहीं हूँ।

साढ़े तीन बजे उसने दफ्तर छोड़ दिया। सोचा, घर चल कर देख लूँ--शायद माया अभी न गयी हो। लाला जी से दूकान पर कह दूं कि आज जरूरी काम है, पढ़ाने नहीं आ सकूंगा। फिर सोचा, नई-नई ट्यू-

शन है; अभी से ग़ैरहाज़िरी ठीक नहीं और वह तीव्र गति से लाला जी के घर की ओर चल पड़ा।

वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि पढ़ने के कमरे में कामिनी के साथ एक और भी लड़की बैठी है। उम्र तो लड़की की ही थी, पर बन वधू चुकी थी। माँग में सिंदूर की रेखा थी, हाथों में सुहाग की चूड़ियाँ थीं। मुरारी को देख कर वह उठ कर जाने लगी।

"अरे, बैठो न ! मास्टर साहब से पूछ लो अपना सवाल।" कामिनी ने उसे रोकने की कोशिश की।

"फिर कभी पूछ लूँगी।" कह कर वह बाहर चली गयी।

मुरारी अपने स्थान पर बैठ गया।

"आज बहुत जल्दी आगए, मास्टर साहब ?" कामिनी ने पुस्तक खोल कर मेज़ पर रखते हुए पूछा।

"हाँ ! आज शनिवार है न ! दफ्तर जल्दी बन्द हो गया।" कह कर मुरारी ने पुस्तक उठा ली। फिर बोला—"कल यहाँ तक पढ़ा था ! आगे पढ़ो।"

कामिनी ने पुस्तक लेली और आगे पढ़ने लगी।

"यह लड़की कौन थी और मुझसे क्या पूछना चाहती थी ?" सहसा मुरारी पूछ बैठा।

कामिनी ने पुस्तक से दृष्टि उठा कर उत्तर दिया—"मेरी सहेली है। पड़ोस में ही रहती है। आज ही ससुराल से आई है।"

"अच्छा......।"

"और अब कभी नहीं जायेगी।" कह कर कामिनी ने अपनी दृष्टि फिर पुस्तक में गड़ा दी।

कामिनी की बात मुरारी की समझ में न आयी। कुतूहल से पूछा—"क्यों ?"

"ससुराल छोड़कर चली आई है।"

कामिनी के उत्तर से मुरारी की जिज्ञासा शांत नहीं हुई । फिर पूछा — 'आखिर क्यों ? क्या सास-ससुर से झगड़ा हो गया ?"

"सास-ससुर तो हैं ही नहीं ।"

'तुम तो पहेली बुझा रही हो । क्या...क्या पति से झगड़ा हो गया ?"

'हाँ !"

मुरारी गम्भीर हो गया । सोचने लगा, ऐसी क्या बात हो गयी जो नव-दम्पति में अनबन हो गयी । झगड़े का कारण जानने की इच्छा हुई, पर संकोचवश पूछ न सका ।

"मुझसे क्या पूछना चाहती थी ?" एक क्षण रुक कर मुरारी ने प्रश्न किया ।

"कह रही थी कि रह-रह कर एक बात मेरे दिल को कचोटती है । किससे पूछूँ, कुछ समझ में नहीं आता ! मैंने कहा--हमारे मास्टर साहब बहुत होशियार हैं, उनसे पूछ लेना । उसने कहा—ठीक है । ज़रूर पूछूँगी । आपकी ही प्रतीक्षा में बैठी थी, पर जब आप आए तो सवाल पूछने के बजाय चली गई ।" कह कर कामिनी मुरारी की तरफ भोली दृष्टि से देखने लगी ।

"शायद शरमा कर चली गई ।" कह कर मुरारी दीवार की ओर देखने लगा और फिर धीमे स्वर में पूछ हा बैठा—"पति से झगड़ा किस बात पर हो गया ?"

"कहती थी—दिन-रात घर में बन्द रहना पड़ता है । न कहीं घुमाने ले जाते हैं और न अकेले ही जाने देते हैं ।"

मुरारी की छाती पर जोर का मुक्का पड़ा । कामिनी के शब्द गर्म सीसे की तरह कानों की राह उसकी अन्तरात्मा में उतरते चले गए । हृदय की गति तीव्र हो गई, कंठ सूख गया और मस्तक पर पसीने की बूंदें छलक आयीं ।

"आपकी तबियत तो ठीक है, मास्टर साहब ?" मुरारी की दशा देखकर कामिनी ने घबराए स्वर में पूछा ।

"हाँ-हाँ, तबियत ठीक है ।" मुरारी ने संयत होने की चेष्टा करते हुए कहा । मस्तक का पसीना पोंछ कर पूछा—"इतनी सी बात पर झगड़ा हो गया ?"

"उमा बड़े घर की लड़की है । यहाँ शान से रहती थी । वहाँ ठीक से खाने-पहनने को भी नहीं मिलता ।" कामिनी पेंसिल से नोट-बुक पर सीधी-तिरछी रेखायें खींचती हुई बोली ।

"यह तो उमा के माता-पिता की गलती है । मामूली घर में शादी क्यों की ?" मुरारी का स्वर स्वतः भारी हो गया ।

"बड़े घर वाले काफी दहेज माँगते थे .....।"

"मगर उमा के पिता तो धनी व्यक्ति हैं ! दहेज़ सरलता से दे सकते थे ।"

कामिनी ने दृष्टि उठा कर मुरारी की ओर देखा । मुरारी को लगा कि उसकी आँखों में अश्रु-बून्द काँप रहे हैं । मन्द और दुःखी स्वर में वह बोली—"उमा की सौतेली माँ यह नहीं चाहती थी कि उसके लिए लम्बा दहेज दिया जाये ।"

सारी परिस्थिति मुरारी की समझ में आ गयी । मन भारी हो गया । फिर शंका उठी कि जब उमा की माँ सौतेली है तब वह पति से झगड़ कर यहाँ क्यों चली आयी ? उसे तो रूखा-सूखा खाकर और मोटा-झोटा पहन कर भी पति के साथ ही रहना चाहिए था ।

और फिर विचार-धारा ने दूसरा मोड़ ले लिया । जब उमा पति से झगड़ कर सौतेली माँ के पास आ सकती है तो माया भी चाची के पास जा सकती है ! माया भी उससे असन्तुष्ट है क्योंकि वह न तो उसके लिए आभूषण बनवा सकता है और न अच्छे-अच्छे वस्त्र ही ला सकता है । घुमा-फिरा भी नहीं सकता । और तड़क-भड़क वाले परिधान तथा

चमक-दमक वाले आभूषण नारी की सहज दुर्बलता हैं। तो क्या दिलीप इस दुर्बलता से अनुचित लाभ उठाना चाहता है?

और अचानक मुरारी की मुट्ठियाँ भिंच गयीं; आँखों के डोरे लाल हो गये, शरीर काँपने लगा। उसे भास हुआ कि जैसे उसे बहुत तीव्र ज्वर चढ़ आया है और वह ज्वर के असहनीय ताप से दग्ध हुआ जा रहा है।

"पानी......!" मुरारी के मुख से अस्फुट स्वर निकला।

कामिनी दौड़ कर गिलास में जल ले आयी। जल पीकर मुरारी कुछ स्वस्थ हुआ।

"आज मेरी तबियत ठीक नहीं है। मैं जा रहा हूँ, कामिनी।" कह कर मुरारी उठ खड़ा हुआ।

"आपने बेकार ही कष्ट उठाया। दूकान पर कह देते।" कामिनी उठ कर बोली। "जब तक तबियत एकदम ठीक न हो जाये तब तक न आइयेगा।"

"तबियत कल तक ठीक हो जायेगी।" मुरारी द्वार की ओर बढ़ कर बोला।

"मगर कल तो इतवार है।"

"अच्छा, कल की छुट्टी। परसों आऊँगा।" मुरारी ठहर कर बोला। "अगर उमा आय तो उससे कहना कि पति से झगड़ कर उसने बहुत बड़ी भूल की है। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। उसे फौरन ससुराल चली जाना चाहिये।" कह कर मुरारी बाहर निकल गया।

रास्ते भर वह बेचैन रहा। घर पहुँच कर देखा—ताला बन्द है। जेब से ताली निकाल कर ताला खोला और अन्दर जाकर आँगन में टहलने लगा। घर का सूनापन काटने को दौड़ रहा था। पत्नी के बिना घर कितना मनहूस सा लगता है, यह उसे उस दिन ज्ञात हुआ।

कमीज और पैन्ट उतार कर उसने लुंगी और बनियाइन पहन ली।

पाँच बज गए मगर माया न आयी। जब भूख लगी तो पेठा और दाल मोठ खाकर पानी पी लिया और फिर आँगन में आकुलता से टहलने लगा। एक-एक मिनट युग सा लग रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह द्वार पर खड़ा होकर गली में देखता और फिर अन्दर जाकर टहलने लगता।

'मुझे दफ्तर से छुट्टी लेकर माया के साथ जाना चाहिए था'— उसने सोचा। चार साल हो गए आगरा आये मगर बेचारी को ताज-महल और किला नहीं दिखा सका। घर के अन्दर रहते-रहते मन ऊब जाता होगा। मगर आज न जाकर अगर कल जाती तो क्या हर्ज था? एक दिन में क्या बिगड़ जाता? उसने आज के लिए ही ज़िद क्यों की? क्या वह दिलीप के साथ अकेली जाना चाहती थी? क्या···क्या···?

और आगे मुरारी कुछ सोच न सका। मस्तिष्क की शिरायें फटने सी लगीं। आँगन में चटाई बिछा कर चुपचाप लेट गया।

छह बज गये। मुरारी चिन्तित हो उठा। माया अभी तक क्यों नहीं आयी? ताजमहल देखने में इतना समय नहीं लगना चाहिए। क्या रास्ते में कार बिगड़ गयी? फिर सोचा—शायद किला देखने लगी हो।

पन्द्रह-बीस मिनट बाद ही माया आ गयी। साथ में दिलीप भी था। माया की आँखों में मुरारी को एक नयी चमक दिखायी दी। मुरारी उठ कर बैठ गया।

"बहुत देर लगा दी?" मुरारी ने टूटे स्वर में कहा।

"किला देखने में देर हो गयी।" माया ने उत्साहपूर्ण स्वर में कहा। "बहुत मज़ा आया। तुम होते तो और भी आनन्द आता।"

"इन्हें कलम घिसने से फुरसत मिले तब तो साथ चलें।" दिलीप ने व्यंग्य किया। फिर मुरारी की ओर मुड़ कर बोला—"परसों सीकरी का प्रोग्राम बना है। चलोगे?"

"परसों? कल चल सकता हूँ।"

"मगर प्रोग्राम तो परसों का बना है।" तभी माया बोल पड़ी। "परसों मेरा जन्म-दिन है। क्या उपहार दोगे मुझे ?"

माया के प्रश्न से मुरारी चिढ़ गया। रूखे स्वर में बोला—"पहले कभी तो जन्म-दिन मनाया नहीं, फिर इस बार क्या ज़रूरत पड़ गयी ? रही उपहार की बात, सो मेरे पास है ही क्या देने के लिए !" अन्तिम वाक्य के साथ ही मुरारी का स्वर काँप गया।

"अभी तक कभी नहीं मनाया इसका यह मतलब तो नहीं कि कभी मनाया ही न जाये। उपहार के लिए तो मैंने मज़ाक की थी।" कह कर माया कोठरी में घुस गयी।

दिलीप ने अधिक रुकना ठीक न समझा। बोला—"अब चलता हूँ, मुरारी !" फिर स्वर को धीमा करके कहा—"वैसे तो कल ही चलता सीकरी ! मगर मजबूरी है। कल एक आपरेशन करना है।

इससे पहले कि मुरारी कुछ कह सके, दिलीप बाहर निकल गया।

"अब खाना-वाना भी बनेगा या नहीं ?" मुरारी ने ऊँचे स्वर में पूछा।

"अभी बनाती हूँ। कपड़े तो बदल लूँ।" कोठरी के अन्दर से माया की आवाज़ आयी।

और जब तक माया भोजन बनाने में व्यस्त रही मुरारी के सामने बार-बार उमा का चित्र आता रहा। माँग में सिंदूर की रेखा, हाथ में सोहाग की चूड़ियाँ ! वह पति से लड़ कर आ गयी है क्योंकि पति गरीब है, उसकी इच्छायें पूरी नहीं कर सकता ! काश, उसने पति की बेबसी समझने की कोशिश की होती ! तो क्या हर नारी पति के प्यार को वस्त्रों और आभूषणों की कसौटी पर ही कसती हैं ? क्या हृदय की कोमलतम भावनाओं का कोई मूल्य नहीं, कोई महत्व नहीं ? क्या सचमुच आज पैसा मनुष्य से अधिक मूल्यवान हो गया है ?

उधर माया भी अपने विचारों में मग्न थी। गीली लकड़ियों से

V Good para.

उठने वाले धुँयें को चीर कर बार-बार ताजमहल का भव्य रूप उसकी आँखों के सामने आ जाता। मुमताज़महल की समाधि, निस्तब्ध अन्धकार पूर्ण कक्ष, शाहजहाँ और मुमताज़ की भटकती हुई आत्मायें ! कितना प्यार था शाहजहाँ को मुमताज़ से ? उसे सदा-सदा के लिए अमर कर दिया। और सोचते-सोचते माया को लगा कि शाहजहाँ और मुमताज की आत्मायें धुँये के आस-पास मँडरा रही हैं। वह सिहर उठी।

मुरारी भोजन करने बैठा। ध्यान अन्यत्र होने के कारण माया ने दाल में नमक अधिक डाल दिया था। और दिन होता तो मुरारी चुपचाप खा लेता, या प्यार भरे स्वर में उलाहना दे देता, परन्तु उस दिन खीझ गया। चिढ़े स्वर में बोला—"यदि खाना बनाने की इच्छा नहीं थी तो क्यों बनाया ?"

माया रोटी बेलते-बेलते रुक गयी। मुरारी की बात समझ में न आयी। धीमे स्वर में पूछा—"क्या हुआ ?"

"मेरा सिर !" मुरारी के स्वर में तेज़ी आ गयी। "दाल में नमक ज्यादा डाल दिया है !"

"इस धुँयें ने तो अन्धा कर दिया है। अन्दाज़ा नहीं लगा। थोड़ा घी और दे दूँ ?" तवे की रोटी सुलगते हुये कोयलों पर रख कर उसने पूछा और फिर बेली हुई रोटी तवे पर डाल दी।

'ध्यान तो ताजमहल में रक्खा होगा और दोष देती हो धुँये को ! मुझे नहीं चाहिए घी।" कह कर वह फिर खाने लगा !

अगर मुरारी उसके हाथ पर दहकता हुआ अंगार रख देता तो भी उसे इतनी पीड़ा न होती जितनी उसकी इस बात से हुई। उत्तर देना चाहा, पर दे न सकी। आँखों के आँसू बरौनियों में ही उलझ कर रह गये।

मुरारी खाकर उठ गया।

माया खाने बैठी, पर खाया न गया। ग्रास गले के नीचे ही नहीं

उतरता था। किसी प्रकार दो रोटी खाकर पानी पिया और उठ गयी।

मुरारी बिस्तर लेकर छत पर चला गया। माया बर्तन माँजने लगी।

"यह भी कोई जिन्दगी है ?" वह बर्तन माँजते-माँजते बुदबुदायी। "न जाने कब इस नरक से मुक्ति मिलेगी ?"

और तभी उसकी आँखों के सामने दिलीप का हँसता हुआ प्रस: चेहरा घूम गया।

मानों यही उसके प्रश्न का उत्तर हो !

८

***

इतवार की रात को मूसलाधार वर्षा हुई।

बरामदे में फर्श पर बिस्तर बिछा था । एक दूसरे की ओर पीठ किये माया और मुरारी लेटे थे। दोनों ही जाग रहे थे।

"सो गयीं ?" करवट बदल कर मुरारी ने मीठे स्वर में पूछा।

"नहीं; मगर नींद आ रही है।" माया ने बिना करवट बदले ही उत्तर दिया। वास्तव में उसकी आँखों में नींद का नामो-निशान तक न था, फिर भी वह झूठ बोल गयी ।

'मुझसे नाराज़ हो ?" मुरारी का स्वर भारी था।

माया ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसी प्रकार लेटी रही ।

"मैं एक-दो ट्यूशन और कर लूँगा । अब तुम्हें कोई कष्ट न होगा।" कहकर मुरारी ने उसके ऊपर हाथ रख दिया।

माया दूर खिसक गयी। झुँझलाये स्वर में बोली—"इस विषय की कोई बात न करो। क्यों बेकार में दिल पर ठेस पहुँचाते हो ?'

"मैं तुम्हें दुःखी नहीं, सुखी देखना चाहता हूँ, माया !"

'दिन-रात जान खपा कर तुम मुझे सुखी नहीं कर सकते ।" रूखे स्वर में माया बोली ।

"मैं तुम्हारे लिए अच्छे-अच्छे वस्त्र लाऊँगा; आभूषण बनवाऊँगा ! यही तो चाहती हो तुम।" मुरारी स्नेह-सिक्त स्वर में बोला। "मेरे पास आओ।"

"अगर मुझे सुखी देखना चाहते हो तो वचन दो कि थोथे आदर्शों

को छोड़कर जिस तरह भी हो धन कमाओगे ।" करवट बदल कर माया ने कहा । "दिलीप को ही देखो । ढाई-तीन सौ रुपये तनख्वाह है, मगर हर महीने ऊपर से सात-आठ सौ रुपये कमा लेता है ।"

दिलीप का नाम सुनकर मुरारी का रोम-रोम सुलग उठा । बिगड़ कर बोला—"अगर पैसा इतना ही प्यारा था तो किसी लखपती से शादी करतीं । तब तो कहती थीं, मैं तुम्हारे साथ नरक में भी सुखी रहूँगी । अब क्या हो गया है तुम्हें ?"

"वह मेरी भावुकता थी ।" कह कर माया ने फिर करवट बदल ली ।

मुरारी कुछ देर तक शान्त लेटा रहा । रह-रह कर दिल में भयंकर तूफान करवटें ले रहा था । एक मनहूस घुटन प्राणों पर छाई हुई थी ।

"मेरी अच्छी माया," वह आगे खिसक कर भर्राये स्वर में बोला—"आज की रात रूठने के लिए नहीं है ।" और फिर वह माया के रेशमी बालों को सहलाने लगा ।

"भगवान के लिए मुझे सोने दो ।" कहकर माया ने दूर हटने की कोशिश की ।

"मैं तुम्हें खुश करने के लिए सब कुछ करूँगा । इधर देखो, तुम्हें मेरे सिर की कसम है ।" कहकर मुरारी ने उसकी बाहें पकड़ कर करवट बदल दी ।

"तुम्हारी बातें मैं खूब समझती हूँ ।" चोट खायी हुई नागिन की तरह उठ कर बैठती हुई माया बोली । "लेकिन मैं साफ कहे देती हूँ कि मैं केवल भोग की ही वस्तु नहीं हूँ । समझे ! अब मुझे सोने दो ।"

माया उसकी तरफ पीठ करके लेट गयी । मुरारी इस उपेक्षा और अपमान से तिलमिला उठा । स्वाभिमान अंगड़ाई लेकर जाग उठा ।

दृढ़ स्वर में बोला—"ठीक है । अब ऐसी भूल नहीं होगी—कभी नहीं होगी।"

मुरारी ने भी उसकी तरफ पीठ कर ली ।

सुबह जब मुरारी दफ्तर जाने लगा तो उसने चाभी जेब में डाल ली । माया की इच्छा हुई कि उससे रात के व्यवहार के लिए क्षमा माँगे और दफ्तर न जाने का अनुरोध करे । पर नारी-सुलभ मान ने मुँह पर ताला जड़ दिया । मुरारी चला गया और माया के मन का भाव मन में ही घुट कर रह गया ।

तीन बजे दिलीप आ गया । उसकी बंगल में बड़ा सा बन्डल था ।

"जन्म-दिन मुबारक हो माया !" वह अजब अन्दाज़ से बोला । "भगवान करे यह दिन हजार साल तक बार-बार आये ।"

"बधाई के लिए धन्यवाद ।" माया ने मादक मुस्कान के साथ कहा ।

"और यह है मेरा तुच्छ उपहार !" बन्डल माया के हाथ पर रख कर दिलीप बोला । "इसे स्वीकार करके मुझे कृतज्ञ कीजिए, माया-देवी जी !"

"एवमस्तु ।" माया ने कृत्रिम गम्भीरता से कहा ।

पर दूसरे ही क्षण दोनों खिलखिला कर हँस पड़े ।

माया उत्साह और हर्ष से बन्डल खोलने लगी । एक रेशमी साड़ी, उसी से मिलता-जुलता ब्लाउज़ और कढ़ा हुआ आकर्षक पेटीकोट देख कर मुग्ध हो गयी ।

"इतनी कीमती चीज़ें लाने को क्या जरूरत थी ?" आँखों में कृतज्ञता का भाव भर कर माया ने कहा ।

"मैं तो इससे भी कीमती लाना चाहता था, मगर बाजार में मिली ही नहीं ।" कहकर दिलीप सिगरेट सुलगाने लगा ।

माया ने चाव भरी दृष्टि से वस्त्रों को देखा और फिर उमंग से

बोली—"बहुत सुन्दर हैं। आज हृदय की अभिलाषा पूरी हुई।"

"अच्छा, अब जल्दी से तैयार हो जाओ।"

माया वस्त्र उठा कर अन्दर जाने लगी। तभी दिलीप रुक कर बोला—"अरे, एक चीज़ तो भूल ही गया था।"

माया उसके पास आकर प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगी।

"यह भी लेती जाओ।" कह कर दिलीप ने शार्क-स्किन की बुश-शर्ट की जेब में हाथ डाला और नये फैशन की पैडदार कंचुकी निकाल कर माया की ओर बढ़ा दी।

माया ने लजा कर अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया। फिर दिलीप के हाथ से कंचुकी छीन कर भागती हुई कोठरी में घुस गयी।

दिलीप की स्वच्छन्द हँसी का स्वर आँगन में गूँज गया।

दस मिनट बाद ही दिलीप की कार सीकरी की ओर विद्युत वेग से जा रही थी। दिलीप के पास ही माया बैठी थी। सुन्दर वस्त्रों ने उसके सौंदर्य में चार चाँद लगा दिये थे और वह एक आकर्षक रूपमती अभिनेत्री की तरह लग रही थी। माया का मन उमंगों के झूले पर झूल रहा था। अब उसके हृदय में हीन भाव न था; मार्ग में मिलने वाली सुसज्जित युवतियों की तरफ अब वह हसरत भरी दृष्टि से नहीं देखती थी, प्रत्युत उसकी दृष्टि में गर्व की झलक थी। वह अपने को रति और रम्भा का ही प्रतिरूप समझ रही थी।

सीकरी का बुलन्द दरवाज़ा देख कर माया के नेत्र विस्मय से फैल गये।

दिलीप ने उसे सीकरी के निर्माण के इतिहास से अवगत कराया।

लौटते समय वर्षा होने लगी। दिलीप ने एक बड़े वृक्ष के नीचे कार रोक दी। फिर माया के निकट खिसक कर बोला—"कितना सुहावना मौसम है! कुछ देर यहाँ ठहर कर बरसात का आनन्द लिया जाये।"

सड़क एक दम निर्जन थी। बदलियों की गरज और बिजलियों की तरज के साथ वर्षा हो रही थी। हवा के शीतल अदृश्य हाथ माया के अंग-अंग में गुदगुदी और सिहरन भर रहे थे।

"बरसात इतनी प्यारी होती है, यह आज ही मालूम हुआ।" माया एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर बोली।

"और इस बरसात ने तुम्हें और भी खूबसूरत बना दिया है।" कह कर दिलीप माया के और निकट आ गया।

माया कुछ बोली नहीं। आँखें बन्द करके अपना सिर दिलीप के कन्धे पर टिका दिया।

"दो भटकती हुई आत्माओं के मधुर मिलन के उपलक्ष में···।" कह कर दिलीप ने अपनी बुशर्ट की जेब में हाथ डाला और मोतियों की एक सुन्दर माला निकाल कर बोला—"मोतियों की यह माला भेंट करता हूँ, माया।"

माया ने चौंक कर आँखें खोल दीं। दिलीप के हाथ में मोतियों की माला देख कर प्रसन्न हो उठी। उसके कन्धे से सिर उठा कर बोली—"ओह, कितनी सुन्दर है! लाओ, देखूँ तो।"

दिलीप ने अपना हाथ पीछे खींच कर कहा—"अपने हाथ से पहनाऊँगा।"

और फिर माया को अपने समीप खींच कर उसने माला पहना दी।

"कितने अच्छे हो तुम···।" कह कर माया दिलीप के ऊपर झुक गयी!

दिलीप ने आवेश में आकर उसे अपनी भुजाओं में भर लिया।

और फिर माया ने रेशमी वस्त्रों और मोतियों की माला का मूल्य अपने शरीर से चुका दिया।

बादल उसका सर्वस्व लुटने पर सिसकते रहे, आँसू बहाते रहे।

परन्तु माया······?

जिस माया ने पति के लिए भोग की सामग्री न होने का दावा किया था, उसी माया ने दिलीप को अपना शरीर सौंप दिया और फिर भी वह प्रसन्न थी।

झूठे पत्थरों के मोल में अपना अमूल्य रत्न बेच कर भी वह समझ रही थी कि यह सौदा मँहगा नहीं है।

× × ×

दफ्तर में उस दिन असावधानी के कारण मुरारी को फिर बड़े बाबू की झिड़की खानी पड़ी। वह एक आवश्यक पत्र गलत फाइल में लगा गया था।

कामिनी को भी वह ठीक से न पढ़ा सका। कामिनी समझ गयी कि मास्टर साहब की तबियत आज भी खराब है।

"आप किसी अच्छे डाक्टर को दिखाइये, मास्टर साहब!" पाठ समाप्त करके कामिनी ने दबे स्वर में कहा।

"डाक्टर के पास मेरे रोग का इलाज नहीं है।" मुरारी ने उँगलियों से मस्तक की उभरती हुई नसों को सहलाते हुये कहा।

"ऐसी कौन सी बीमारी है जिसकी दवा डाक्टर के पास नहीं है?" कामिनी ने सहज जिज्ञासा और आश्चर्य से पूछा।

"मेरा रोग तन का नहीं, मन का है।" कह कर मुरारी दीवार पर टँगे कैलेण्डर की ओर देखने लगा। फिर बोला—"छोड़ो भी! तुम्हारी समझ में वह बातें नहीं आयेंगी। हाँ, उमा से तुमने मेरा सन्देश कहा था?"

"कहा था···।" कह कर कामिनी पुस्तक के पृष्ठ उलटने लगी।

"क्या बोली?"

"कहने लगी-तुम्हारे मास्टर साहब पुरुष हैं, इसलिये पुरुष का पक्ष लेते हैं। वे स्त्री के मन की बात क्या जानें?"

"अच्छा···!" मुरारी का स्वर उदास था।

"कहने लगी—मास्टर साहब से कह देना कि उस नरक में जिन्दा जलने के लिए अब मैं नहीं जाऊँगी।"

मुरारी को कमरे की दीवारें घूमती सी जान पड़ीं। उसे लगा कि जैसे भारी भूडोल आ गया है और कमरे की हर वस्तु बड़े वेग से हिल रही है। फिर वह वहाँ बैठ न सका। उठ कर द्वार की ओर बढ़ा।

"पानी बरस रहा है अभी। ठहर कर जाइयेगा।" कामिनी ने उठ कर कहा।

"चला जाऊँगा भीगता हुआ। घर जल्दी पहुँचना है।"

"तो छाता लेते जाइये।" कह कर वह अन्दर से छाता ले आयी।

मुरारी ने बिना कुछ कहे छाता ले लिया और उस घनघोर वर्षा में घर की ओर चल दिया।

सड़क की बत्तियाँ जल गयी थीं। बहते हुये पानी में बत्तियों के प्रतिबिम्ब अजीब से लग रहे थे। मुरारी सिर झुकाये तेज़ी से चला जा रहा था। उसे इसका तनिक भी ध्यान न था कि चप्पलों से उड़ने वाले छींटें उसके पैंट को खराब कर रहे हैं और छाते के होते हुये भी वह भीगा जा रहा है।

मुरारी ताला खोल कर घर के अन्दर गया। बत्ती जला कर छाता बंद करके बरामदे के एक कोने में टिका दिया। गीली पैंट-कमीज़ बदल कर सूखे वस्त्र पहन लिये। गीले वस्त्र फैला कर, बरामदे में चटाई बिछायी ओर अनमना होकर लेट गया। लेटे-लेटे मन जाने कैसा हुआ। अन्तर में हूक सी उठी। आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी।

मानव का रुदन देख कर शायद प्रकृति को अपना रुदन अनावश्यक सा लगा। वर्षा थम गयी और हवा के तेज़ झोंकों से बादल धुनी हुई रूई की तरह छटने लगे।

जब मन की पीड़ा आँसुओं के रूप में बह गयी तब मुरारी को कुछ शांति मिली। उठ कर मुँह धोया और फिर चटाई पर लेट कर बल्ब

के आस-पास मँडराने वाले छोटे-बड़े पतंगों को निर्निमेष दृष्टि से देखने लगा।

जब माया आयी तब भी वह जलने-जलाने के दर्शन में ही उलझा हुआ था। दिलीप माया को द्वार तक पहुँचा कर ही लौट गया था। माया ने अन्दर चलने का अनुरोध भी नहीं किया था। माया के वस्त्र और मोतियों की माला देख कर मुरारी उठ कर बैठ गया और उसकी ओर इस प्रकार देखने लगा मानों उसके सामने माया नहीं, उसकी प्रेत आत्मा आ गयी है। मुरारी को आँखें फाड़-फाड़ कर अपनी तरफ घूरते देख कर माया भय से काँप गयी। मुरारी के बिना पूछे ही धीमे स्वर में बोली—"यह माला और वस्त्र दिलीप ने जन्म-दिन के उपलक्ष्य में दिये हैं।"

मुरारी उठ कर खड़ा हो गया। दोनों हाथों से माया के कन्धे पकड़ कर उसे झकझोरता हुआ बोला—"वस्त्रों और आभूषणों का चाव तुम्हें यहाँ तक पतित कर देगा, यह मैं नहीं समझता था।"

माया ने झटका देकर अपने को मुरारी की पकड़ से मुक्त कर लिया। मुरारी बुरी तरह हाँफ रहा था, मानों उसे साँस लेने में बहुत ही कठिनाई हो रही हो!

"किसी से उपहार ले लेना पतन है?" माया ने तेज़ स्वर में पूछा।

"तुम्हें जरूरत क्या थी उपहार लेने की?" मुरारी चीख कर बोला। "क्या जन्म-दिन का ढोंग इसीलिए किया गया था? उतार दो यह माला और कपड़े। मैं अभी लौटा आऊँगा।" और माला उतारने के लिए मुरारी ने अपना हाथ माया की गर्दन की तरफ बढ़ाया।

माया सहम कर पीछे हट गयी।

"सुना नहीं तुमने? मैं कहता हूँ, उतार दो यह माला और वस्त्र।" मुरारी आगे बढ़ कर कठोर स्वर में बोला।

जिस माला और वस्त्रों के लिए माया ने इतना बड़ा मूल्य चुकाया था उन्हें वह खोने के लिए तैयार न थी। विद्रोह के स्वर में बोली— "मैं यह चीज़ें नहीं लौटाऊँगी।"

"नहीं लौटाओगी ?" कहकर मुरारी ने उसके गाल पर जोर से तमाचा मारा।

आघात की पीड़ा ने विद्रोह की अग्नि में घी का काम किया। तड़फ कर दृढ़ स्वर में बोली—"हाँ, नहीं लौटाऊँगी, नहीं लौटाऊँगी, नहीं लौटाऊँगी ! चाहे मुझे जान से ही क्यों न मार डालो।"

माया ने माला उतार कर अपनी मुट्ठी में कस ली और मुट्ठी को छाती से सटा लिया।

मुरारी की आँखों से अग्नि की चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसकी इच्छा हुई कि आगे बढ़ कर माया का गला घोंट दे और वह गले को तब तक दबाता रहे जब तक उसकी आँखें फट न जायें, जीभ बाहर न निकल आये और मुट्ठी ढीली होकर माला फर्श पर न गिर पड़े।

मुरारी की खूनी आँखें, मस्तक और गर्दन की उभरी हुई नसें, काँपते हुये अधर, भुजाओं की तनी हुई माँस-पेशियाँ और बँधी हुई मुट्ठियाँ देख कर माया थाली में रक्खे पारे की तरह थरथरा उठी। जैसे कोई माँ अपने खोये हुये बच्चे को पाकर उसे छाती से सटा लेती है वैसे ही वह माला को सटाये थी। मुरारी का विकराल रूप देखकर वह समझ गयी कि अब कुशल नहीं है। भागकर कोठरी में घुस गयी और द्वार अन्दर से बन्द कर लिया।

"दरवाज़ा खोलो।" मुरारी ने द्वार पर पैर की ठोकर दी।

"दरवाज़ा नहीं खुलेगा।" अन्दर से माया ने काँपते हुये स्वर में कहा।"

मुरारी बरामदे में पागलों की तरह घूमता रहा। धीरे-धीरे उसका आवेश और क्रोध शांत हुआ

"डरो मत ! दरवाजा खोल दो, माया।" मुरारी ने द्वार को हाथ से थपथपा कर कोमल स्वर में कहा।

"तुम मेरी माला छीन लोगे......।"

"जब तुम्हें माला इतनी प्यारी है तो नहीं छीनूँगा । वचन देता हूँ।"

द्वार खोल कर माया बाहर आ गयी। उसने वस्त्र बदल दिये थे। माला भी हाथ में नहीं थी।

"यहाँ बैठो।" कह कर मुरारी चटाई पर बैठ गया।

माया भी चटाई पर बैठ गयी···मगर मुरारी से कुछ हट कर!

"ज़रा सोचो! किसी से इस तरह चीज़ें लेना कहाँ तक ठीक है!"

"उपहार लेना बुरा नहीं है।" माया ने मुरारी की दृष्टि बचा कर कहा।

"उपहार उसी को लेना चाहिए जो देने की स्थिति में हो। क्या हम दिलीप को ऐसे ही उपहार दे सकते हैं?"

"उसे ज़रूरत ही क्या है लेने की?" माया ने कहा। फिर स्वर को मन्द करके बोली—"और अगर तुम चाहो तो तुम भी उतना ही कमा सकते हो! फिर मुझे क्या जरूरत रहे औरों से उपहार लेने की?"

और लाख रोकने पर भी माया के मुख से सिसकी का स्वर निकल ही गया।

मुरारी पत्थर की प्रतिमा की तरह निश्चल बैठा रहा। वह अपलक दृष्टि से काले आकाश की ओर देख रहा था।

"सालों के बाद तो मन की आकाँक्षा पूरी हुई है," माया सिसकती हुई बोली। "और तुम चाहते हो कि ये चीज़ें लौटा दूँ!"

शून्य आकाश की ओर से दृष्टि हटाकर मुरारी ने माया की ओर देखा। मुरारी के चेहरे पर अन्तर में उठने वाले भयानक बवंडर की काली परछाइयाँ थीं।

"मैं अभी कपड़े और माला लौटा सकती हूँ। मगर एक शर्त पर...। बोलो, क्या कल ही तुम मुझे ऐसे ही वस्त्र और ऐसी ही माला लाकर दे सकते हो ? बोलो...?" माया ने मुरारी की ओर साश्रु नयन उठा कर प्रश्न किया।

और मुरारी को लगा कि माया की आँसू भरी आँखों में उमा की धुँधली तस्वीर उतर आयी है जो उसकी ओर व्यंग्य और तिरस्कार की दृष्टि से देख रही है। घबरा कर उसने दृष्टि दूसरी ओर कर ली।

"बोलो, उत्तर दो मेरी बात का ! कल ऐसी ही चीजें ला सकते हो ?" माया ने फिर पूछा।

"मेरी सीमायें जान कर भी ऐसा प्रश्न कर रही हो !"

"जब तुम कोई चीज़ लाकर दे नहीं सकते तब तुम्हें यह अधिकार भी नहीं है कि मुझे दिलीप से लेने के लिए मना कर सको।" कह कर माया खड़ी हो गयी।

"मा:....या......।" दयनीय स्वर में मुरारी बोला। "क्या तुम्हें मुझसे ज़रा भी प्यार नहीं रहा ? क्या...क्या...?"

'प्यार की बातें अब ढोंग सी लगती हैं। एक दूसरे को छलने से क्या लाभ...? मैं जानती हूँ, तुम्हें मुझसे प्यार नहीं है; ...फिर...।"

"ऐसा न कहो, माया, ऐसा न कहो ! मेरा हृदय चीर कर देख लो...।"

"बिना चीरे ही देख लिया है।" बीच में ही माया ने टोक दिया। "अगर मुझसे ज़रा भी प्यार होता तो मुझे भूखी-नंगी न रखते...। शर्मा और दिलीप की तरह तुम भी...।"

"बस करो, माया बस करो। मैं...मैं...।" मुरारी का वाक्य अपूर्ण रह गया। गला अवरुद्ध हो गया। आँखों से जल-धारा बह चली।

माया ने देखा, झिझकी, फिर चूल्हा जलाने की तैयारी करने लगी।

और फिर गीली लकड़ियों का कड़वा धुँआ घर भर में छा गया। एक अनदेखे, अनचीन्हें तीखे दर्द की तरह !

६

※※※

सर्वस्व हारे हुये जुआरी की जो मानसिक दशा होती है वैसी ही मुरारी की भी थी। वह अनुभव करता था कि जिन्दगी का सबसे बड़ा दाँव वह हार गया है। इस भावना ने उसके मस्तिष्क में खीझ, बचैनी झुँझलाहट और असीम वेदना भर दी थी। लाख चेष्टा करने पर भी वह दिलीप के प्रति माया के निरन्तर बढ़ने वाले आकर्षण की ओर से उदासीन न रह सका। उसके मन में भाँति-भाँति की आशंकायें उठतीं जिन्हें वह प्रयास करने पर भी झुठला न पाता। भाड़ में भुनने वाले चने की तरह उसका हृदय भयंकर दाह में जलता रहता। घर में दिलीप का आना-जाना जारी रहा; उसके उपहारों का ढेर लग गया, परन्तु मुरारी विरोध न कर सका। आग अन्दर ही अन्दर सुलगती रही।

शारीरिक व्याधियों का प्रभाव शरीर पर इतना नहीं पड़ता जितना मानसिक व्याधियों का शरीर पर। शरीर से रोगी एक बार प्रसन्न रह सकता है, आशा के गीत गा सकता है; परन्तु मन का रोगी शरीर से भी शिथिल हो जाता है। चिन्ताओं ने मुरारी का स्वास्थ्य भी नष्ट कर दिया। दुबला-पतला पहले से ही था। अब तो रंग पीला पड़ गया, गाल पिचक गये, आँखों के नीचे काले धब्बे पड़ गये, मस्तक पर रेखायें उभर आयीं। लगने लगा कि वह सालों का रोगी है।

दफ्तर में बैठा मुरारी अपने दुर्भाग्य पर मन ही मन रो रहा था। एक ओर उसका आदर्श था और दूसरी ओर माया का प्यार! आदर्श का पालन करके उसने माया का प्यार खो दिया था। माया उसकी

उपेक्षा करने लगी थी। और करे भी क्यों न ? उसे तो अन्य नारियों की भाँति ही साड़ियाँ चाहियें, जेवर चाहियें और वह उसकी माँगों, अभिलाषाओं, कामनाओं और सपनों को पूरा करने में असमर्थ था। तभी तो वह दिलीप की ओर खिंची थी क्योंकि दिलीप में उसकी माँगें पूरी करने की सामर्थ्य थी।

मुरारी माया को प्यार करता था—सच्चे दिल से प्यार करता था। माया की उपेक्षा ने उसे व्याकुल कर दिया था। क्या···क्या वह माया के बिना रह सकता है ? और सोचते-सोचते मुरारी के मुख से एक लम्बी आह निकल गयी।

नहीं, वह माया के बिना जिन्दा नहीं रह सकता। मगर उसका जीवन है। वह माया को प्रसन्न करेगा—हर मूल्य पर ! हाँ वह माया का प्यार पुनः प्राप्त करने के लिए दिलीप बनेगा, शर्मा बनेगा, अपने आदर्शों-सिद्धान्तों का गला घोंटेगा ! और निश्चय के बाद उसे लगा कि आज के युग में पैसा ही परमेश्वर है; आदर्श-सिद्धान्त मिथ्या हैं, छल हैं, धोखा हैं ! वह अभी तक गलत रास्ते पर था; अपनी आत्मा को छल रहा था। उसका हृदय आत्म-ग्लानि से भर गया जब उसे स्मरण आया कि वह अभी तक माया के प्रति कैसा व्यवहार करता आया है।

मुरारी ने दृष्टि उठा कर चारों ओर देखा। बड़े बाबू की कुर्सी खाली थी। और क्लर्क काम में व्यस्त थे। तभी सेठ दीनानाथ दिखायी दिये। वे उसकी मेज की तरफ ही आ रहे थे। वैसे रोज ही सेठ लोग आते थे, चले जाते थे पर उस दिन सेठ दीनानाथ को देख कर उसका हृदय उछलने लगा।

"कहो मुरारी बाबू, मजे में तो हो ?" पास आकर सेठ दीनानाथ ने मीठे स्वर में पूछा।

"सब आपकी कृपा है। बैठिये।" कह कर मुरारी ने पास पड़ी हुई कुर्सी की ओर इशारा किया।

सेठ दीनानाथ बैठ गये।

क्लर्कों ने एक बार दृष्टि उठा कर देखा, फिर अपने काम में लग गये। यदि किसी और क्लर्क के पास कोई सेठ बैठता तो वे आवाज़कशी करते मगर मुरारी के विषय में सभी जानते थे कि वह घूस की एक पाई भी छूना हराम समझता है।

"कैसे कष्ट किया ?" मुरारी ने प्रश्न किया।

"छोटी सी तकलीफ देनी है मगर कहते डर भी लगता है।" सेठ दीनानाथ ने आगे झुक कर धीमे स्वर में कहा।

मुरारी समझ गया कि कोई ऊँच-नीच का काम है। प्राप्ति की आशा से मन झूम उठा। मन-ही-मन भगवान् को धन्यवाद दिया। घूस लेने के निश्चय के तुरन्त बाद ही आसामी मिल जायेगा ऐसा उसने स्वप्न में भी न सोचा था।

"डरने की क्या बात है, सेठ जी ? बताइये क्या काम है ?" मुरारी ने भी आगे झुक कर धीमे स्वर में पूछा।

सेठ दीनानाथ ने मुरारी की ओर देखा। फिर बोले—"तुम···।"

"आप बताइये तो। मैं हर सेवा के लिए तैयार हूँ।" मुरारी ने हर शब्द पर ज़ोर देकर कहा।

"तब तो मैं भी हर सेवा के लिए तैयार हूँ।" कह कर सेठ दीनानाथ ने कुर्सी कुछ और पास खिसका ली और फिर बोले—"जो नक्शा हमने पिछले हफ्ते दाखिल किया है उसे बदलना चाहता हूँ।"

"बदल जायेगा। दूसरा नक्शा लाये हैं ?"

"हाँ।" कह कर सेठ दीनानाथ ने नक्शा मेज पर रख दिया।

मुरारी ने उड़ती हुई दृष्टि अन्य क्लर्कों पर डाली। सब अपने काम में जुटे हुये थे। मुरारी ने नक्शा उठा लिया।

"पुराना नक्शा मुझे दे दो। मैं······।"

"क्या कीमत मिलेगी ?" बीच में ही मुरारी पूछ बैठा।

"दो सौ।" सेठ दीनानाथ ने उत्तर दिया।

मुरारी यदि चाहता तो मोल-भाव करके सौ-पचास रुपये और बढ़वा सकता था मगर उसने हुज्जत नहीं की! स्वीकृति-सूचक सिर हिला कर मन्द स्वर में बोला—"आप कैन्टीन में चलिये। मैं नक्शा लेकर आता हूँ।"

सेठ दीनानाथ के जाने के बाद मुरारी ने फाइल से पुराना नक्शा निकाल कर जेब में रख लिया और नया नक्शा फाइल में लगा दिया। फिर उठ कर कैन्टीन की ओर चल दिया।

कैन्टीन में उस समय सन्नाटा था। सेठ दीनानाथ उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। पल भर में ही नक्शा सेठ दीनानाथ की जेब में पहुँच गया और सौ-सौ के दो नोट मुरारी की जेब में। नोट जेब में रख कर मुरारी ने चारों ओर देखा और फिर सन्तोष की साँस लेकर बैन्च पर बैठ गया।

सेठ दीनानाथ चले गये। मुरारी ने एक कप चाय का आर्डर दिया। चाय की चुस्कियों के साथ ही वह सोचता रहा कि माया नोट देख कर कितनी खुश होगी!

फिर दफ्तर में उसका मन न लगा। बड़े बाबू से छुट्टी लेकर वह घर की ओर चल दिया। रास्ते भर रंगीन कल्पनाओं में डूबा रहा। पहले सोचा कि माया के लिए कुछ वस्त्र लेता चलूँ फिर सोचा कि उस को साथ लेकर ही शाम को घूमने निकलूँगा। तभी सामान लेंगे, सिनेमा देखेंगे, घूमें-फिरेंगें, खायें-पियेंगे! बार-बार जेब में हाथ डाल कर वह नोटों को टटोल कर देख लेता। नोटों का स्पर्श बहुत प्रेरक लगता, सुखद लगता।

गली के बाहर दिलीप की कार खड़ी थी। देख कर मुरारी सिहर गया। तेज़ी से गली में घुसा और जब घर का द्वार अन्दर से बन्द पाया तब तो उसका माथा ठनका। इच्छा हुई द्वार पर जोर से पैर की ठोकर

दे मगर पैर न उठा। द्वार के पास चुपचाप खड़ा रहा।

तभी अन्दर से माया और दिलीप के स्वर सुनाई दिये। मुरारी की समस्त चेतना कानों में केन्द्रित हो गयी। वह कान लगा कर सुनने लगा।

"मुझसे इस नरक में अब और नहीं रहा जाता।" माया कह रही थी।

"थोड़े दिन और धीरज रक्खो, माया। सब ठीक हो जायेगा।" दिलीप का उत्तर था।

"मुझे यहाँ से कहीं और ले चलो, दिलीप! मैं उस जानवर के साथ नहीं रह सकती।

माया की बात सुन कर मुरारी का खून खौल उठा। मस्तक की नसें उभर आयीं, आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं।

"पति चाहे जैसा हो पर पर्दे का काम तो देता ही है।" दिलीप हँस कर कह रहा था। "हम एक दूसरे को प्यार करते हैं, ठीक है! मगर तुम्हारा मुरारी को छोड़ कर जाना ठीक नहीं। उससे बदनामी होगी!"

मुरारी की मुट्ठियाँ भिच गयीं।

"ओह दिलीप, मेरे अच्छे दिलीप!" माया की आवाज़ आयी और फिर मौन छा गया।

इस निस्तब्धता ने मुरारी को पागल कर दिया। पैर में सारी शक्ति समेट कर ठोकर मारी। जर्जर द्वार टूट गया।

दिलीप और माया एक दूसरे के आलिंगन में आबद्ध थे। चौंक कर अलग हो गये। मुरारी को देख कर माया का चेहरा सफेद पड़ गया। वह थर-थर काँपने लगी। दिलीप उसी प्रकार खड़ा रहा।

मुरारी ने खूनी आँखों से पहले माया को देखा और फिर दिलीप को। माया उसकी दृष्टि का तीखापन सहन न कर सकी। वह फर्श की ओर देखने लगी। दिलाप सिगरेट सुलगाने लगा।

"कमीने कुत्ते, निकल जा यहाँ से ।" सहसा चीख कर मुरारी ने दिलीप से कहा । "मित्र के साथ विश्वासघात करते तुझे शर्म न आयी । थू है तुझ पर !" और फिर घृणा से मुँह सिकोड़ कर मुरारी ने फर्श पर थूक दिया ।

"प्यार करना पाप नहीं है ।" दिलीप ने स्वर को स्वाभाविक रखने की चेष्टा करते हुये कहा ।

"आस्तीन के साँप ! वासना के कीड़े !! तू प्यार का मर्म क्या जाने !" और मुरारी की इच्छा हुई कि आगे बढ़ कर दिलीप के हाथ-पैर तोड़ दे । पर दिलीप को सतर्क और अपने से कहीं अधिक शक्तिशाली जान कर झिझक गया । माया की ओर मुड़ कर घृणा से बोला—"मैं नहीं जानता था कि तू ज़हरीली नागिन है । तुझे रुपये चाहियें ? ले !"

मुरारी ने नोट जेब से निकाल कर माया के पैरों के पास फेंक दिये । माया ने आश्चर्य से नोटों की ओर देखा, पर उठाने का साहस न हुआ ।

"मैंने तेरे लिए आज अपनी आत्मा को बेचा, अपने आदर्श की हत्या की ! मैं नहीं जानता था कि तू वेश्या से भी गिरी हुई है ।" कह कर मुरारी माया की ओर झपटा ।

माया चीख कर पीछे हट गयी । दिलीप ने मुरारी का हाथ पकड़ लिया ।

"छोड़ दो मुझे । मैं इस पापिन का गला घोंट दूँगा ।" मुरारी अपने को मुक्त करने का प्रयास करता हुआ चीख कर बोला ।

"बचाओ, मुझे इस जानवर से, दिलीप !" माया सिसक कर बोली । "यह मुझे मार डालेगा ।"

दिलीप की मजबूत पकड़ से छूटने में अपने को असमर्थ पाकर मुरारी का क्रोध और भी भड़क उठा । वह दिलीप को गालियाँ देने लगा ।

दिलीप मुरारी को पकड़ कर बरामदे में ले गया। दिलीप का संकेत पाकर माया ने कोठरी खोल दी। दिलीप ने मुरारी को कोठरी में ढकेल दिया और द्वार बाहर से बन्द कर दिया। माया भीत हिरनी की भाँति दिलीप की बाहों से चिपट गयी।

मुरारी ज़ोर-ज़ोर से चीखने लगा और द्वार पीटने लगा।

"अब··· अब क्या होगा?" माया ने सिसकते हुये पूछा।

"घबराओ मत! सब ठीक हो जायेगा।" दिलीप ने आश्वासन दिया और आँगन से नोट उठा कर माया को दे दिये।

तभी चीख-पुकार सुन कर पास-पडोस के दो-चार लोग आ गये!

"क्या बात है?" एक पड़ोसी ने माया से पूछा।

"मुरारी पागल हो गया है।" दिलीप ने तुरन्त उत्तर दिया।

"परेशान तो बहुत दिनों से रहते थे। आधी-आधी रात तक पार्क में घूमा करते थे। न जाने क्या-क्या बड़बड़ाते रहते थे!" दूसरे पड़ोसी ने अपनी अक्लमन्दी का प्रमाण देते हुये कहा।

मुरारी बराबर चीख रहा था और द्वार पीट रहा था। पड़ोसी भीत दृष्टि से द्वार की ओर देख रहे थे। किसी का साहस पास जाने का नहीं होता था।

"बहुत भयंकर दौरा है। पागलखाने······।"

"जरूर ले जाइये, बाबूजी।" दिलीप की बात काट कर एक पड़ोसी बीच में ही बोला। अगर यहाँ रहे तो······।"

दिलीप समझ गया कि पड़ोस वाले डर रहे हैं। उन्हें अपनी सुरक्षा का ख्याल है। वह मन-ही-मन मुस्कराया।

जब सब लोग वहाँ से चले गये तो दिलीप माया से बोला—"पागलखाने का एक डाक्टर मेरा दोस्त है। कल ही मुरारी को वहाँ भर्ती करा दूँगा।"

माया कुछ उत्तर न दे सकी। निर्निमेष दृष्टि से दिलीप की ओर

देखती रही।

"लोग समझेंगे कि मुरारी सचमुच पागल हो गया है।" धीमे स्वर में कह कर दिलीप मुस्कराया। "साँप भी मर गया और लाठी भी न टूटी। अब तो खुश हो?"

"लेकिन ·····।"

'तुम किसी बात की चिन्ता न करो। मैं सब ठीक कर दूँगा। अपने दिलीप पर भरोसा रक्खो।" कह कर दिलीप ने फिर सिगरेट सुलगायी।

"लेकिन···लेकिन रात भर मैं अकेली कैसे रहूँगी?" माया कोठरी की ओर देख कर डरे स्वर में बोली।

"मैं तुम्हारे साथ रहूँगा।" दिलीप बोला। "लेकिन मैं आध घण्टे के लिए जाना चाहता हूँ। मुरारी को शान्त करना जरूरी है।"

माया दिलीप की बात समझ न सकी। प्रश्न भरी दृष्टि से दिलीप की तरफ देखने लगी।

"मैं डाक्टर हूँ, माया, यह न भूलो।" मुस्करा कर दिलीप बोला। "एक दवा ऐसी है जो दिमाग को शून्य कर देती है। मुरारी को एक इन्जेक्शन दे दूँगा और फिर बस ··मैं और तुम, तुम और मैं···"

और फिर दिलीप ने माया को अपनी बाहों में भर लिया।

× × ×

सुबह की सुनहरी किरणों ने दिलीप की कार को पागलखाने की ओर जाते हुये देखा। कार में प्रसन्न वदन दिलीप था, गम्भीर तथा उदास माया थी, और था शिथिल मुरारी। लग रहा था जैसे मुरारी जागते हुये भी सो रहा है और कोई सपना देख रहा है। पड़ोसियों की सहायता से रात को दिलीप ने उसकी बाँह में जो इन्जेक्शन लगाया था उसका कुछ-कुछ प्रभाव उस समय भी था।

१०

***

मुरारी को पागलखाना एक अजायबघर की तरह लगा। वहाँ की दुनिया बाहरी दुनिया से एकदम भिन्न थी। हर प्राणी विचित्र सा व्यवहार करता लगा। पागल तो पागल, डाक्टर, जमादार, नौकर आदि भी अजीब से लगे—गोया पागलखाने में हर एक पागल हो, सनकी हो। हफ्ते भर में ही वह इन विचित्रताओं का अभ्यस्त हो गया।

दो-एक दिन तो उसे डर सा लगा था। उसने डाक्टर से कहा था कि वह पागल नहीं है और फिर उसने माया और दिलीप के विश्वास-घात की कहानी भी सुना दी थी, मगर उसकी बात का डाक्टर पर ज़रा भी प्रभाव न पड़ा था और वह केवल मुस्करा कर रह गया था। प्रथम बार जब उसे बिजली का शाक दिया जा रहा था तब भी उसने चीख-चीख कर कहा था कि वह पागल नहीं है—वह पागल नहीं है। फिर धीरे-धीरे उसका विरोध शान्त हो गया। उसने समझ लिया कि उसकी बात पर विश्वास करने वाला वहाँ कोई नहीं है।

मुरारी स्पेशल क्लास में रक्खा गया था। दिलीप ने पहले महीने के नब्बे रुपये जमा कर दिये थे। उसका बिस्तर और कपड़ों का ट्रंक भी पहुँचा दिया था। वह अपने वस्त्र पहनता था, अपने बिस्तर पर सोता था।

सुबह उसे चाय और डबलरोटी मिलती। कभी-कभी पराठा और दूध मिलता। शाम को फल मिलते! रात को भोजन और फिर सोते समय दूध। पौष्टिक भोजन ने उसके दुर्बल शरीर में नयी शक्ति का

संचार किया। दोपहर और रात का भोजन करके जब वह थोड़ी देर के लिए ड्राइंग रूम में बैठता तो अपने को किसी नवाबजादे से कम न समझता। सुबह-शाम वाचनालय में जाकर समाचार-पत्र पढ़ता; पत्र-पत्रिकाओं का आनन्द लेता। जो सुख और सुविधा उसे बाहरी संसार में दुर्लभ थी वह चहारदीवारी से घिरी छोटी सी बस्ती में मिल रही थी।

स्पेशल क्लास में उसके अतिरिक्त सात रोगी और थे। पहले तो वह उनसे डरता था, दूर रहने की चेष्टा करता था; मगर धीरे-धीरे उसका भय दूर हो गया। वह उनसे घुल-मिल गया। उनसे बातें करता, उनके साथ खेलता, हँसता! प्रोफेसर सिंह, पाँडे, गुप्ता और रमेश का तो वह पक्का मित्र बन गया।

प्रोफेसर सिंह का पागलपन अजीब प्रकार का था। वे हमेशा टहलते रहते थे और हाथ हिला-हिला कर अपने अनुपस्थित और अदृश्य विद्यार्थियों को भाषण देते रहते थे। रात को उन्हें नींद नहीं आती थी। डाक्टर रोज रात को आकर सोने की दवा दे जाता था किंतु उसका कोई भी विशेष प्रभाव न होता था। अक्सर वे उत्तेजित हो उठते और तब मुरारी ही उन्हें शान्त करता था।

पाँडे २५-२६ वर्ष का नवयुवक था। कभी-कभी ठीक बातें करने लगता था और फिर बहक कर तुलसी, कबीर, मीरा, सूर आदि की रचनायें ज़ोर-ज़ोर से सुनाने लगता था। पाँडे को साहित्य से रुचि थी और वह स्वयं भी कवि थाँ। मुरारी अनजाने में ही इस युवक को प्यार करने लगा था। एक दिन जब वह शान्त था तब उसने मुरारी को अपनी करुण-कहानी सुनाई थी! वह निर्धन परिवार का था और एक सजातीय युवती से प्यार करता था। युवती भी उसे प्यार करती था। उन दोनों के प्यार के बीच में धन का दैत्य खड़ा था। युवती के पिता पैसे वाले थे। निर्धन व्यक्ति को जमाई कैसे बनाते? उन्होंने

अपनी पुत्रा की शादी उसकी शादी उसकी इच्छा के प्रतिकूल एक धनी परिवार में कर दी। युवती इस आघात को न सह सकी। उसने आत्म-हत्या कर ली। इस दोहरी चोट ने पाँडे का मस्तिष्क विकृत कर दिया। वह पागल हो गया। और अब हर पैसे वाला उसका शत्रु था।

गुप्ता की कहानी और भी अजीब थी। उसने औरों के मुख से उसके पागल होने का कारण सुना था। एक दिन गुप्ता के मुँह से भी सुन लिया।

"मुरारी भाई, मैंने सुना है तुम पागल नहीं हो!" गुप्ता ने बात इस तरह चलाई।

"ख्याल तो मेरा भी यही है।" मुरारी हँस कर बोला। "मगर दुनिया की नज़र में मैं पागल हूँ।"

"यही हाल मेरा है। अच्छा, तुम्हीं बताओ, क्या मैं पागल हूँ? तुमने कभी कोई पागलपन की बात मुझ में देखी?"

"नहीं तो!"

"मगर मैं पागल करार दे दिया गया हूँ। जानते हो, क्यों?" गुप्ता मुरारी के और समीप आकर बोला।

मुरारी ने उसकी बात का उत्तर नहीं दिया।

"मैंने जो कुछ इन आँखों से देखा है उसका आघात ज़रूर बहुत ज़ोर का हुआ है, पर मैं पागल नहीं हूँ। उस राक्षस ने मुझे पागल इस-लिए बनाया कि कोई मेरी बात का विश्वास न करे।" गुप्ता गम्भीर होकर बोला। "और सचमुच लोग मेरी बात का यक़ीन नहीं करते। समझते हैं, मैं पागल हूँ।"

"किस राक्षस की बात कह रहे हो?" अनजान बन कर मुरारी ने पूछा।

"अपने पिता की। वह इन्सान नहीं, शैतान है। जानते हो मैंने क्या देखा?" गुप्ता ने पूछा और फिर दाँत पीस कर, मुट्ठियाँ भींच कर

बोला—"वह राक्षस मेरी बहन के साथ बलात्कार कर रहा था। हाँ—अपनी पुत्री के साथ।"

और फिर अचानक गुप्ता फूट-फ़ूट कर रोने लगा—असहाय दुखी बच्चे की तरह। मुरारी ने उसकी पीठ पर हाथ फेरा, उसके आँसू पोंछे।

"तुम भी मेरा विश्वास नहीं करते ?" संयत होकर गुप्ता ने पूछा।

"करता हूँ ! इस दुनिया में सब कुछ सम्भव है।"

गुप्ता मुरारी का उत्तर सुन कर हर्षित हो उठा। पहली बार किसी ने उसकी बात का विश्वास किया था।

और फिर मुरारी ने अपनी कहानी भी गुप्ता को सुना दी। सुन कर गुप्ता बोला—"मुझे तो लगता है कि पागल बाहर के लोग हैं जिन्हें धर्म-अधर्म का ज्ञान नहीं। दोस्त, अपनी यह छोटी सी दुनिया ही हम लोगों के लिए ठीक है। बाहर हम ज़िन्दा नहीं रह सकते क्योंकि वहाँ की हवा में पाप का ज़हर है।"

मुरारी को गुप्ता की बात नग्न सत्य लगी।

रमेश से भी मुरारी काफी घुल-मिल गया था। रमेश क्यों पागल हुआ है यह तो कोई नहीं जानता था; मगर हाँ, वह हर एक को यही सलाह दिया करता था कि औरत से दूर रहो; वह नागिन है, नागिन !

× × ×

शनिवार का दिन था। विजिटिंग रूम में चहल-पहल थी। सब लोग अपने सगे-सम्बन्धियों से मिलने के लिए आतुर थे, परन्तु मुरारी उदास था। पिछले शनिवार को माया दिलीप के साथ उससे मिलने आयी थी। वह रेशमी वस्त्र और आभूषण पहने थी। उसे देख कर मुरारी का हृदय घृणा से भर गया था और फिर वह उसके मुख पर थूक कर चला गया था। दिन भर वह बेचैन रहा था। उसी दिन उसने निश्चय कर लिया था कि वह अब कभी माया की शक्ल नहीं देखेगा।

मुरारी हाल में टहल रहा था । रमेश अपनी चारपाई पर पड़ा था । उससे मिलने के लिए कोई नहीं आया था । वह अपलक दृष्टि से हाल की छत की ओर देख रहा था ।

"चलिये मुरारी बाबू, आपके मिलने वाले आये हैं ।" तभी जमादार ने आकर मुरारी से कहा ।

"मैं किसी से नहीं मिलना चाहता । चले जाओ ।" मुरारी जोर से चीख पड़ा कि जमादार डर गया ।

जमादार के जाने के पश्चात रमेश उठ कर बैठ गया और फिर उसने मुरारी को संकेत से अपने पास बुलाया । मुरारी उसकी चारपाई पर बैठ गया ।

"मिलने क्यों नहीं गये ?" रमेश ने धीमे स्वर में कहा ।

"ऐसे ही ।"

"कौन आया था ?"

"पत्नी ।" कह कर मुरारी बरामदे में टहलते हुये प्रोफेसर सिंह की तरफ देखने लगा ।

"तब तो ठीक किया ।" रमेश प्रसन्न होकर बोला । "दुनिया में सिर्फ हम दो ही अक्लमन्द हैं । और लोग बुद्धू हैं, बुद्धू । जानते हो संसार का सबसे बड़ा धोखा क्या है ?"

"नहीं ।" मुरारी ने उदास स्वर में कहा ।

"औरत ।" गम्भीर होकर विचारक की भाँति रमेश बोला । "इस सृष्टि का सबसे बड़ा धोखा है औरत । औरत नागिन से भी ज्यादा खतरनाक है । समझे ? एक बार नागिन का डसा बच सकता है पर औरत का डसा पानी भी नहीं माँग पाता ।"

"जानता हूँ ।"

"तुम कुछ नहीं जानते । मैं बताता हूँ । औरत चलती-फिरती मौत है । समझे ? वाकिंग डैथ । तभी तो मैं कहता हूँ कि अगर ज़िन्दा रहना

चाहते हो तो औरत से दूर रहो, उसकी मनहूस परछाईं से दूर रहो।'

मुरारी को रमेश की विचित्र सी बातें भी सारयुक्त लगीं। उसकी मनः स्थिति ही ऐसी थी ! औरों की तरह वह रमेश की बातों पर हँस न सका। उसके दिल में एक टीस सी उठी। वह समझ गया कि रमेश की बातों के पीछे कोई दुखद इतिहास है। कोई भी व्यक्ति अकारण ही नारी-जाति से इस प्रकार घृणा नहीं कर सकता। सम्भवतः उसके साथ किसी नारी ने विश्वासघात किया है—किसी ऐसी नारी ने जिसे वह सर्वस्व मान कर पूजता होगा, प्यार करता होगा !

रमेश का पूर्व इतिहास जानने की जिज्ञासा मुरारी के हृदय में अँगड़ाई लेकर जाग पड़ी। डरते-डरते धीमे स्वर में पूछा—"शायद तुम्हें किसी औरत ने बुरी तरह छला है ?"

"औरत किसे नहीं छलती ?" उत्तर देने की आवश्यकता न समझ कर रमेश मुरारी से प्रश्न कर बैठा।

मुरारी असमंजस में पड़ गया। रुक कर बोला—"औरत का ही दूसरा नाम छल है।"

अपनी भावना के अनुकूल बात सुन कर रमेश खिल पड़ा। हँस कर बोला—"आदमी तुम समझदार हो।"

मुरारी को रमेश की आँखों में एक चमक सी दिखाई दी। रमेश उठ कर टहलने लगा। मुरारी को लगा कि उसके अन्तर में भावनाओं की भयंकर आँधी उठ रही है और उसी पर नियंत्रण पाने के लिए उसने टहलने का आश्रय लिया है। रमेश कुछ देर तक टहलता रहा और मुरारी उसकी चारपाई पर बैठा हुआ उसी की ओर देखता रहा।

कुछ देर बाद रमेश फिर बैठ गया। मुरारी का हाथ अपने हाथों से दबा कर बोला—"मैं एक बार नहीं, कई बार औरत से छला गया हूँ।"

"अच्छा......।" मुरारी कृत्रिम आश्चर्य से बोला।

"पहले माँ ने छला, और......और फिर लस्मी ने।"

"लक्ष्मी कौन है ?"

"एक लड़की, जिसे मैं देवी समझ कर प्यार करता था।"

"उसने क्या किया ?"

"मेरा खून कर दिया। उसने रमेश को मार डाला।" रमेश दुखी स्वर में बोला।

"मगर......।"

"मैं रमेश नहीं, उसकी प्रेतात्मा हूँ।" कह कर रमेश खिलखिला कर हँस पड़ा और बहुत देर तक हँसता ही रहा।

जब रमेश शान्त हुआ तो मुरारी ने पूछा—"माँ ने क्या धोखा दिया ?"

"यह एक राज़ है जो मैं किसी को बता नहीं सकता।" कह कर रमेश अत्यधिक गम्भीर हो गया।

"क्या तुम्हारी माँ......?"

"मैं सौतेली माँ की बात कह रहा हूँ। पैंतालीस साल की अधेड़ावस्था में पिता जी ने दूसरी शादी की थी।"

"तुम्हारी माँ के रहते ?"

"माँ की मौत के दो साल बाद। तब मैं बीस साल का था। मैंने इस शादी का विरोध भी किया मगर कोई फल नहीं हुआ। पिता जी अट्ठारह साल की युवती को मरी माँ बना कर ले आये।"

रमेश का चेहरा दयनीय हो उठा। मुरारी को लगा कि पूर्व स्मृतियाँ रमेश के मस्तिष्क को झकझोर रही हैं। मुरारी सोचने लगा कि अठारह वर्ष की युवती बीस वर्ष के युवक को अपना पुत्र कैसे मान सकती है ? पैंतालीस वर्ष के अधेड़ को पति के रूप में किस प्रकार देख सकती है ? अवश्य ही उसने यौवन-नद की प्रलयंकरी बाढ़ में बह कर रमेश से अनुचित सम्बन्ध करने की चेष्टा की होगी। मगर इसमें उस बेचारी का क्या दोष ? यौवन का ढलती हुई अवस्था से परिणय ही क्यों

हुआ ? वह निर्धन घर की होगी ! माता-पिता दहेज़ देने की असमर्थता के कारण किसी योग्य वर से उसका विवाह न कर सके होंगे। रमेश के पिता ने पैसे की सहायता से उस भोली-भाली युवती को मोल ले लिया होगा ! हाँ, अवश्य ऐसा ही हुआ होगा ! तब दोष उस युवती का नहीं उस सामाजिक व्यवस्था का है जो इस प्रकार की करुण घटनाओं को जन्म देती है; दोष उस आर्थिक ढाँचे का है जो प्रतिपल असंख्य युवक-युवतियों के जीवन में विष घोल रहा है।

और सोचते-सोचते मुरारी का हृदय विद्रोह से भर गया। वह अजीब से स्वर में बोला—"रमेश, दोषी तुम्हारी माँ और लक्ष्मी नहीं हैं। दोष तो किसी और का ही है।"

"किस का दोष है ?" रमेश ने समझने के ढँग से पूछा।

"हमारी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का। आज के जीवन में जो अघटित घटनायें हो रही हैं उनका उत्तरदायित्व है पिशाचिनी पूँजी पर।"

"हियर···हियर···।" तभी ताली बजाता हुआ पाँडे अन्दर आया। "भाई मुरारी, तुमने मेरे मन की बात कही है। सब अनर्थों की जड़ पूँजी है। लेकिन नहीं, पूँजी को क्यों दोष दिया जाये ? पूँजी बुरी नहीं, बुरा पूँजीवाद है।"

"पूँजीवाद का नाम किसने लिया ?" कहते हुये प्रोफेसर सिंह भी अन्दर आ गये। "पूँजीवाद क्या है ? मैं पूछता हूँ, तुम समझते भी हो पूँजीवाद का अर्थ या वैसे ही कह रहे हो ?"

प्रोफेसर सिंह मुट्ठियाँ बाँध कर हाल में ज़ोर-ज़ोर से टहलने लगे। फिर घूँसा तान कर बोले—"पूँजीवाद का अन्त इन हाथों से होगा। मैं पूँजीवाद का गला घोंट दूँगा।"

और सचमुच वे अपने दोनों हाथों से शून्य का गला घोंटने लगे। मुरारी को उनकी यह मुद्रा देख कर हँसी आगयी।

"तुम हँस रहे हो ?" प्रोफेसर सिंह गरज कर बोले। तुम भी पूँजीपति हो ! नहीं, तुम पूँजीपति नहीं, उनके एजेंट हो । तुम हमारे सुनहरे संसार में ज़हर के बीज बोने आये हो । लेकिन मैं ऐसा नहीं होने दूँगा—नहीं होने दूँगा । यहाँ साम्यवाद है । यहाँ सब बराबर हैं । तुम ऊँच-नीच की दीवार खड़ी करना चाहते हो, गरीब-अमीर की खाई खोदना चाहते हो ! निकल जाओ यहाँ से, निकल जाओ ।"

प्रोफेसर सिंह मुरारी के निकल जाने की प्रतीक्षा किये बिना ही स्वयं बाहर चले गये । वे बरामदे में टहलने लगे और ज़ोर-ज़ोर से पूँजीवाद की विभीषिकाओं तथा साम्यवाद के गुणों की व्याख्या करने लगे ।

"पुअर प्रोफेसर...।" पाँडे एक दीर्घ निःश्वास छोड़ कर बोला ।

"तुम पिता जी से मिल आये ?" मुरारी ने बात बदलने के ध्येय से पाँडे से पूछा ।

पाँडे उदास हो गया । दुखी स्वर में बोला—"हर शनिवार को कानपुर से आगरे तक आना एक ग़रीब आदमी के लिए सम्भव नहीं है ।"

पाँडे की आँखों में आँसू की बूँदें झलकने लगीं । वह चुपचाप उठ कर बाहर चला गया ।

पाँच मिनट बाद ही जमादार फिर आया । उसे अपनी ही चारपाई की ओर बढ़ते देख मुरारी उठ कर बैठ गया ।

"मुरारी बाबू...।"

"तुम फिर आगये ।" मुरारी क्रुद्ध स्वर में बोला । "मैं मना कर चुका हूँ कि मुझे नहीं मिलना है किसी से । निकल जाओ यहाँ से ।"

"पहले वाले लोग तो चले गये । " जमादार डरते-डरते बोला— "दूसरे लोग आये हैं ।"

"दूसरे लोग आये हैं ?" मुरारी सोच में पड़ गया ।

"हाँ...।"

"यदि झूठ हुआ तो तुम्हारा गला घोंट दूँगा। हाँ...।"

"सच कहता हूँ, मुरारी बाबू !"

'कौन लोग हैं ?" चारपाई से उठ कर मुरारी ने प्रश्न किया।

"एक अधेड़ से लाला जी हैं और एक पन्द्रह-सोलह साल की लड़की है।"

लड़की का नाम सुन कर रमेश अपनी चारपाई से उठ कर मुरारी के पास आ गया और घृणा के स्वर में बोला—"नागिन के पास न जाओ, मुरारी ! डस लेगी।"

अधेड़ लाला और पन्द्रह-सोलह साल की लड़की का नाम सुनते ही मुरारी ने समझ लिया कि कामिनी अपने पिता के साथ आयी है। वह उन लोगों से मिलने को व्याकुल हो उठा।

"चलो।" कह कर वह द्वार की ओर बढ़ा।

"मान जाओ मुरारी ! जान-बूझ कर मौत को गले लगाना ठीक नहीं।" कहकर रमेश ने मुरारी की बाँह पकड़ ली।

मुरारी ने झटका देकर बाँह छुड़ा ली और खपरैल पड़े हुये विजिटिंग रूम की ओर चल दिया। विज़िटिंग रूममें कामिनी और उसके पिता को देखकर वह प्रसन्न हो उठा।

"अब कैसी तबियत है ?" कामिनी के पिता ने पूछा।

मुरारी की इच्छा हुई कि उन्हें सच बात बता दे। फिर सोचा कि कामिनी के सामने कहना ठीक नहीं होगा। हँस कर बोला—"ठीक है।"

"मुझे तो मालूम ही नहीं था। कामिनी ने जब बताया कि तुम पढ़ाने नहीं आ रहे हो तो मैंने समझा कि तबियत ढीली होगी। जब कई दिन हो गये तब चिन्ता हुई। दफ्तर जाकर पूछा तब पता लगा कि...।"

कामिनी के पिता ने अपना वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया।

मुरारी ने देखा, कामिनी उसी की ओर देख रही है और उसकी आँखों में करुणा और दुख की छाया है। उसके मन में उथल-पुथल मच गयी। भोली-भाली कामिनी उसे सचमुच ही पागल समझती होगी !

"कहो कामिनी, पढ़ाई ठीक चल रही है न ?" मुरारी ने अपने

सहज स्वर में पूछा ।

कामिनी ने सिर हिला दिया ।

"तुम सोचती होगी अच्छे मास्टर साहब मिले । थोडे दिन पढ़ाया और फिर पागल हो गये ।" हँस कर मुरारी ने कहा ।

"नहीं...नहीं...मास्टर साहब...!" कामिनी आगे न बोल सकी । उसकी आँखों से अश्रु-धारा बहने लगी ।

उसे रोता देखकर मुरारी भी आँखें भर आयीं । रुद्ध कंठ से बोला— "इसमें रोने की क्या बात है, पगली ? मैं जल्द ही ठीक हो जाऊँगा और फिर पढ़ाने आया करूँगा ।"

उसी समय मुरारी ने देखा कि जमादार द्वार से झाँक कर चला गया है । वह समझ गया कि मिलनें का समय (तीन मिनट) पूरा हो गया है । उठ कर बोला—

"अपनी पढ़ाई का ध्यान रखना, कामिनी ! और अगर उमा आये तो उससे फिर कहना कि अभी कुछ नहीं बिगड़ा है । अब भी समय है; अपने पति के पास चली जाये ।"

अपनी बात पूरी करके मुरारी विद्युत-वेग से बाहर निकल गया । वह विदाई की करुण घड़ियों से बचना चाहता था । हाल में पहुँच कर वह अपनी चारपाई पर धम्म से गिर पड़ा ।

"कहो बच्चू, पी आये न तीखा ज़हर ! मैं मना करता था कि मत जाओ ।" रमेश उसके पास बैठ कर बोला ।

"भगवान के लिए चुप भी रहो ।" मुरारी खीझ कर बोला । "मैं थका हुआ हूँ । आराम करने दो ।"

मुरारी का रूखा उत्तर सुन कर रमेश हतोत्साहित हो गया । उठ कर अपनी चारपाई पर लेट गया ।

"राक्षस...! नर-पिचाश...! शैतान... !" बकता हुआ गुप्ता अंदर आया । वह बहुत उत्तेजित दिखाई देता था । उसकी आँखों में अजीब

वहशीपन था और चेहरा क्रोध के कारण तमतमा रहा था ।

"तू मुझे राक्षस कहता है, शैतान कहता है । मैं तेरा गला घोंट दूंगा ।" कहते हुये प्रोफेसर सिंह आये और उन्होंने गुप्ता को धर दबोचा ।

रमेश और मुरारी लेटे न रह सके । दोनों ने उठ कर गुप्ता को प्रोफेसर सिंह की पकड़ से छुड़ाया ।

"यह तुम्हें गाली नहीं दे रहा है ।" मुरारी ने प्रोफेसर सिंह को धीरे से समझाया ।

"फिर किसे दे रहा है ?"

"अपने बाप को ।" मुरारी ने कहा ।

"ठीक है । ठीक है !!" प्रो० सिंह बाहर जाने लगे । पर दूसरे ही क्षण ठिठक कर बोले—"तुम झूठ बोलते हो ! कोई अपने बाप को भी गाली देता है ?"

"मेरा बाप आदमी नहीं, राक्षस है ।" गुप्ता आगे बढ़कर चीखता हुआ बोला । "उसने मेरी बहन के साथ...।" और फिर वह बाँहों में मुँह छिपा कर सिसकने लगा ।

"सैक्स...।" प्रोफेसर सिंह प्रोफेसरी के लहज़े में बोले—"औरत और रोटी ! रोटी और औरत !! इन्हीं के लिये हर संघर्ष होता है ।"

प्रो० सिंह बरामदे में ज़ाकर टहलने लगे ।

मुरारी गुप्ता को अपनी चारपाई पर ले गया । पास बिठा कर मीठे स्वर में कहा—"हर समय उत्तेजित होना ठीक नहीं ।"

"उत्तेजित कैसे न होऊँ ?" गुप्ता रुँआसा होकर बोला । "वह राक्षस मुझसे पूछने लगा कि अभी तुम्हरे दिमाग़ का कीड़ा मरा या नहीं ? तुम्हीं बताओ, मेरे दिमाग़ में कोई कीड़ा है ? अपने पाप को छिपाने के लिए मुझे पागल बनाया और मुझी से ऐसा सवाल करता है ।"

"तुमने क्या जबाव दिया ?" मुरारी ने सहज जिज्ञासा से पूछा ।

"मैंने साफ-साफ कह दिया कि समाज की दृष्टि में तुम भले ही प्रतिष्ठित हो, मगर मेरे लिए एक पापी शैतान हो। दुनिया की नज़र में तुमने मुझे पागल बना दिया, मगर मेरी ज़ुबान बंद नहीं कर सकते। मैं हर एक को तुम्हारी पाप की कहानी सुनाता हूँ और तब तक सुनाता रहूँगा जब तक ज़िन्दा रहूँगा। सुन कर बोला—तुम्हारी बात विश्वास कौन करेगा? मैंने कहा—हर समझदार आदमी करेगा। जानते हो, सुन कर क्या धमकी दी? कहने लगा अगर ज़ुबान बन्द नहीं करोगे तो उम्र भर यहीं सड़ना पड़ेगा।" बोलते-बोलते गुप्ता फिर उत्तेजित हो उठा।

मुरारी का मन उसकी बातें सुन कर भारी हो गया। भीगे और भारी स्वर में बोला—"अब शायद तुम्हें जिन्दगी भर यहीं रहना पड़ेगा।"

"जानता हूँ। उसके पास काफी पैसा है और वह पैसे के ज़ोर से मुझे उम्र भर यहीं रखवा सकता है। मगर मुझे कोई डर नहीं।"

"तुम्हारी बहन का क्या हुआ?" सहसा मुरारी पूछ बैठा।

"उसने दूसरे ही दिन आत्म-हत्या कर ली थी।"

"पुलिस ने······।"

"चाँदी के जूते का ज़ोर बहुत बड़ा होता है। केस दबा दिया गया।" गुप्ता बीच में ही बोल पड़ा।

मुरारी को पैसे की शक्ति का दूसरा प्रमाण मिला। यह जान कर कि धन से न्याय भी खरीदा जा सकता है, उसे आश्चर्य सा हुआ। अभी तक तो उसकी धारणा थी कि स्वतन्त्र भारत की पुलिस एकदम सुधर गयी है। गुप्ता की बात ने उसकी धारणा भंग कर दी। वह विचार में पड़ गया। तो क्या ईमानदारी और सच्चाई का संसार से सर्वथा लोप हो गया है?

"तुम्हारे पिता काफी बड़े आदमी हैं?" मुरारी ने एक क्षण बाद पूछा।

"गरीबों का रक्त चूस-चूस कर लाखों रुपये कमाये हैं। लखनऊ का बच्चा-बच्चा राय साहब अमोलकचन्द का नाम जानता है।"

"राय साहब अमोलक चन्द!" मुरारी ने ज़ोर से दोहराया। फिर पूछा—"क्या धन्धा है?"

"रुपया उगाही पर देते हैं।" कह कर गुप्ता ने घृणा से मुँह सिकोड़ लिया।

उसी समय दूर पर घन्टी टनटना उठी। दोपहर के भोजन का समय हो गया। मुरारी गुप्ता और रमेश के साथ डाइनिंग-रूम की ओर चल दिया।

पर न जाने क्यों उस दिन मुरारी ठीक से खा न सका।

११

***

माया और दिलीप मानसिक चिकित्सालय के विज़िटिंग रूम में बैठे मुरारी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। माया उदास थी। दिलीप सिगरेट पी रहा था। जमादार मुरारी को बुलाने के लिए गया हुआ था।

माया की आँखों के सामने पिछले शनिवार का दृश्य घूम रहा था। उसे देख कर मुरारी की आँखों में घृणा का पारावार लहरा उटा था। कितनी हिकारत की नज़र से उसने उसकी ओर देखा था और फिर वह दिलीप के सामने ही उसके मुँह पर थूक कर चला गया था। घर पहुँच कर वह फूट-फूट कर रोयी थी। उस अपमान की आग में उसका रोम-रोम झुलसने लगा था। उन बातों की कटु स्मृति ने उसके अन्तर में एक बार फिर कड़ुवाहट भर दी।

"दिलीप, मेरा अपमान कराने में तुम्हें मज़ा आता है क्या ?" सहसा माया तीखे स्वर में दिलीप से पूछ बैठी।

"नहीं तो।" दिलीप को और कोई उत्तर देने न बन पड़ा।

"फिर आज क्यों ले आये मुझे ? मैं नहीं आना चाहती थी। पिछली बार उसने मेरे मुँह पर थूका था इस बार······।" बोलते-बोलते माया का स्वर मर्मान्तक पीड़ा से भीग गया।

"यह न भूलो माया, कि मुरारी पागल है !" दिलीप धीमे स्वर में बोला। 'हमें पागल की बात का बुरा न मानना चाहिए।"

"मगर वह पागल है कब···।"

"शी···शी···।" दिलीप अपने स्वर को और भी मन्द करके बोला।

"यहाँ वालों की नज़रों में तो पागल ही है। अगर पिछली घटना के कारण हम आज न आते तो यहाँ के लोग शक करने लगते।"

माया उत्तर देना ही चाहती थी कि जमादार अकेला ही कमरे में घुसा।

"मुरारी नहीं आया?" दिलीप ने पूछा।

"नहीं साहब!" जमादार खेद प्रकट करता हुआ बोला। "वह तो मुझे मारने को दौड़े। कहने लगे मैं किसी से नहीं मिलना चाहता।"

माया और दिलीप की दृष्टियाँ मिल गयीं। माया की दृष्टि कह रही थी कि मैं पहले से ही जानती थी!

"अच्छी बात है।" दिलीप जमादार के हाथ पर एक रुपये का नोट रख कर बोला। "मालम होता है हालत सुधर नहीं रही है। मैं डाक्टर शर्मा से बात कर लूँगा। तुम ज़रा मुरारी बाबू का ध्यान रक्खा करो।"

'मैं उन्हें कोई तकलीफ नहीं होने देता हूँ, साहब।" जमादार नोट जेब में रखता हुआ बोला। "आप किसी बात की फिकर न करें।" फिर माया की ओर मुड़ कर कहने लगा—"भगवान पर भरोसा रखिये बीबी जी! मुरारी बाबू जल्दी ही ठीक हो जायेंगे।"

विज़िटिंग-रूम से निकल कर दिलीप और माया डाक्टर शर्मा के पास गये। डाक्टर शर्मा दिलीप का मित्र था और कुछ सीमा तक उसके अमानुषिक षड्यन्त्र में सम्मिलित भी था।

"शर्मा भाई, मुरारी आज काफी उत्तेजित मालूम होता है। जमादार को मारने दौड़ा। हम से मिलने भी नहीं आया।" दिलीप ने आँख का संकेत करते हुये कहा।

"अच्छा!" डाक्टर शर्मा कृत्रिम आश्चर्य जता कर बोला। "मैं समझता था कि हालत सुधर रही है। कोई बात नहीं। कल बिजली का शाक फिर देना पड़ेगा।"

"ओर हाँ, उससे कह देना कि माया की फिकर न करे। आई एम लुकिंग आफ्टर हर।" कह कर दिलीप मुस्करा पड़ा।

जब दिलीप की कार मानसिक-चिकित्सालय से शहर की ओर जाने लगी तो माया काफी उदास थी। दिलीप को माया का उदासी अखरने लगी। उसे हँसाने के उद्देश्य से बोला—"क्यों, पतिदेव की याद सता रही है ?"

"हटो, तुम बड़े वैसे हो।" माया कृत्रिम रोष जता कर बोली। "पहले मेरा अपमान कराने के लिए यहाँ ले आये और अब जले पर नमक छिड़क रहे हो।"

"भगवान की सौगन्ध, गुस्से में तुम और भी प्यारी मालूम होती हो।"

और इस बार माया को मुस्कराना ही पड़ा।

"चलो, हँसी तो! मैं तो समझता था कि चाँद मुस्कराना ही भूल गया।" दिलीप भावुक होकर बोला।

"अब मुझे कभी यहाँ आने के लिए न कहना। मैं उस जानवर का मुँह भी देखना नहीं चाहती।" माया दिलीप के निकट खिसक कर बोली।

"अच्छी बात है। अब कभी न आना।" दिलीप ने हँस कर कहा और फिर कृत्रिम गम्भीरता धारण करके बोला—"डरता हूँ, कभी मैं भी न जानवर करार दे दिया जाऊँ।"

"बहुत दुष्ट हो गये हो।" कह कर माया ने दिलीप की जाँघ में चुटकी काट ली। फिर हँस कर बोली—"चलो, अकबर की समाधि देख आयें।"

दिलीप ने कार सिकन्दरा की ओर मोड़ दी।

× × ×

माया बिस्तर पर लेटी करवटें बदलती रही।

दिलीप की कृपा से घर का काया-कल्प हो गया था। दीवारें पोत

दी गयी थीं। द्वारों पर सुन्दर पर्दे पड़ गये थे। एक सोफ़ा-सेट भी आ गया था और फर्गुसन का छोटा सा आकर्षक रेडियो भी माया की एकान्त घड़ियों का साथी बन गया था। टूटी चारपाई का स्थान निवाड़ के पलँग ने ले लिया था। फटी-पुरानी दरी जमादारिन को दे दी गयी थी। पलँग पर गुदगुदा गद्दा और रेशमी चादर बिछती थी। गीली लकड़ियों के विषैले धुँयें में आँखें फोड़ने की माया को कोई ज़रूरत नहीं रह गयी थी। भोजन बनाने के लिए बिजली का 'कुकर' आ गया था। सैन्डिलों, साड़ियों और आभूषणों का ढेर लग गया था।

इन सुख-साधनों के बावजूद भी माया करवटें बदल रही थी जो कभी फर्श पर फटी दरी बिछा कर ही गहरी नींद सो जाती थी उसे आज कोमल गुदगुदी शैया पर भी नींद नहीं आ रही थी।

साढ़े दस बजे तक वह रेडियो के विविध कार्यक्रम सुनती रही थी। फिर बत्ती बुझा कर लेट गयी थी, मगर आधी रात बीत जाने पर भी वह सो न पायी।

वैसे रात को रोज ही वह घर में अकेली ही रहती थी। दिलीप की जब रात की ड्यूटी होती थी तब वह साढ़े सात बजे ही चला जाता था और जब दिन की होती थी तब दस-ग्यारह बजे चला जाता था। रात में वह कभी भी वहाँ न सोया था। माया को कभी भी इतना अकेलापन अनुभव न हुआ था जितना आज हो रहा था। वह करवटें बदल-बदल कर सोने की चेष्टा कर रही थी मगर नींद थी कि आती ही नहीं थी।

जिस दिन मुरारी पागलखाने में भर्ती कराया गया था उसके दो-तीन दिन बाद तक वह अवश्य खिन्न रही थी। रह-रह कर एक हूक सी मन में उठ जाती थी। पर उसके बाद वह संयत हो गयी थी। मुरारी को उसने अपनी दिल की दुनिया से एकदम निकाल कर फेंक दिया था।

पिछले शनिवार को जब मुरारी ने उसके मुँह पर थूका था तब भी

वह दिन भर बेचैन रही थी मगर रात में निश्चिन्त होकर सोयी थी। मगर आज न जाने क्या हो गया था कि उसे नींद ही नहीं आ रही थी। उसने अपनी मानसिक स्थिति का विश्लेषण करने की चेष्टा की मगर नींद न आने का कोई स्पष्ट कारण समझ में न आया।

पलँग से उठ कर उसने बत्ती जलायी। नल खोल कर मुँह धोया। एक गिलास पानी पिया और बत्ती बुझा कर फिर लेट गयी। सहसा वह काँप गयी। उसे लगा कि मुरारी की चमकीली आँखें उस अँधेरे में भी उसे घूर रही हैं। उसे चारों तरफ मुरारी की शक्लें दिखाई देने लगीं। फिर लगा जैसे कोई हँस रहा है—अट्टहास कर रहा है। उसने डर कर आँखें बन्द कर लीं और कानों में उँगलियाँ ठूँस लीं। मगर मुरारी के चेहरे घूमते रहे और तरह-तरह की आवाज़ें आती रहीं। उसने मुरारी के अधर खुलते हुये देखे। लगा, जैसे वह कुछ बोल रहा है।

"तू कुलटा है।" न जाने किसका तेज़ स्वर गूँज गया।

माया भय से काँपने लगी। पंखे की शीतल हवा में भी पसीने से बुरी तरह भीग गयी। कंठ अवरुद्ध हो गया। चीखना चाहा, पर चीख न सकी। साँस की गति तीव्र होगयी।

"तू कुलटा है।" असंख्य आवाज़ें माया के कानों में गूँज गयीं। और ये आवाजें आती रहीं, आती रहीं।

वह बड़ी कठिनाई से पलँग छोड़ कर खड़ी हो सकी। कम्पित हाथ से बत्ती चलायी। कमरा प्रकाश से जगमगा उठा।

"सब मेरे मन का भ्रम था।" माया अस्फुट स्वर में बुदबुदायी। और फिर उसने संकल्प किया कि अब वह इस घर में नहीं रहेगी। सुबह ही दिलीप से कहेगी कि मुझे अपने घर ले चलो।

रात भर बत्ती जलती रही। अँधेरे से डर लगने लगा था। माया पलँग पर करवटें बदलती रही। फिर न जाने कब उसकी आँख लग गयी।

और जब आँख खुली तो दिन काफी चढ़ आया था। दैनिक कर्मों से निवृत्त होकर 'कुकर' पर चाय का पानी चढ़ा दिया।

लगभग नौ बजे जब दिलीप पहुँचा तो माया की चाय की तैयारी थी। रोज़ की तरह वह दिलीप का स्वागत उत्साह और मादक मुस्कान से न कर सकी। दिलीप को लगा कि माया की आँखें लाल हैं और चेहरे पर चिन्ता की परछाइयाँ हैं।

"क्या बात है, माया ?" चाय की चुसकी लेते हुये दिलीप ने पूछा।

"कोई मरे या जिये तुम्हारी बला से।" रुद्ध कण्ठ से माया ने उत्तर दिया और फिर दूसरी ओर देख कर टोस्ट पर मक्खन लगाने लगी।

"ऐसी कौन सी खता हो गई है, हुजूर ?" चाय का प्याला मेज़ पर रख कर दिलीप ने पूछा।

"अपने दिल से पूछो।" कह कर माया ने टोस्ट की प्लेट उसके आगे खिसका दी।

तभी रेडियो पर बजता हुआ सितार बन्द होगया। फिर घोषणा हुई कि अब शान्ताबाई का गायन होगा।

"मेरे दिल में तो तुम्हारी ही तस्वीर है; इसलिये तुम्हीं बतादो।" कहकर दिलीप ने टोस्ट का टुकड़ा मुँह में रख लिया।

तभी शान्ताबाई का स्वर गूंज उठा—

"तुम बिन मोहे पिया निंदिया न आवै !
निंदिया न आवै
निंदिया न आवै
तुम बिन मोहे पिया निंदिया न आवै !!"

माया ने उठ कर रेडियो बन्द कर दिया। फिर अपने स्थान पर बैठ कर पूछा—"मिल गया उत्तर ?"

"तुम बिन मोहे पिया निंदिया न आवै ।" दिलीप गुनगुनाने लगा ।

"हाँ दिलीप, तुम्हारे बिना नींद नहीं आती । कल रात भर करवटें बदलती रही ।" माया निःश्वास छोड़कर बोली ।

"मेरे अहोभाग्य !" कहकर दिलीप मुस्कराया ।

"यह हँसी की बात नहीं है । रात भर न जाने कैसा लगता रहा ।" और फिर माया ने अपनी बेचैनी का हाल बता दिया ।

"यह सब तुम्हारे दिमाग़ का वहम है, माया ।"

"जो कुछ भी हो । मैं अब इस मकान में नहीं रह सकती । मुझे अपने घर ले चलो ।" माया कातर स्वर में बोली ।

माया की बात सुनकर दिलीप घबरा गया । उसे अपने घर ले जाने के लिए वह कभी भी तैयार नहीं था ।

दिलीप को मौन और चिन्ता में पड़ा देखकर माया भीगे स्वर में बोली—"अगर मुझे अपने घर न ले चले तो समझूँगी तुम्हें मुझसे प्यार नहीं है !"

"ऐसा न कहो, माया ! मैं तुम्हारे लिये जान तक दे सकता हूँ । मगर...मगर...अपने क्वाटर में रखने से हम दोनों की बदनामी होगी । मैं नौकरी से निकाल दिया जाऊँगा । बोलो, क्या तुम चाहती हो कि मेरी नौकरी छूट जाये ?"

दिलीप के प्रश्न ने माया को चक्कर में डाल दिया । वह यह कभी भी नहीं चाहती थी कि दिलीप की नौकरी छूट जाये ! वह दृष्टि नीची करके सोचने लगी ।

दिलीप समझ गया कि उसका दाँव चल गया है । माया का हाथ अपने हाथ में लेकर बोला—"मेरी अच्छी माया, इसी नौकरी के बल पर तो हम चैन करते हैं । अगर यह छूट गयी तो...।"

"मगर मैं इस घर में नहीं रह सकती......।" माया सिसक कर

बोली।

"कुछ दिन धीरज रक्खो। मैं दूसरे मकान की तलाश में रहूँगा। बस, अब तो खुश हो ?" कह कर दिलीप ने माया के हाथ को चूम लिया।

उत्तर में माया की आँखों के आँसू मुस्करा पड़े।

१२

***

ुरारी को जब सुबह नाश्ता नहीं दिया गया तो वह डर से काँप गया। वह समझ गया कि आज बिजली का शाक दिया जायेगा। मुरारी को पागलखाने की हर चीज़ अच्छी लगती थी; अगर किसी से चिढ़ थी तो बिजली के शाक से। दौड़ा हुआ डाक्टर शर्मा के पास गया और दयनीय स्वर में बोला—

"डाक्टर साहब, आज मुझे नाश्ता नहीं दिया गया।"

"आज बिजली का शाक लगेगा।" कह कर डाक्टर शर्मा मुस्कराया।

"मगर मेरी तबियत तो ठीक है!"

"सभी ऐसा कहते हैं।"

"मैं विनती करता हूँ डाक्टर साहब, शाक न दीजिये।" मुरारी आँखों में आँसू भर कर बोला। "सच कहता हूँ, मुझे कोई तकलीफ नहीं है। मैं बिल्कुल ठीक हूँ।"

"डाक्टर मैं हूँ या तुम?" चिढ़ कर डाक्टर शर्मा बोला। "चलो मेरे साथ।"

मुरारी का शरीर भय से काँप रहा था। वह भारी पैरों डाक्टर-शर्मा के साथ चल दिया।

जब मुरारी को मेज़ पर लिटाया गया तब भी वह काँप रहा था।

"कांप क्यों रहे हो?" डाक्टर ने डाँट कर पूछा।

"डर लगता है!" मुरारी रुँधे कण्ठ से बोला।

"अभी डर दूर हो जायेगा ।" कहकर डाक्टर शर्मा ने मुरारी को गिनती गिनने का आदेश दिया और फिर क्लोरोफार्म का फाहा उसकी नाक के पास ले गया ।

मुरारी गिनने लगा---एक, दो, ती...न, चा...र, पाँ...च... छह···सा···

मुरारी 'सात' का उच्चारण न कर सका । क्लोरोफार्म के प्रभाव से वह अचेत हो गया ।

जब बिजली के तार मुरारी के मस्तक के दोनों छोरों से छलाये गये तो अचेतास्था में भी उसका शरीर बुरी तरह ऐंठने लगा । हाथ-पैर अकड़ने लगे । आँखें फटने सी लगीं । जीभ बाहर निकल आयी । उसका चेहरा डरावना होगया । मुँह से फेना निकलने लगा ।

शाक देने के बाद उसे दूसरे कमरे में लिटा दिया गया । जब होश आया तो उसे लगा कि शरीर की सारी शक्ति निकल गयी है और दिमाग़ एक दम रीता हो गया है ।

"तुम्हारा नाम मुरारी है, जानते हो ?" डाक्टर शर्मा ने कहा ।

मुरारी वहाँ की चिकित्सा-प्रणाली से पूरी तरह परिचित हो चुका था । बिजली का शाक देकर मस्तिष्क को शून्य करने के बाद 'सजेस्शन' द्वारा रोगी को उसका नाम, पता, और जीवन की पिछली बातें बताई जाती थीं । डाक्टर शर्मा की बात सुनकर मुरारी चिढ़ गया ।

"जानता हूँ, मैं सब कुछ जानता हुँ । मुझे सजेस्शन देने की ज़रूरत नहीं है । लैट मी रेस्ट, प्लीज़ ।" मुरारी ने कहा ।

डाक्टर शर्मा मुँह बिचका कर दूसरे रोगी के पास चला गया ।

शाम को अचानक प्रोफेसर सिंह की तबियत बहुत खराब हो गयी । वे अपने वस्त्र फाड़ने लगे । मुरारी ने उन्हें शान्त करने की चेष्टा की पर उनकी उत्तेजना बढ़ती गयी ।

"मानसिक चिकित्सालय न्यूडिस्ट कालोनी बनता जा रहा है ।"

पाँडे के मुँह से प्रोफेसर सिंह को नंगा देख कर निकल गया।

सुनते ही प्रोफेसर सिंह भयंकर सिंह की तरह दहाड़ उठे और पाँडे को मारने दौड़े। मुरारी और गुप्ता बड़ी कठिनाई से प्रोफेसर सिंह को पकड़ सके। डाक्टर आये। डाक्टरों की वर्दी देख कर वे ऐसे भड़के जैसे सांड़ लाल कपड़ा देखकर भड़कता है। फलस्वरूप उन्हें एक कोठरी में बन्द कर दिया गया।

रात भर मुरारी ठीक से सो न सका। प्रोफेसर सिंह का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूम जाता। एक बार इच्छा हुई कि उठ कर कोठरी के पास जाये और उनकी दशा देखे। जाने के लिये वह चारपाई उठा भी, मगर तभी जमादार ने टोक दिया। मन मार कर वह फिर लेट गया।

सुबह होते ही यह समाचार सारे पागलखाने में विद्युत-प्रवाह की तरह फैल गया कि प्रोफेसर सिंह का देहान्त हो गया है। उनके मस्तिष्क की नसें अत्यधिक उत्तेजना के कारण फट गयी थीं। मुरारी का हृदय पीड़ा से भर गया। अन्तिम दर्शन की लालसा से वह कोठरी की ओर चला, मगर मार्ग में ही रोक दिया गया। प्रोफेसर सिंह की लाश देखने की आज्ञा किसी भी रोगी को नहीं थी। चिकित्सालय के अधिकारियों को भय था कि प्रोफेसर सिंह का विकृत चेहरा देखकर रोगियों के मस्तिष्क और हृदय पर बुरा असर पड़ेगा।

मुरारी प्रोफेसर सिंह की लाश न देख सका पर उनकी मृत्यु के समाचार ने ही उसके दिल और दिमाग में उथल-पुथल मचा दी। वह दिन भर परेशान रहा। कई बार उसे लगा कि उसके मस्तिष्क की शिरायें भी फट रही हैं और उस दिन प्रथम बार उसने अनुभव किया कि यदि वह पागलखाने में कुछ दिन और रहा तो या तो वह सचमुच पागल हो जायेगा या फिर प्रोफेसर सिंह की ही तरह उसका भी अन्त हो जायेगा।

मुरारी इन दोनों में से किसी भी बात के लिये तैयार न था। वह न तो पागल होना चाहता था और न मरना। फिर उपाय क्या है ? मक्ति ! हाँ, इस पागलखाने से मुक्ति ! मगर दिलीप और माया तो यही चाहते हैं कि वह पागलखाने में ही सड़ता रहे ! डाक्टर भी नहीं सुनते ! फिर मुक्ति का मार्ग क्या है, भागना ! हाँ, उसे भागना पड़ेगा ! और फिर उसके दिमाग़ में चिकित्सालय का नक्शा घूम गया। विशाल फाटक से अन्दर आने पर दाहिनी ओर रिकार्ड-रूम जिसमें गेट मैन रहता है। बायीं ओर आफिस। और आगे बढ़ने पर दाहिनी ओर - विज़िटिंग रूम। फिर कुछ दूर पर बायीं ओर दवाखाना और उसके पीछे छोटी-छोटी कोठरियाँ। इस तरफ से भागना असम्भव है, एकदम असम्भव ! दाहिनी ओर औरतों का वार्ड है। हाँ, बायीं ओर से सम्भावना है। पुस्तकालय के बाद खाली मैदान है। उधर कोई नहीं जाता। चहार-दीवारी भी उधर नीची ही है। ठीक है; यही मार्ग ठीक है।

भागने के निश्चय के बाद वह हमेशा इसी उधेड़-बुन में रहता कि कब और कैसे भागा जाये। अनेक योजनायें बनायी और बिगाड़ीं। दिन में भागना तो नितान्त असम्भव था। रात में ही मौका मिल सकता था। उसने पहले तो इस बात का पूरा पता लगाया कि पहरेदार कब कहाँ होता है। वह यह भी जानता था कि घड़ी-पहरा भी लगता है और भागने वाले के लिए साफ निकल जाना यदि असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। अपने मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को जान कर भी वह हतोत्सा-हित नहीं हुआ। पागलखाने से मुक्ति पाने के लिए वह बड़े से बड़ा खतरा मोल लेने के लिए तैयार था।

मुरारी सदैव अपनी ही योजना में खोया रहने लगा। उसने गुप्ता पाँडे और रमेश से बोलना भी कम कर दिया। एक दिन जब वह वाच-नालय में बैठा 'धर्मयुग' के चित्र देख रहा था तब पाँडे भी उसी के पास आकर बैठ गया। मुरारी अपने ध्यान में इस प्रकार डूबा हुआ था कि

उसे पाँडे का आना ज्ञात तक न हुआ।

"अमाँ, क्या हो गया है तुम्हें ? कई दिनों से खोये-खोये रहते हो ?" पाँडे ने उसके हाथ से 'धर्मयुग' छीन कर पूछा।

मुरारी ने सूनी दृष्टि से पाँडे को देखा और फिर निःश्वास छोड़ कर मन्द स्वर में बोला—"कुछ नहीं। ऐसे ही उदासी रहती है।"

पाँडें नें अपनी तीक्षण दृष्टि उसकी आँखों मे गड़ा दी। मुरारी दूसरी ओर देखने लगा।

"हमीं से उड़ते हो यार।" पाँडे हँस कर बोला। "सच बताओ। क्या बात है ? क्या घरवाली की याद आती है ?"

घरवाली का नाम सुन कर माया की तस्वीर मुरारी की आँखों के सामने घूम गयी। घृणा से उसका चेहरा विकृत हो गया।

"तुम्हारा चेहरा देख कर ही समझ में आ गया कि घरवाली की याद से परेशान नहीं हो। फिर क्या बात है ?" पाँडे के स्वर में आश्चर्य था। फिर अपनी कुर्सी उसके और करीब खिसका कर अत्यन्त धीमे स्वर में पूछा—"कहीं भागने का भूत तो सवार नहीं हुआ है सिर पर ?"

मुरारी चौंक पडा। चेहरा पीला पड़ गया। उसे लगा जैसे पाँडे ने उसे चोरी करते रँगे हाथों पकड़ लिया है। उसने कातर दृष्टि से पाँडे की ओर देखा। पाँडे का चेहरा देख कर उसके जी में जान आयी। उसे विश्वास हो गया कि पाँडे ने सहज जिज्ञासा से प्रश्न पूछा है; उसे उसकी योजना या मन के भावों का रत्ती भर भी ज्ञान नहीं है।

"कैसी बातें करते हो यार ? इस क़ैद से कोई भाग भी सकता है ?" मुरारी ने हँस कर कहा।

"भाग क्यों नहीं सकता ?" पाँडे भी हँस कर बोला। "भागना इतना मुश्किल नहीं है जितना फिर पकड़े जाने से बचे रहना।"

"मैं समझा नहीं मतलब।" अनजान बन कर मुरारी ने कहा।

"यहाँ से भागे हुये रोगी की छान-बीन उसी तरह होती है जैसे जेल से भागे हुये कैदी की। दोनों में कोई अन्तर नहीं।" पाँडे उँगलियाँ चटकाता हुआ बोला—

"प्रकाश को जानते हो !"

"कौन प्रकाश ?"

"अरे वही गोरा-सा लड़का ! फर्स्ट क्लास में है। घुँघराले बाल, बड़ी-बड़ी आँखें...।"

"जो अक्सर सिनेमा के गीत गाता रहता है।" बीच ही में मुरारी बोला।

"हाँ, वही। क्या गला पाया है ?" पाँडे प्रशंसा के स्वर में बोला।

"क्या हुआ उसका ?"

"एक बार भाग गया था।"

"अच्छा !"

"हाँ, मगर हफ्ते भर के अन्दर ही पकड़ा गया। हजरत भागकर अपने घर दिल्ली पहुँचे थे !" कहकर पाँडे हँस पड़ा।

"इतनी ऊँची दीवार को लाँघा कैसे ?"

"हर तरफ दीवार इतनी ऊँची थोड़े ही है।" कह कर पाँडे ने मुरारी की पीठ थपथपायी और फिर उठता हुआ बोला—"मगर तुम न भागना दोस्त ! पकड़े जाने पर अधिकारी बुरी तरह पेश आते हैं, कोठरी में बन्द रक्खा जाता है।"

पाँडे चला गया। मुरारी के कानों में उसका स्वर गूँजता रहा—"पकड़े जाने पर अधिकारी बुरी तरह पेश आते हैं; कोठरी में बन्द रक्खा जाता है।"

रात को जब और रोगी सो गये तब भी उसे नींद न आयी। स्टूल पर बैठ कर नौकर भी ऊँघने लगा। मुरारी उठ कर बैठ गया।

"प्यास लगी है !" उसने नौकर से कहा।

नौकर भुनभुनाता हुआ उठा और एक गिलास में पानी दे दिया। मुरारी ने देखा नौकर की आँखें लाल हैं और उनमें नींद भरी है। पानी पीकर मुरारी ने गिलास नौकर को दे दिया। गिलास फर्श पर रख कर नौकर दीवार का सहारा लेकर कोने में बैठ गया। मुरारी लेट गया मगर नींद रूठ गयी थी।

कुछ देर बाद बारह का गजर बजा। मुरारी ने देखा, नौकर खर्राटे ले रहा है।

"लाखन·····।" मुरारी ने धीमे स्वर में पुकारा।

नौकर उसी प्रकार सोता रहा।

"लाखन !" मुरारी कुछ जोर से बोला। "पेशाब लगी है।"

लाखन ने आँखें खोल कर भारी स्वर में कहा--"चले जाओ, बाबू ! मुझे नींद लगी है।"

"आज दिन में नहीं सोये थे ?" मुरारी ने लेटे-लेटे ही पूछा।

"नहीं !" आराम से पैर फैलाकर लाखन ऊँघते स्वर में बोला—"ससुरे जमना ने भाँग पिला दी है।"

और फिर लाखन फर्श पर लेट गया। उसकी नाक ज़ोर से बजने लगी।

मुरारी उठकर बैठ गया। सभी रोगी अपने-अपने बिस्तरों पर गहरी नींद सो रहे थे। भागने का सुनहला अवसर सामने था। लाखन दस बजे आया था। छह बजे तक उसकी ड्यूटी थी।

मुरारी चुपचाप उठा। अपनी चप्पल पहनना उचित न समझ, गुप्ता का रबर-सोल का जूता पहना और फिर दबे पाँव बाहर आ गया। चारों ओर सन्नाटा था। मुरारी बिजली के प्रकाश से बचता हुआ तीव्र गति से वाचनालय की ओर बढ़ा। वाचनालय पीछे छोड़कर वह मैदान पार करता हुआ चहारदीवारी के पास पहुँच गया।

जैसे ही मुरारी दीवार फाँदने को हुआ, उसका दिल ज़ोर से धड़-

कने लगा। दिल ने कहा—भाग तो रहे हो मगर जाओगे कहाँ ? मुरारी के पैर ठिठक गये। वह सोच में पड़ गया । भागकर घर जाने का तो प्रश्न ही नहीं था ! हाँ, कामिनी के घर जा सकता है, मगर वहाँ कब तक छिपकर रहा जा सकता है ! पुलिस उसकी खोज में दिन-रात एक कर देगी। उसकी भी वही दशा होगी जो जेल से भागे हुये कैदी की होती है । पुलिस की दृष्टि से कब तक बचा रह सकता है ? कभी-न कभी तो पकड़ा ही जायेगा और फिर उसके साथ कठोर बर्ताव किया जायेगा; उसे कोठरी में बन्द रक्खा जायेगा। और फिर शायद प्रोफेसर-सिंह की तरह एक दिन उसके दिमाग की नसें भी फट जायेंगी और... और......!

मुरारी आगे न सोच सका। भागने का उत्साह शिथिल पड़ गया। सोचा, भागना बेकार है! इससे अच्छा तो यह है कि भूख-हड़ताल कर दी जाये और जब सुपरिन्टेन्डेन्ट कारण पूछे तो उसको पत्नी और मित्र के विश्वासघात की कहानी बताकर यह भी कह दिया जाये कि डाक्टर शर्मा भी उनके षड़यन्त्र में सम्मिलित है। शायद सुपरिन्टन्डेन्ट को उसकी बात जँच जाये और वह उसे मुक्त करदे। परन्तु तभी सुपरिन्टेडेन्ट का कठोर चेहरा उसकी आँखों के सामने घूम गया। डाक्टर शर्मा तो उसकी बात सुनकर हँस भी देता है, मगर सुपरिन्टेडेन्ट तो बात भी नहीं सुनेगा! जेल के जेलर से भी अधिक सख्त है वह ! नहीं, इस बन्दी गृह में सड़ने से अच्छा तो मर जाना ही है ! वह यहाँ नहीं रह सकता, नहीं रह सकता !

और फिर मुरारी परिणाम की चिन्ता किये बिना ही दीवार फाँद गया। अब वह आज़ाद था—एक दम आज़ाद ! मुख्य सड़क पर पहुंच कर उसने सन्तोष की साँस ली।

अब समस्या यह थी कि जाये कहाँ ! घर जाने का प्रश्न ही नहीं था। हाँ, कामिनी के यहाँ जाना चाहिये और वह तेज़ी से शहर की ओर

चल दिया । सड़क विधवा की माँग की तरह सूनी थी । आस-पास के बँगलों से कुत्तों के भौंकने की आवाज़ आ रही थी । मुरारी के पैरों में बिजली की तेज़ी आ गयी थी । वह जल्द से जल्द कामिनी के घर पहुँच जाना चाहता था । उसका विचार था कि कामिनी के पिता से कुछ रुपये उधार लेकर वह आगरे से दूर—बहुत दूर—चला जायेगा और किसी नयी जगह में अपने अतीत को भूल कर नया जीवन शुरू करेगा।

कुछ देर बाद ही मुरारी को लगा कि पीछे से एक कार तेज़ी से उसी ओर आ रही है । पहले तो वह डरा, फिर सोचा कि डरने की कोई बात नहीं है । शायद कोई कार मथुरा या दिल्ली से आ रही है ! इस विचार ने नयी हिम्मत दी । भय दूर हो गया । विचार किया कि क्यों न कार वाले से शहर तक छोड़ देने की प्रार्थना की जाये ।

कार आगे बढ़ती आ रही थी ! उसकी तेज़ बत्तियाँ ऐसी चमक रही थी मानों शैतान की अग्निमयी आँखें हों । मुरारी साहस करके बीच सड़क पर खड़ा हो गया और दोनों हाथों से कार रोकने का संकेत करने लगा ।

कार उसके पास पहुँच कर रुक गयी । मुरारी ने देखा, एक युवक कार की अगली सीट पर बैठा है और एक युवती पीछे बैठी है । अगली खिड़की के पास जाकर मुरारी विनम्र स्वर में बोला—"क्या मुझे शहर तक पहुँचाने की कृपा करेंगे ?"

युवक ने अँग्रेज़ी में गाली दी । मुरारी की नाक में मदिरा की दुर्गन्ध भर गयी । वह समझ गया कि युवक मदिरा के नशे में चूर है। निराश होकर वह वहाँ से हटना ही चाहता था कि पीछे बैठी हुई युवती उस युवक से बोल पड़ी—"तुममें साधारण एटीकेट भी नहीं है !" फिर खिड़की खोल कर मुरारी से बोली—"अन्दर आजाइये ! जहाँ कहेंगे, उतार देंगे ।"

कार फोर्ड कम्पनी की थी । काफी बड़ा आकार था । नीला रंग

धूल से कुछ-कुछ भूरा लग रहा था। सिर नीचा करके मुरारी पिछले द्वार की ओर बढ़ा। वह युवक की गाली से सहम गया था। धीरे-धीरे डरता हुआ अन्दर बैठ गया। खिड़की बन्द करके उसने कृतज्ञता के स्वर में कहा—"अनेक धन्यवाद।"

कार आगे चल पड़ी।

"इनकी गाली का बुरा न मानियेगा। इनकी आदत ही ऐसी है।" युवती मीठे स्वर में बोली।

मुरारी ने देखा युवती सुन्दर है। अवस्था २३-२४ वर्ष से अधिक नहीं जँची। इकहरा. लोचदार शरीर, गोरा रंग, लम्बी-सुती हुई नाक, बड़ी-बड़ी आम की फाँक सी आँखें! स्वर में विचित्र सम्मोहन!

"गाली सुनने का आदी हूँ। आप चिन्ता न करें।" कह कर मुरारी पीछे छूटते हुये पेड़ों. बँगलों और बिजली के खम्भों को देखने लगा।

"किस जगह उतरना है आपको ?" युवती ने एक क्षण बाद पूछा।

"कहीं भी उतार दीजिये।"

"आपका घर कहाँ से नजदीक पड़ेगा ?"

"मेरा कोई घर नहीं" गम्भीर स्वर में मुरारी ने उत्तर दिया।

युवती ने मुरारी की तरफ ग़ौर से देखा, मानो वह उसकी बात पर विश्वास न कर पा रही हो। जब उसे यक़ीन हो गया कि मुरारी झूठ नहीं बोल रहा है तब उसने धीमे और सहानुभूति पूर्ण स्वर में पूछा—"क्या करते हैं आप ?"

"कुछ नहीं।" मुरारी का संक्षिप्त उत्तर था।

"साला लोफर!" आगे बैठा हुआ युवक जोर से बड़बड़ाया।

"यू शट अप!" युवती डाँट कर बोली। "तुम हमारी बातें न सुनो! कार चलाने में ध्यान रक्खो।"

और फिर कुछ देर तक कार में खामोशी रही। उस युवती के पास बैठने में मुरारी को अत्यन्त संकोच हो रहा था। वह कोने में सिकुड़ा-सिमटा बैठा था। युवती भी अपने विचारों में खो गयी थी।

"हमारे साथ चलोगे ?" सहसा युवती पूछ बैठी।

"कहाँ ?" मुरारी चौंक पड़ा।

"लखनऊ।" कह कर युवती मुस्करायी।

युवती की मुस्कान में मुरारी को जादू-टोना सा लगा। उसने अनुभव किया कि उसके अन्तर-पट में कोई बिजली सी कौंध गयी है। वह "हाँ" कहने ही वाला था कि रमेश के शब्द कानों में गूँज गये–"औरत चलती-फिरती मौत है। नागिन है।"

"क्या सोच रहे हो ?" युवती ने मुरारी को विचार-मग्न देख कर पूछा।

"कुछ नहीं। घबरा कर मुरारी बोला।

"तब चलो हमारे साथ। हमें एक आदमी की ज़रूरत भी है। क्या नाम है तुम्हारा ? युवती 'आप' से 'तुम' पर उतर आयी।

"मुरारी।"

"मेरा नाम लिली है। ये मेरे पार्टनर हैं—बिज़नेस और लाइफ दोनों के।" कह कर लिली खिलखिला कर हँस पडी।

मुरारी यह तो समझ गया कि युवक लिली का पति है—लाइफ पार्टनर। मगर धन्धे में भी साझीदार है, इसका क्या मतलब है ? क्या धन्धा है इन लोगों का ? मुरारी ने इस विषय में ज्यादा सोचना बेकार समझा ! वह आगरे से दूर जाना चाहता था और उसे भगवान के वरदान की तरह सुयोग मिल गया था।

युवक ने बायें हाथ से एक सिगरेट दबा कर लाइटर जलाया। लाइटर के प्रकाश में उसका चेहरा देख कर मुरारी चौंक पड़ा। उसे लगा कि वह किसी दर्पण में अपना ही प्रतिबिम्ब देख रहा है।

लिली ने मुरारी के मन का भाव ताड़ लिया। मुस्करा कर बोली—"तुम दोनों की शक्ल काफी मिलती-जुलती है। अगर एक से कपड़े पहना दिये जायें तो पहचानना मुश्किल हो जाये।"

"सिली टाक्स।" युवक फिर बड़बड़ाया।

कार अब आगरा शहर के बीच से गुजर रही थी।

"आपकी दया का आभारी हूँ। मेरे बारे में बिना कुछ जाने···।"

मुरारी का बीच में ही टोक कर लिली बोली—"तुम बेघरबार हो, बेकार हो! इससे ज्यादा जानने की जरूरत नहीं है।"

"कुछ दिन पहले तक घर भी था और काम भी," कह कर मुरारी ने दीर्घ निःश्वास छोड़ा। "भाग्य की विडम्बना से आज इस दशा में हूँ। मैं आपको सब कुछ बता देना अपना धर्म समझता हूँ। फिर आप चाहे साथ ले चलें या न ले चलें।"

"फिर कभी सुनेंगे। अभी जल्दी क्या है?" कह कर लिली ने अँगड़ाई ली और पैर फैला कर अधलेटी मुद्रा में आराम करने लगी।

सामने से पुलिस की जीप-गाड़ी आ रही थी। पुलिस वाले ने कार रोकने का संकेत किया। कार रुक गयी। पुलिस-इन्सपेक्टर जीप से उतर कर कार की ओर बढ़ा। मुरारी का दिल जोरों से धड़कने लगा।

"गाड़ी कहाँ से आ रही है?" इन्सपेक्टर ने पूछा।

"दिल्ली से।" युवक ने भारी स्वर में उत्तर दिया।

इन्सपेक्टर ने अन्दर झाँक कर देखा। पिछली सीट पर एक युवक और युवती को देख कर सिर बाहर कर लिया। शिष्टाचार से बोला—"आपको पागलखाने के आस-पास कोई आदमी तो नहीं दिखाई दिया था?"

इससे पहले कि युवक उत्तर दे सके, लिली बोल पड़ी—"नहीं तो! क्यों, क्या बात है, इन्सपेक्टर साहब?"

इन्सपेक्टर पिछली खिड़की के पास आकर बोला—"एक पागल भागा है।"

"पागल!" लिली ने तिरछी दृष्टि से मुरारी की ओर देखा। वह थरथर काँप रहा था।

"जी हाँ।"

"हमें तो कोई नहीं दिखाई दिया ! क्यों, डियर ?" कह कर लिली मुरारी से सट गयी ।

मुरारी ने नकारात्मक सिर हिला दिया ।

"तकलीफ के लिए माफी चाहता हूँ ।" कहते हुए इन्सपेक्टर जीप की ओर चला गया ।

युवक ने कार स्टार्ट कर दी । काफी देर तक मुरारी और लिली मौन रहे ।

जब कार जमुना-ब्रिज पार कर गयी तो मुरारी धीमे स्वर में बोला—"मैं सब कुछ बताना चाहता था मगर आप……।"

"क्या तुम……?"

"हाँ, मैं पागलखाने से भागा हूँ, मगर पागल नहीं हूँ । यकीन कीजिये, मैं पागल नहीं हूँ ।" मुरारी का स्वर अवरुद्ध हो गया । आँखें भर आयीं । मगर वह कहता ही गया—"मैं गरीब क्लर्क था । पत्नी जेवरों और साड़ियों की माँग कर रही थी । वह चाहती थी मैं घूस लेने लगूँ । मेरा एक दोस्त था । उसके पास पैसा था । पत्नी उसकी ओर खिंचने लगी । एक दिन अपनी आँखों से दोनों को आलिंगनबद्ध देखा । पत्नी ने मेरे प्यार को धोखा दिया; मित्र ने विश्वास को छला; दोनों ने जाल रच कर मुझे पागलखाने भिजवा दिया ताकि उनका रास्ता साफ हो जाये । पागलखाने में लगा कि सचमुच पागल हो जाऊँगा । आज भाग निकला । अब बस इस शहर से दूर—बहुत दूर चला जाना चाहता हूँ । विश्वास कीजिये, इसमें जरा भी झूठ नहीं है ।

मुरारी के अन्तर की पीड़ा आँसू का रूप धर कर आँखों की राह से बहने लगी । लिली ने अपने रूमाल से उसके आँसू पोंछे । पीठ थप-थपा कर मीठे स्वर में बोली—"आदमी होकर मुसीबत से घबराते हो ? हिम्मत से काम लो । मुझे तुमसे दिली हमदर्दी है । तुम्हें हमारे साथ कोई तकलीफ़ नहीं होगी ।"

युवक ने भी मुरारी की बातें सुनी थीं। मौन रहना कठिन हो गया। तेज़ स्वर में बोला—"बला को गले क्यों बाँध रही हो, लिली? इसे यहीं उतार दो।"

"मेरे बीच में दखल न दो!" लिली तड़फ़ कर बोली। "मुरारी हमारे साथ रहेगा।"

मन-ही-मन कुढ़ कर वह चुप हो गया। अधिक विरोध करने का साहस नहीं था।

"समझ में नहीं आता किस तरह धन्यवाद दूँ।" मुरारी का हृदय लिली की सहानुभूति और करुणा पाकर कृतज्ञता से भर गया था। "आपने डूबते हुये प्राणी को सहारा दिया है!"

"डूबते को उभारना ही हमारा धन्धा है।" कह कर लिली रहस्य-पूर्ण ढंग से मुस्करायी। "अब सो जाओ।"

लिली और फैल गया। मुरारी खिड़की से सट कर बैठ गया। लिली ने आँखें बन्द कर लीं। पुतलियों के काले भ्रमर पलकों के कमल में बन्द हो गये। मुरारी की दृष्टि सूनी सड़क पर थी। आँखों में नींद का नाम तक न था।

कार पचास मील प्रति घन्टा की गति से दौड़ी जा रही थी। शीतल पवन के झकोरे मुरारी के अंग-अंग में फुरहरी पैदा कर रहे थे। वह मन-ही-मन निश्चय कर रहा था कि लखनऊ पहुँच कर किसी दिन गुप्ता के पिता राय साहब अमोलक चन्द से भेंट अवश्य करेगा।

अनेक गाँव और कस्बे पीछे छूट गये। कई सोये हुये शहरों की नीरव सड़कों की छाती को रौंदती हुई कार आगे बढ़ गयी। परगनों, तहसीलों और जिलों की कल्पित अदृश्य सीमा-रेखाओं को पार करती हुयी कार बिजली की बेटी की तरह हवा में उड़ी जा रही थी। मुरारी ने देखा, दो-तीन मील की दूरी पर किसी शहर की बत्तियाँ अँधेरे में जगनू की तरह टिमटिमा रही हैं। उसने अनुमान लगाया कि कार मैन-

पुरी के निकट पहुँच रही है ! उसके अनुमान को मील के पत्थर ने सत्य सिद्ध कर दिया।

कुछ दूरी पर सड़क के दोनों ओर सफेद चूने से पुते हुये बड़े-बड़े गोल ड्राम रक्खे दिखायी दिये। सड़क ने भयंकर मोड़ लिया था और ड्राम मोटर-चालकों को चेतावनी देने के लिए रक्खे गये थे। जब युवक ने कार की गति धीमी नहीं की तो मुरारी घबराया। तेज़ रफ्तार में गाड़ी मोड़ना खतरे से खाली नहीं था।

"स्पीड कम कर दीजिये। आगे मोड़ है।" मुरारी ने डरते-डरते धीमे स्वर में कहा।

"शट अप।" युवक तीखे स्वर में बोला और मदिरा की दुर्गन्ध फिर मुरारी की नाक में घुस गयी।

मोड़ पास आ रहा था और कार उसी वेग से आगे बढ़ रही थी। मुरारी का हृदय तीव्र गति से धडक रहा था। जीवन का मोह नंगा होकर उसकी आँखों के आगे नाच रहा था।

युवक ने कार की गति कम नहीं की। वह अपनी पटुता प्रदर्शित करना चाहता था ! उसी तीव्र वेग में मोड़ पर कार मोड़ी। संतुलन बिगड़ गया। दो ड्रामों को नीचे धकेलती हुयी कार एक पेड़ से टकरा गयी। मुरारी के मुख से एक चीख निकली। उसे लगा कि भयंकर भूडोल आ गया है। कार हवा में उछलती सी लगी। सिर खिड़की से टकराया और फिर वह अचेत हो गया।

१३

***

"मकान मिला या नहीं ?" दिलीप के आते ही माया ने पहला प्रश्न किया।

"अभी कहाँ मिला। तलाश कर रहा हूँ। दो-एक दिन में मिल जायेगा।" कह कर दिलीप कुर्सी पर बैठ गया।

रात के साढ़े आठ बजे थे। रेडियो से सुगम संगीत प्रसारित हो रहा था। कोई देवी स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद का गीत गा रही थी। माया ने उठ कर रेडियो बन्द कर दिया और फिर शिकायत भरे स्वर में बोली--"कई दिनों से तलाश कर रहे हो और अभी तक कोई मकान नहीं मिल पाया ?"

"इसका कारण है प्रतिदिन बढ़ने वाली जनसंख्या। आबादी तो बढ़ रही है पर मकानों का निर्माण नहीं हो रहा है। दिलीप सिगरेट सुलगा कर विवेचना करता हुआ बोला। "भूख, गरीबी और बेकारी का भी यही कारण है। इसीलिए फ़ेमिली-प्लानिंग पर ज़ोर दिया जा रहा है।"

"तुम तो लेक्चर झाड़ने लगे।" माया चिढ़ कर बोली। "मैं कहे देती हूँ कि मकान दो-एक दिन में मिल जाना चाहिए।"

"अच्छा, बाबा !" दिलीप हँस कर बोला। "अब तो हँस दो ज़रा।"

माया के मुक्त-हास्य ने वातावरण में ताज़गी भर दी।

"आज अपने हाथ से गरमा-गरम पराठे खिला दो। फिर सिनेमा चलेंगे।"

सिनेमा का प्रस्ताव सुन कर माया खिल पड़ी। हर्षित स्वर में पूछा—

"कोई नया खेल लगा है ?"

"हाँ !" दिलीप ने सिगरेट का धुँआ उसके मुँह पर छोड़ कर कहा।

"बहुत शरारती हो गये हो।" कहकर माया पराठ सेंकने की तैयारी करने लगी।

भोजन आदि से निवृत होकर दोनों 'रीगल-टाकीज़ गये'। दो-तीन दिन पूर्व ही 'अन्जान' लगा था। माया बैजन्तीमाला के नृत्य, प्रदीप-कुमार का अभिनय तथा जानीवाकर का मसखरापन देखकर मुग्ध हो गयी।

"चित्र कैसा लगा ?" लौटते समय दिलीप ने पूछा।

"बहुत प्यारा।"

"पिक्चर देखते-देखते मेरे दिमाग़ में एक बात स्ट्राइक हुई। कहो तो कह दूँ।" दिलीप बायाँ हाथ माया के कन्धे पर रख कर बोला।

"क्या......?"

"तुम बहुत अच्छी फिल्म-अभिनेत्री बन सकती हो।"

माया पुलकित हो उठी। फिर भी कृत्रिम गम्भीरता से बोली—"तुम्हें तो हर वक्त मज़ाक ही सूझता है।"

'मैं सच कह रहा हूँ।" दिलीप उसे अपनी ओर खींच कर बोला। "दो साल पहले बम्बई गया था। नरगिस, मधुबाला, निम्मी, सुरैया, मीनाकुमारी, बैजन्तीमाला सभी को देखा है। भगवान की सौगन्ध सब तुम्हारे पैर की धोवन हैं, धोवन।"

"यह तुम्हारी आँखों का फितूर है।" कह कर माया ने अपना सिर दिलीप के कन्धों पर टिका दिया।

माया को घर पहुँचा कर जब दिलीप जाने लगा तो माया ने रुकने की ज़िद की। उसका हाथ थाम कर बोली—"आज न जाने दूँगी साजन।"

"बस, इसी अदा पर जान देता हूँ।" कहकर दिलीप ने उसे अपनी भुजाओं में भींच लिया।

"आज यहीं रुक जाओ।" माया ने अनुरोध किया।

"मगर मोहल्ले वाले...।"

"मुझे किसी की भी परवाह नहीं है।" माया के स्वर में दृढ़ता थी।

माया की धोती को दोहरा करके दिलीप ने लुँगी की तरह पहन लिया। पैन्ट-बुशर्ट उतार कर टाँग दी। सिगरेट सुलगा कर आराम से पलँग पर लेट गया। माया वस्त्र बदल कर श्रृंगार करने की मेज के सामने खड़ी होकर अपने बाल ठीक करने लगी। वह अपने रूप को निरीक्षक की दृष्टि से देख रही थी और मन-ही-मन फिल्म-अभिनेत्रियों से अपनी तुलना कर रही थी। दिलीप के शब्द उसके कानों में गूँज रहे थे! तो क्या सचमुच वह मधुबाला, नरगिस, सुरैया, मीनाकुमारी और वैजन्तीमाला से अधिक सुन्दर है? अवश्य है! दिलीप झूठ क्यों बोलेगा? फिल्म-अभिनेत्रियाँ तो पर्दे पर ही सुन्दर दिखाई देती हैं। उनमें वास्तविक सौंदर्य कहाँ? फिल्म में तो काली-कलूटी सूरतें भी गोरी दिखाई देती हैं!

और चेहरे पर क्रीम लगाते समय उसका हृदय अपने रूप के प्रति गर्व से भर गया! वह सुन्दर है, बहुत सुन्दर है! तभी तो विश्वविद्यालय के लड़के उस पर लट्टू थे; तभी तो दिलीप उसके पीछे पागल है! हाँ...मुरारी...! ओह, बीच में मुरारी कहाँ से आ टपका? वह जानवर था, जानवर! उसे सौन्दर्य का क्या बोध? हुँ...... पागल...!

माया बत्ती बुझा कर लेटने का विचार कर ही रही थी कि किसी ने बाहर से द्वार खटखटाया। माया ने चौंककर दिलीप की ओर देखा। उसकी दृष्टि में भय था, आश्चर्य था, घबराहट थी।

"कौन है ?" दिलीप ने ऊँचे स्वर में पूछा और शीघ्रता से उठकर पैंट-बुशशर्ट पहनने लगा ।

"दरवाजा खोलिये !" बाहर से किसी पुरुष का भारी स्वर आया ।

दिलीप का संकेत पाकर माया पलँग पर लेट गयी । दिलीप ने उसे चादर उढ़ा दी । फिर द्वार खोलन चला गया ।

बाहर दो सिपाही खड़े थे । द्वार खुलते ही वे अन्दर घुस आये ।

"क्या बात है ?" दिलीप ने आन्तरिक भय को छिपाकर पूछा ।

"यह मुरारी बाबू का घर है न ?" एक सिपाही ने पूछा ।

"जी हाँ !"

"आप······?"

"मैं उनका मित्र हूँ । सरकारी अस्पताल में डाक्टर हूँ । मुरारी बाबू की पत्नी अस्वस्थ हैं इसीलिए···।"

"ठीक है । ठीक है ।" दूसरा सिपाही बोला ।

दिलीप की समझ में सिपाहियों के आने का कारण नहीं आ रहा था । उसने हिम्मत करके पूछा—"बात क्या है ? आप इस वक्त···?"

"मुरारी बाबू पागलखाने से भाग गये हैं ।" पहले सिपाही ने कहा ।

"भाग गये हैं ?" दिलीप आश्चर्य से बोला ।

"जी हाँ ! हम उन्ही की तलाश कर रहे हैं। यहाँ तो नहीं आये ?"

"नहीं !" दिलीप ने उत्तर दिया । "आप चाहें तो कमरा भी देख सकते हैं ।"

दोनों सिपाही दिलीप के साथ अन्दर गये । माया उसी तरह लेटी हुयी थी । दिलीप ने उससे कहा—'मुरारी पागलखाने से भाग गया है ।"

माया दिलीप और सिपाहियों की बातें पहले ही सुन चुकी थी । कराह कर उठती हुयी बोली—"भाग गये हैं ? हे भगवान, क्या होने वाला है ? अगर कहीं उन्होंने कुछ कर लिया तो······।"

और फिर माया सिसकने लगी । दिलीप ने मन में कहा कि माया

वास्तव में कुशल अभिनेत्री है।

"आप घबराइये मत हम उन्हें बहुत जल्द खोज लेंगे।" पहला सिपाही सांत्वना देते हुये बोला। "अगर यहाँ आयें तो फौरन पुलिस-चौकी में खबर कर दीजियेगा।"

सिपाही चले गये। दिलीप ने द्वार अन्दर से बन्द कर लिया।

"अब क्या होगा ?" माया पलँग से उठ कर घबराये स्वर में बोली। उसका हृदय भय से बैठा जा रहा था।

"होगा क्या ?" दिलीप बुश-शर्ट उतारता हुआ बोला।

"अगर यहाँ आ गया तो! वह ज़रूर आयेगा। मुझे ज़िन्दा नहीं छोड़ेगा। बदला लेने के लिए ही भागा है।" कहती हुयी भीत माया दिलीप की छाती से सट गयी।

"डरती क्यों हो ? मैं जो हूं।" दिलीप ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुये कहा। "अव्वल तो वह यहाँ आयेगा ही नहीं।"

"तुम्हें कैसे मालूम ?"

"मेरा दिल कह रहा है।"

दिलीप माया को हिम्मत बँधा रहा था मगर डर स्वयं भी रहा था। अगर मुरारी आ गया तो क्या होगा ?

पूरी रात दुश्चिन्ताओं में कटी। कोई भी न सो सका। ज़रा सी भी आहट होने पर माया दिलीप की छाती से सट जाती।

सुबह की रोशनी ने भय को कुछ कम कर दिया। आठ बजे जब दिलीप जाने लगा तब माया बोली—"मुझे अकेले डर लगेगा!"

"पागल न बनो।" दिलीप ने समझाया। "शहर भर की पुलिस उसकी तलाश में होगी। शायद रात में ही पकड़ा गया हो। मैं अभी फोन करके पता लगाऊँगा।"

"शाम को ज़रूर आजाना! रात में······।"

"आजाऊँगा।" कह कर दिलीप चला गया।

माया दिन भर परेशान और भयभीत रही। सात बजे जब दिलीप आया तब उसकी जान में जान आयी। दिलीप ने बताया कि मुरारी का अभी तक कोई पता नहीं लगा है। उस रात को दिलीप तो सो गया परन्तु माया को नींद न आयी।

सुबह गली में अखबार वाला चीख कर कह रहा था—

"मैनपुरी के पास कार-दुर्घटना! पागलखाने से भागा हुआ मुरारी मौत के मुँह में !!"

दिलीप और माया आवाज़ सुन कर चौंक पड़े। दिलीप शीघ्रता से बाहर गया और समाचार-पत्र खरीद लाया।

"क्या लिखा है ?" माया ने अधीर स्वर में पूछा।

दिलीप पढ़ने लगा—"परसों रात को मैनपुरी के निकट एक कार दुर्घटना होगयी। कार एक पेड़ से टकरा कर भयकर खड्ड में गिर गयी। कार में दो पुरुष और एक स्त्री थी। एक पुरुष की मृत्यु हो गयी। शेष दो के साधारण चोटें आयी हैं। घायल स्त्री-पुरुष ने पुलिस को बताया कि मृत व्यक्ति उन्हें आगरे के मानसिक चिकित्सालय के पास मिला था और उसने अपना नाम मुरारी बताया था। मुरारी का चेहरा बुरी तरह कुचल गया था। चिकित्सालय के अधिकारियों का अनुभव है कि मृत व्यक्ति पागलखाने से भागा हुआ मुरारी ही है।

पूरा समाचार पढ़ कर दिलीप ने समाचार-पत्र एक ओर रख दिया। माया की विचित्र दशा थी। वह निर्निमेष दृष्टि से समाचार-पत्र की ओर देख रही थी। उसकी आँखों में न तो आँसू थे और न अधरों पर मुस्कान। पाषाण की प्रतिमा की तरह निस्पन्द और मूक बैठी थी।

"भगवान की यही इच्छा थी।" निःश्वास छोड़ कर दिलीप बोला। "चलो, पागलखाने चल कर पूरा पता लगायें।"

तभी पड़ोस के दो-चार आदमी आ गये। कुछ औरतें भी आ गयीं। समाचार पढ़ने के बाद सहानुभूति प्रदर्शित करने के उद्देश्य से आये हुये

लोगों को देख कर भी माया उसी प्रकार बैठी रही।

एक बूढ़ी स्त्री माया के पास बैठ कर व्यवहारिक ढंग से बोली—

"बहू, हिम्मत से काम लो। उठो, चूड़ियाँ उतार कर सिंदूर पोंछ डालो।"

और तब माया फूट-फूट कर रो पड़ी।

दिलीप की इच्छा हुई कि बूढ़ी स्त्री का गला घोंट दे।

लेकिन माया के वैधव्य के सत्य को कैसे झुठलाया जा सकता था ? माया का सोहाग तब तक था जब तक मुरारी था। मुरारी नहीं रहा तो माँग के सिन्दूर और हाथों की चूड़ियों को भी विदा लेनी पड़ेगी।

और माया के गोरे हाथों की लाल चूडियाँ तोड़ दी गयीं, उसकी माँग का सिन्दूर पोंछ दिया गया। माया विधवा हो गयी···विधवा।

"बेचारी भरी जवानी में विधवा हो गयी।" एक स्त्री धीमे स्वर में फुसफुसायी।

"भगवान की माया है, बहन ! आदमी पहले पागल हुआ और फिर···।" दूसरी स्त्री बोली।

पड़ोसी लोग अपना फर्ज पूरा करके चले गये।

कुछ देर बाद ही मानसिक चिकित्सालय से भी मुरारी की मृत्यु का समाचार आ गया। अखबार की खबर की पुष्टि हो गयी।

दिलीप ने अस्पताल से छुट्टी लेली।

दूसरे दिन अलीगढ़ से माया के चाचा आये। माया उनसे लिपट कर खूब रोयी। चाचा की आँखों से भी अश्रु-धारा बह चली।

"चलो बेटी, मेरे साथ अलीगढ़ चलो।" कुछ देर बाद चाचा ने संयत होकर कहा।

"अलीगढ किस मुँह से चलूँ ?" सिसक कर माया बोली। "यहीं जीवन के बाकी दिन काट दूँगी।"

"मगर यहाँ······।"

"आप मेरी फिकर न करें। किसी स्कूल में नौकरी करके पेट भरने के लिए कमा ही लूँगी।"

चाचा ने लाख चेष्टा की कि माया अलीगढ़ चली चले पर वह अपनी ज़िद पर अड़ी रही! हताश होकर चाचा तीसरे दिन लौट गये।

चौथे दिन मोहल्ले के लोगों ने देखा कि माया घर छोड़ कर जा रही है। हास्पिटल-रोड पर एक अच्छा मकान मिल गया था।

माया को मुरारी की मृत्यु का इतना दुख नहीं था जितना विधवा होने का। बात अजीब सी लगती है पर वास्तविकता यही थी। मुरारी से उसे प्रेम नहीं था, परन्तु फिर भी वह उसकी पत्नी थी और सधवा होने के नाते वह श्रृंगार भी कर सकती थी, अच्छा खा-पहन भी सकती थी, घूम-फिर सकती थी! हिन्दू समाज की विधवा को यह अधिकार कहाँ? वह न तो श्रृंगार कर सकती है और न हँस-बोल सकती है! माया के लिए विधवा का जीवन बिताना असम्भव था। इसीलिए उसने मकान बदला था। नये मकान में वह कुमारी-माया के नाम से रहने लगी। अब श्रृंगार की भी स्वतन्त्रता थी और घूमने-फिरने की भी। कोई उँगली उठाने वाला न था। दिलीप भी पूरी आज़ादी से नये मकान में जा सकता था।

जब मुरारी पागलखाने में था तब माया की अन्तरात्मा कभी-कभी उसे धिक्कारने लगती थी। सहसा हँसते-हँसते वह उदास हो जाया करती थी क्योंकि अतीत की स्मृतियाँ तन-मन को झकझोरने लगती थी। अब उसकी अन्तरात्मा न धिक्कार सकती थी और न हँसते-हँसते उदास होने का ही कारण था। नागिन की तरह उसने पुरानी केंचुल उतार फेंकी थी।

माया खुल कर खेलने लगी। वह दिलीप पर हावी होकर उसे अपने चंगुल में रखना चाहती थी। अक्सर अस्पताल पहुँच जाती। जब कभी दिलीप को किसी नर्स से हस कर बात करते देख लेती तो ईर्ष्या से जल

उठती और दिलीप को भला-बुरा कहती।

माया के इस रूप से दिलीप डरने लगा। पुरुष होकर नारी का नियन्त्रण स्वीकार करना उसके बस की बात नहीं थी। व्यक्तिगत मामलों में माया का दखल देना खलने लगा। वह उन पुरुषों में था जो नारी से बँध कर रहना पसन्द नहीं करते। माया उसे बाँध कर रखना चाहती थी। वह इसे कभी भी सहन करने को तैयार नहीं था। धीरे-धीरे वह माया से खिचने लगा।

दिलीप का यह खिचाव माया से छिपा न रहा। यद्यपि उसके ऊपरी व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आया था तदपि माया यह अनुभव करती थी कि वह उससे दूर खिचने की चेष्टा करता है। भावी आशंका से वह काँप उठी।

एक दिन दिलीप जब आया तो वह मुस्कान के तीर छोड़ती हुई बोली—"क्या जान से मार डालने का इरादा है?"

दिलीप की समझ में कुछ नहीं आया। मुस्करा कर बोला—"मर तो मैं रहा हूँ।"

"मज़ाक छोड़ो! बताओ, मेरे बारे में क्या सोचा है?" सहसा गम्भीर होकर माया ने पूछा।

"दिन-रात तुम्हारे बारे में ही सोचा करता हूँ।" हँसी में बात टालने की कोशिश करता हुआ दिलीप बोला।

"जानते हो, अब मैं कुमारी माया हूँ?"

"जानता हूँ, कुमारी जी!"

"और कुमारी माँ समाज में जिस हेय दृष्टि से देखी जाती है, यह भी जानते हो?"

"क्या मतलब है?" चौंक पड़ा दिलीप।

"कैसे डाक्टर हो?" मादक मुस्कान छोड़ कर माया बोली। "मैं तुम्हारे बच्चे की होने वाली माँ हूँ।"

माया ने तो अपनी बात सीधे-साधे ढंग से कह दी, मगर दिलीप पर वज्रपात हो गया। ज़मीन घूमती सी लगी। आँखें फाड़-फाड़ कर माया की तरफ देखने लगा।

"हमें जल्द से जल्द शादी कर लेनी चाहिए।" माया दिलीप का हाथ थाम कर बोली।

"शादी···! हाँ, हाँ···!" दिलीप का स्वर काँप रहा था।" "कर लेंगे। अभी जल्दी क्या है !"

"जल्दी क्यों नहीं है ? क्या बदनामी का ढोल पिटवाना चाहते हो ?" माया तीखे स्वर में बोली। "इसी हफ्ते के अन्दर शादी हो जानी चाहिए।"

"ठीक है, ठीक है ! मैं पिता जी से भी पूछ लूँगा।" दिलीप ने आश्वासन दिया।

माया आश्वस्त होकर चाय बनाने लगी।

दिलीप ने माथे का पसीना पोंछा। वह शादी के लिए कभी भी तैयार न था। उसका उद्देश्य माया के शरीर से खेलना था। काफी खेल चुका। अब उसे दूध की मक्खी की तरह जीवन से निकाल कर फेंकना होगा !

माया जब चाय लेकर आयी तब दिलीप ने उसके चेहरे को ध्यान से देखा। क्या है इस चेहरे में ? कुछ भी नहीं। बेकार ही इसके लिए इतना पैसा फूँका ! दोस्त के साथ विश्वासघात किया ! जो माया पहले अप्सरा लगती थी वह कुरूप लगने लगी। प्राप्ति से पहले कुरूप वस्तु भी सुन्दर लगती है परन्तु उपलब्धि के बाद सुन्दर वस्तु भी बुरी हो जाती है।

चाय पीकर दिलीप चला गया। फिर कई दिन तक गायब रहा। माया डर गयी। एक-दो दिन और राह देखी। दिलीप नहीं आया। माया सिर से पाँव तक काँप गयी। घबरायी हुयी अस्पताल पहुँची।

"डाक्टर दिलीप कहाँ हैं ?" उसने एक नर्स से पूछा।

नर्स ने उसे सिर से पैर तक देखा और फिर अजीब से स्वर में बोली--"किसी और डाक्टर से काम नहीं चलेगा ?"

"नहीं, मुझे उन्हीं से काम है।"

"डाक्टर दिलीप नहीं मिल सकते।"

"क्यों, क्या जरूरी काम लगे में हैं ?" माया की व्यग्रता बढ़ती जा रही थी।

"उनका तबादला हो गया है।" कह कर नर्स ने आगे बढ़ने का उपक्रम किया।

माया की आँखों के सामने अंधेरा छा गया। नर्स का हाथ थाम कर पूछा—"तबादला हो गया है ? कब···कहाँ ?"

"मेरठ ! उन्होंने खद कोशिश करके ट्रान्सफर करवाया था। शायद आगरे से जी ऊब गया होगा।" कह कर नर्स रहस्यमय ढंग से मुस्करायी।

"ओह···!" कह कर माया ने सिर थाम लिया। उसे लगा, जैसे चक्कर आ रहा है। किसी प्रकार धीरे-धीरे घर की ओर चल दी।

"शायद डाक्टर ने इसे भी धोखा दिया है ! बेचारी···।" नर्स सहानुभूति के स्वर में बुदबुदायी और खट्-खट् करती हुई आगे बढ़ गयी।

माया किसी प्रकार गिरती-पड़ती घर पहुँची।

१४

***

माया पलँग पर पड़ी सिसक रही थी। उसे अपने चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखाई देता था। कहीं प्रकाश की कोई किरण नहीं। उसे लग रहा था कि अँधेरी रात में वह जहाज़ के डेक से गहरे सागर के शीतल जल में गिर पड़ी है; जहाज दूर—बहुत दूर–निकल गया है; वह अकेली है—एक दम अकेली; उसका दम घुट रहा है; लहरों से लड़ने की शक्ति नहीं, साहस नहीं, सामर्थ्य नहीं; डूबना निश्चित है। किसी मेले में संगी-साथियों से बिछड़ जाने वाली देहाती नव-वधू की तरह वह कातर हो रही थी। भविष्य की जो सुनहरी झाँकियाँ वह नित्य देखा करती थी उन पर अन्धकार और निराशा का गहरा पर्दा पड़ गया था। पीड़ा के हाथ फिर अतीत के चित्रों का धुँधलापन मिटा रहे थे।

माया की आँखी के सामने मुरारी का चित्र घूम गया। वह सोचने लगी—मुरारी के दिल में मेरे लिए सच्चा प्यार था। मैंने उसके प्यार का मूल्य न जाना; उसे धोखा दिया, उसके साथ विश्वासघात किया! साड़ियों और ज़ेवरों के लोभ ने मुझे अन्धा कर दिया था। मैं वेश्या हूँ—घृणा के योग्य हूं। मुरारी ने मेरे मुँह पर थूक कर ठीक ही किया था। सारी दुनिया को मेरे मुँह पर थूकना चाहिए! मुरारी की अन्तरात्मा मुझे कभी भी क्षमा नहीं कर सकती। मैं क्षम्य हूँ भी नहीं! मुरारी······मेरे मुरारी!

और मुरारी की याद में पागल होकर माया रो पड़ी।

आँसुओं की धुँधली आँखों के सामने फिर दिलीप का चेहरा आ

गया। माया ने सोचा—दिलीप शरीर के माँस का लोभी भूखा भेड़िया था। उसने मुझे कभी भी प्यार नहीं किया। वह मेरे शरीर से खेलना चाहता था। उसने मेरी दुर्बलता से लाभ उठाया। अन्धी मैं थी जो मुरारी जैसे देवता को ठुकरा कर दिलीप जैसे पिशाच को अपना तन-मन सौंप बैठी। मगर पहले कौन जानता था कि दिलीप ऐसा धोखा देगा? उसकी प्यार भरी बातें, मन को पागल कर देने वाली मधुर मुस्कान, अन्तर को बेध देने वाली आँखें···! ओह, सब छल था—धोखा था—प्रवन्चना थी! दिलीप मुझे छोड़ कर चला गया। वह शादी नहीं करना चाहता था। इसमें भी दोष मेरा ही है। मैं उससे झूठ क्यों बोली? गर्भवती न होते हुये भी उसके बच्चे की होने वाली माँ बनने का ढोंग क्यों किया? मैं उसे शादी के बन्धन में बाँधना चाहती थी, इसी-लिए न? मगर मुझे अपने पाप का दण्ड मिल गया। आज मैं असहाय हूँ···! कहीं कोई सहारा देने वाला नहीं!

चाचा······?

हाँ, चाचा अलीगढ चलने के लिए कह रहे थे। मगर तब तो अपनी ज़िद पर अड़ी रही। अब···अब कौन सा मुँह लेकर जाऊँ? नहीं, मैं अलीगढ़ नहीं जाऊँगी—नहीं जाऊँगी। मैं यहीं रहूँगी। मेज़, कुर्सी, रेडियो, ज़ेवर बेच कर गुज़ारा करूँगी। छोटी से छोटी नौकरी कर लूँगी मगर किसी के आगे हाथ नहीं फैलाऊँगी।

इस निश्चय से कुछ साहस बँधा। हाथ-मुँह धोकर संयत हुयी।

माया ने अपने निश्चय को कार्य-रूप देना शुरू कर दिया। वह अधिकांश समय घर में ही बिताती। विलास की सभी वस्तुयें बेच दीं। रूखा-सूखा खाकर गुजर करने लगी।

एक दिन सहसा ध्यान आया कि मुरारी जो पंखा किश्तों पर लाया था उसका पैसा दूकानदार के पास नहीं पहुँचा है। माया ने दिलीप द्वारा लायी हुयी चीज़ों को ही बेचा था। पंखा अब भी रक्खा था।

सोचा, पंखा वापिस दे आऊँ। अभी तो ज़रूरत है नहीं। गर्मियों में देखा जायेगा। मगर दूकानदार का नाम-पता ज्ञात न था। तभी याद आया कि मुरारी पंखे के साथ एक फार्म भी लाया था। काफी खोज के बाद फार्म पुराने ट्रंक में मिल गया। माया रिक्शे पर पंखा रख कर दूकान की ओर चल दी।

दूकान पर पहुँच कर उसने अपना परिचय दिया और बताया कि वह पंखा वापस करने आयी है। दूकानदार ने उसे आदर से बिठाया फिर हार्दिक सहानुभूति के स्वर में बोला—"अखबार में समाचार पढ़ने के बाद मैं अपनी बेटी कामिनी के साथ आपके पास आना चाहता था। मगर घर का ठीक पता मालूम न होने से······।"

"कामिनी······।"

"हाँ! मुरारी बाबू उसे पढ़ाते थे। जिस दिन उनकी मृत्यु का समाचार पढ़ा उस दिन खाना-पीना भी भूल गयी। दिन भर रोती रही।"

न जाने क्यों माया की आँखें सजल हो गयीं।

"मुरारी बाबू को हम घर का आदमी समझते थे। कितने नेक और ईमानदार थे!" कामिनी के पिता ने भारी स्वर में कहा। "माया देवी, आप पंखा ले जाइये! जब सुविधा हो तब धीरे-धीरे रुपये दे देना।"

"लेकिन···लेकिन मुझे ज़रूरत नहीं है।"

"अगर आपने पंखा लौटाया तो मेरे दिल को तकलीफ होगी।"

माया निरुत्तर हो गयी। रुद्ध कण्ठ से बोली—"आपका उपकार याद रखूँगी।"

"और देखो, अगर कोई कष्ट हो तो बिना किसी हिचकिचाहट के चली आना। समझीं?"

"कामिनी कौन सी कक्षा में पढ़ती है?" धीमे स्वर में माया ने पूछा।

"दसवें में।"

"मैं बी० ए० पास हूँ। अगर कोई दूसरा मास्टर न लगाया हो तो मैं पढ़ा दिया करूँ!" माया संकुचित स्वर में बोली।

"हाँ, हाँ, ज़रूर।" कामिनी के पिता ने प्रसन्न होकर कहा। "अभी दूसरा मास्टर नहीं लगाया है।"

माया दूसरे दिन से कामिनी को पढ़ाने लगी।

दस-बारह दिन बाद ही माया के सामने दिलीप की नीचता का दूसरा चित्र भी आ गया। मकान का किराया देने के लिए चालीस रुपयों की ज़रूरत थी। घर में रुपये थे नहीं। माया ने सोचा, नेकलेस बेच दूँ। इसी विचार से वह सर्राफ की दूकान पर गयी। उसे नेकलेस दिखाया। माया का अनुमान था कि दो-तीन सौ रुपये मिल जायेंगे। मगर जब सर्राफ ने बताया कि नेकलेस अमेरिकन गोल्ड का है और उसकी कीमत दो-चार सौ रुपये से ज्यादा नहीं है तब उसे चक्कर सा आ गया। दिलीप उसे नकली ज़ेवर देगा इसकी उसने स्वप्न में भी आशा न की थी। घर जाकर सभी ज़ेवर ले आयी। सर्राफ ने परखने के बाद सभी को नकली सोने का बताया। मोतियों की माला भी नकली थी। और इन्हीं झूठे मोतियों के मूल्य में उसने प्रथम बार अपने सतीत्व का अमूल्य मोती बेचा था।

घर पहुँच कर माया ने सभी आभूषण तोड़ कर फेंक दिये। मोती आँगन में गेहूँ के दानों की तरह बिखर गये।

माया जानती थी कि कामिनी के यहाँ से बीस-पच्चीस रुपये मिल जायेंगे। मगर इतने से होगा क्या? मकान का किराया ही चालीस रुपया है! उसे कम से कम सौ रुपये मासिक तो कमाना ही चाहिए।

माया के सामने यह आर्थिक समस्या विकराल रूप से खड़ी थी। उसने कई दफ्तरों में चेष्टा की पर नौकरी न मिली। कई स्कूलों में गयी परन्तु हर जगह यही उत्तर मिला कि अगली जुलाई में विचार किया जा सकता है। जुलाई आने में छह महीने का समय था। तब तक

गुजर कैसे होगी ? मकान का किराया कैसे देगी ? क्या खायेगी ?

और तभी एक दिन उसने 'अमर उजाला' में एक विज्ञापन पढ़ा—

"फ़िल्म प्रोड्यूसर नये चेहरों की तलाश में !"

आगरे की नवयुवतियों के लिए सुनहरा मौका !!

बम्बई की एक प्रसिद्ध कम्पनी के प्रतिनिधि अपनी नई फिल्म के लिए नये चेहरों की तलाश में आगरा आये हुये हैं । नायिका के अतिरिक्त अन्य कई छोटे-छोटे रोलों के लिए भी युवतियों की तलाश है । अच्छा वेतन, आशा पूर्ण भविष्य ! इच्छुक नवयुवतियाँ 'रामा होटल' में भेंट करें ।"

विज्ञापन पढ़ने के बाद माया सोच में पड़ गयी ! उसे याद आया कि एक दिन दिलीप ने कहा था कि वह अच्छी अभिनेत्री बन सकती है और बम्बई की प्रसिद्ध तारिकायें उसके सामने कुछ नहीं हैं । माया ने कालेज-जीवन में कई नाटकों में अभिनय भी किया था । क्यों न भाग्य आज़माया जाये ? अगर मौका मिल गया तो शीघ्र ही देश भर में उसके नाम की धूम होगी । अच्छे बँगले मे रहेगी, कार होगी, नौकर-चाकर होंगे !

और उसी दिन शाम को वह बन-सँवर कर 'रामा होटल' में पहुँच गयी ।

फिल्म कम्पनी के दोनों व्यक्तियों ने उसे सिर से पाँव तक उसी दृष्टि से देखा जिस दष्टि से कसाई पशु को खरीदते समय उसकी जाँच करता है । माया उनकी दृष्टि से सिहर गयी पर चुपचाप खड़ी रही ।

"बैठ जाइये ।" एक व्यक्ति ने कुर्सी की ओर संकेत किया ।

माया बैठ गयी ।

"आपका क्या ख्याल है, मिस्टर शर्मा ?" भारी शरीर के नाटे से व्यक्ति ने इकहरे बदन वाले व्यक्ति से पूछा ।

"डील-डौल तो ठीक है । चेहरा-मोहरा भी साफ है । मगर···।"

मिस्टर शर्मा ने झिझक कर कहा।

माया की याचना भरी दृष्टि मिस्टर शर्मा की दृष्टि से मिल गयी।

"मेरा भी यही ख्याल है कि सुबह वाली लड़की हीरोइन के लिए ज्यादा ठीक रहेगी।"

"यही मैं भी सोच रहा था, मिस्टर कापड़िया।" मिस्टर शर्मा ने कहा। फिर माया की ओर मुड़ कर पूछा—"आपने कभी एक्टिंग की है?"

"जी हाँ! कालेज में...।"

"ठीक है, ठीक है!" मिस्टर कापड़िया ने दाँत निकाल कर कहा। 'आप नाचना-गाना जानती हैं?"

"जी, अभी तो नहीं। मगर सीख लूँगी।"

"आपके घर वालों को तो कोई आब्जेक्शन नहीं होगा?" मिस्टर शर्मा ने सिगरेट सुलगा कर पूछा।

"जी, मैं अकेली हूँ, एक दम अकेली।"

मिस्टर शर्मा और मिस्टर कापड़िया की आँखें मिल गयीं।

"ठीक है! ठीक है!! यह डायलाग पढ़ो।" कह कर मिस्टर कापड़िया ने एक कागज का टुकड़ा माया की ओर बढ़ा दिया।

माया ने कागज़ का टुकड़ा ले लिया। उसमें लिखा था—"जब से तुम्हें देखा है, दिल बेकरार है। मैं तुम्हारे बिना ज़िन्दा नहीं रह सकती। मुझे ले चलो, कहीं भी ले चलो। मेरा जिस्म तुम्हारी बाहों में भिचने के लिए मचल रहा है, होंठ तुम्हारे गर्म होंठों का इन्तज़ार कर रहे हैं।"

माया ने मन-ही-मन संवाद पढ कर कातर दृष्टि से दोनों की ओर देखा.

"शरमाने की क्या बात है?" मिस्टर शर्मा अपनी कुर्सी से उठ कर माया के पास खड़े हो गये। "यह संवाद हीरोइन के हैं। अगर ठीक से अदा कर दिये तो चाँदी ही चाँदी है।"

माया ने चाहा कि लज्जा त्याग कर, अपने अस्तित्व को भुला कर

संवाद भावपूर्ण ढँग से बोल दे। कोशिश भी की, मगर बीच में ही गला रुँध गया। स्वर काँप गया।

'अनफिट।" मिस्टर कापड़िया ने निर्णय दे दिया।

माया की आँखों में आँसू आ गये।

"गिव हर वन मोर चान्स।" मिस्टर शर्मा ने कहा। फिर माया की पीठ पर हाथ रख कर बोले—"यह आर्ट का काम है! इसमें शर्म और झिझक नहीं होनी चाहिए। मान लो मैं हीरो हूँ, आप हीरोइन। अब अपने स्वर में जान डाल कर संवाद बोलिये। खड़ी होकर।"

माया कुर्सी छोड़ कर खड़ी हो गयी।

"देखिये, पहले मैं बोलता हूँ। बोलने के साथ ही एक्टिंग भी होनी चाहिए। ध्यान से देखिये।"

और फिर मिस्टर शर्मा संवाद बोलने लगे। एक्टिंग के नाम पर उन्होंने माया को अपनी भुजाओं में कस लिया; उसके होंठों पर अपने होंठ रख दिये।

माया ने आलिंगन से मुक्त होने की कोशिश की।

"यह आर्ट का काम है, आर्ट का।" माया को छोड़ कर मिस्टर शर्मा ने कहा। "बच्चों का खेल नहीं है। हाँ, अब संवाद बोलिये।"

इस बार माया उत्तीर्ण हो गयी।

"थोड़ी सी ट्रेनिंग के बाद मीनाकुमारी को मात कर देंगी।" ताली बजा कर मिस्टर कापड़िया ने कहा। "अप्रूव्ड! आपकी क्या राय है, मिस्टर शर्मा?"

"ठीक है। लैट अस टेक ए रिस्क। हाँ, अब यह देखना है कि स्क्रीन पर फेस कैसा आयेगा।" फिर मिस्टर शर्मा ने माया से कहा—"आपके फोटो डिफरेन्ट पोजों में लेने पड़ेंगे।"

माया बुत की तरह खड़ी रही।

मिस्टर शर्मा ने कैमरा ठीक किया। फ्लैश-बल्ब लगाया। भिन्न-

भिन्न पोज़ों में कई चित्र लिए। हर पोज़ में उसके उरोजों और नितम्बों को प्रधानता दी गयी।

"अब देखना है कि इनका चेहरा हीरो के चेहरे के कन्ट्रास्ट में कैसा लगेगा।" मिस्टर कापड़िया ने मिस्टर शर्मा से कैमरा लेकर कहा। 'आप हीरो का रोल अदा कीजिये।"

मिस्टर शर्मा ने फिर वही संवाद बोला, फिर माया को अपनी भुजाओं में कस लिया और फिर उसके होंठों पर अपने तपते हुये होंठ रख दिये। मिस्टर कापड़िया ने उसी पोज़ का चित्र ले लिया।

इसके बाद मिस्टर शर्मा ने माया को बधाई दी। कमरे में ही चाय मँगायी गयी।

जलपान के बाद मिस्टर शर्मा ने कहा—'माया देवी, सेन्ट पर सेन्ट आपका काम हो ही गया है। आप कल इसी समय आकर अपने चित्र भी देख लें।"

"धन्यवाद।" माया ने उठ कर कहा। 'अगर एतराज़ न हो तो···।"

"कहिये, क्या बात है?" मिस्टर कापड़िया ने पूछा।

"मुझे कुछ एडवान्स दे दीजिये! पैसों की सख्त ज़रूरत है।" माया ने दृष्टि नीची करके धीमे स्वर में कहा।

मिस्टर शर्मा का संकेत पाकर मिस्टर कापड़िया ने पचास रुपये दे दिये। माया रुपये लेकर बाहर चली गयी।

मिस्टर शर्मा और मिस्टर कापड़िया ने खुशी से हाथ मिलाये।

माया रात भर अजीब-अजीब सपने देखती रही। कभी वह अपने को रानी के रूप में देखती, कभी बहुत बड़ी अभिनेत्री के रूप में! दूसरे दिन वह कामिनी को पढ़ाने भी नहीं गयी। दिन भर बहुत व्याकुलता और उत्सुकता से शाम की प्रतीक्षा करती रही।

शाम को जब वह होटल पहुँची तो दोनों को प्रतीक्षा करते पाया। मेज़ पर कल के चित्र पड़े थे। माया ने एक-एक चित्र को उठा कर

देखा। अपने पोज़ों पर स्वयं ही मुग्ध हो गयी। जब अन्तिम पोज़ देखा जिसमें वह मिस्टर शर्मा की बाहों में बद्ध खड़ी थी, तो लजा सी गयी।

"इस पोज़ में एक हीरोइन लग रही हैं आप।" मिस्टर शर्मा ने उसकी लज्जा को ताड़ कर कहा।

"यह पोज़ मुझे दे दीजिये।" माया ने याचना की।

"यह कैसे हो सकता है। यह चित्र मेरे जीवन की सबसे बड़ी पूँजी है।" कह कर मिस्टर शर्मा मुस्कराये।

"देखिये, आप के जाने के बाद ही हमें कम्पनी का तार मिला था। कम्पनी का इरादा है कि नया चित्र यू० पी० के कलाकार लेकर यू० पी० की राजधानी लखनऊ में बनाया जाये। अब आपको बम्बई नहीं जाना पड़ेगा।" मिस्टर कापड़िया ने कहा। "आप हमारे साथ लखनऊ कब चल सकती हैं?"

"आप जब कहें।" माया का उत्तर था।

"आज रात को चल सकती हैं?" मिस्टर शर्मा ने पूछा।

"हाँ।"

'ठीक है। नौ बजे ट्रेन जाती है। आप स्टेशन पर आजाइयेगा। हाँ, आपको एक खुशखबरी तो सुना दूँ।" मिस्टर शर्मा ने माया के पास आकर कहा। "आगरे से केवल आपको ही लिया गया है। किशोर साहू ने लखनऊ से बीनाराय को लेकर चमकाया, मैं आगरे से आपको लेकर चमकाऊँगा—निम्मी की तरह! लखनऊ की लड़कियों को आपकी दासियों का रोल दूँगा।'

माया मिस्टर शर्मा की बात सुन कर पुलकित हो उठी। वह बीना-राय और निम्मी तरह चमकेगी—ज़रूर चमकेगी! उसमें रूप है यौवन है, अभिनय करने की क्षमता है। और क्या चाहिए? और फिर मिस्टर शर्मा और मिस्टर कापड़िया जैसे कृपालुओं की बैंकिंग है।

माया दोनों से विदा लेकर घर गयी। हर्षातिरेक के कारण ठीक से

भोजन भी न कर सको।

भोजन करके जल्दी-जल्दी सूटकेस में कपड़े रक्खे। बिस्तरबन्द ठीक किया। और कुछ विशेष सामान था नहीं। पंखा···? हाँ, पंखे का क्या करे ? क्या साथ ले जाये ? नहीं, यह ठीक नहीं रहेगा। दूकान पर देती चलूँ ?

वह इसी उधेड़-बुन में पड़ी थी कि मकान-मालिक का नौकर आ गया। उसने किराये का तकाज़ा किया।

"मैं मकान छोड़ कर जा रही हूँ। कितना किराया है तुम्हारा ?"

"दो महीने पूरे होने में चार-पाँच दिन रह गये हैं।"

"दो महीने के अस्सी रुपये हुये। नकद रुपया मेरे पास है नहीं। यह पंखा है। पूरे डेढ़ सौ का लिया था। ले जाओ।"

नौकर माया का मुँह देखने लगा।

"डेढ़ सौ का पंखा अस्सी में दे रही हूँ। और क्या चाहिए ? मैं चली। अपना घर सँभालो।" कह कर माया ने रिक्शे पर सामान रखवाया और फोर्ट स्टेशन की ओर चल दी।

दिसम्बर की ठण्डी हवा से बचने के लिए उसने अपना शाल कस कर लपेट लिया।

१५

***

मुरारी ने कराह कर धीरे से आँखें खोलीं।

डाक्टर ने संतोष की साँस लेकर नर्स की ओर देखा।

मुरारी ने देखा कि वह पलँग पर पड़ा है। छोटा सा कमरा है; मगर साफ-सुथरा है। पास ही डाक्टर और नर्स खड़े हैं। उसने फिर आँखें बन्द करलीं। सिर में तीखा दर्द सा अनुभव हुआ। हाथ फेरा तो मालूम हुआ पट्टी बँधी है।

"मैं कहाँ हूँ?" आँखें खोलकर मुरारी ने मन्द स्वर में पूछा।

"अस्पताल के स्पेशल वार्ड में।"

अस्पताल! स्पेशल वार्ड! क्या मैं फिर से पागलखाने में आ गया हूँ। लेकिन नहीं, पागलखाने से......।"

मुरारी को थकान का अनुभव हो रहा था। सिर में काफी पीड़ा थी। उसने फिर अपना कांपता हुआ हाथ पट्टी पर फेरा।

"मैं कहाँ हूँ?" मुरारी ने फिर पूछा।

"सरकारी अस्पताल में। कार का एक्सीडेंट हुआ था न! मगर कोई फिक्र की बात नहीं। यू विल बी ओ० के० सून।" कहकर डाक्टर चला गया।

नर्स मुरारी का कम्बल ठीक करने लगी।

सरकारी अस्पताल! कार एक्सीडेंट!! धीरे-धीरे स्मृति-पटल पर

चित्र उभरने लगे। माया और दिलीप ने उसे पागलखाने भिजवा दिया था। वह वहाँ से भागा था। एक कार मिली थी! हाँ, कितने भले थे कार वाले! नौकरी देने के लिये लखनऊ ला रहे थे। मगर मार्ग में मैनपुरी के पास......।

ठीक है! वह अवश्य मैनपुरी के सरकारी अस्पताल में होगा।मगर कार वाले कहाँ हैं? क्या नाम था उनका? ओह, भूल गया; एक दम भूल गया। एक युवती थी—गोरी, सुन्दर दयालु! एक युवक था—कठोर स्वभाव का, मदिरा के नशे में चूर......! कहाँ हैं दोनों? क्या...?

"सिस्टर मेरे साथी कहाँ हैं?" मुरारी ने नर्स से पूछा।

"साथी?" नर्स के चेहरे पर आश्चर्य का भाव उदित हुआ।

"हाँ! एक औरत और एक आदमी? उनकी दशा कैसी है? वे कहाँ हैं?"

नर्स विस्मय से आँखें फाड़ कर उसकी ओर देखती रही। फिर मीठे स्वर मे समझाती हुयी बोली—"ज्यादा सोचो मत। चुपचाप आँखें बन्द करके लेट रहो!"

मुरारी को शंका हुयी कि शायद वे दोनों चल बसे हैं तभी नर्स छिपा रही है। उसने व्यग्र स्वर में कहा—'मेरी बात का जबाब क्यों नहीं देतीं, सिस्टर? मेरे साथी कहाँ हैं? क्या...क्या वे...बुरी तरह घायल हो गये थे?"

नर्स मुरारी के प्रश्न का उत्तर दिये बिना ही तेजी से बाहर चली गयी। दो मिनट बाद ही वह डाक्टर को लेकर आ गया।

"क्या बात है?" डाक्टर ने पूछा।

"मेरे साथी कहाँ हैं?' मुरारी ने अपना प्रश्न दोहराया।

"तुम्हारा सवाल अजीब सा है। कार में तुम्हारे साथ कोई न था।" डाक्टर ने गम्भीर स्वर में कहा।

"देखिये, छिपाइये मत ! अगर उनकी मृत्यु हो गयी है तो साफ-साफ बता दीजिये।" मुरारी ने व्याकुल स्वर में कहा।

"लेकिन कार में तुम अकेले थें। एक दम अकेले।" डाक्टर ने हर शब्द पर ज़ोर देकर कहा।

"आप मज़ाक कर रहे हैं डाक्टर साहब !" मुरारी फीकी हँसी हँस कर बोला—"आप अच्छी तरह जानते हैं कि कार में मैं अकेला नहीं था। पिछली सीट पर मेरे साथ एक युवती थी। हम दो के अलावा एक युवक और था, जो कार चला रहा था। उन दोनों की कैसी हालत है ?"

नर्स विस्मय से मुरारी की ओर देख रही थी। डाक्टर के चेहरे पर भी परेशानी के चिन्ह थे। वह मुरारी की तरफ अजीब दृष्टि से देख रहा था।

"आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं।" डाक्टर ने आश्चर्य से कहा—"कार में आप अकेले थे। आपके साथ न तो कोई औरत थी और न कोई आदमी। कार आप खुद चला रहे थे।"

"कार में मैं अकेला था ?" आश्चर्य से मुरारी की आँखें फैल गयीं। "आप अवश्य परिहास कर रहे हैं। मुझे तो कार चलाना ही नहीं आता।"

"मज़ाक मैं नहीं, आप कर रहे हैं।" डाक्टर ने चिढ़ कर कहा। "जिस ट्रक से आपकी कार टकरायी थी, उसके ड्राइवर का बयान है कि कार आप चला रहे थे और कार में आप अकेले थे।"

"वह झूठा है।" उठ कर बैठने की चेष्टा करता हुआ मुरारी

बोला।

नर्स ने उसे पकड़ लिया। वह फिर लेट गया।

उसी समय बाहर से भारी जूतों की पदचाप आयी। नर्स और डाक्टर की दृष्टियाँ द्वार की ओर उठ गयीं। एक पुलिस इन्सपैक्टर बगल में फायल और हाथ में डंडा दबाये अन्दर आया।

"हलो डाक्टर!"

"हलो इन्सपेक्टर!!"

"अब तो कुछ सवाल पूछ सकता हूँ?" इन्सपेक्टर ने मुरारी को सचेत देख कर कहा।

"हाँ, हाँ! लेकिन ज्यादा परेशान न कीजियेगा। अभी मरीज़ को आराम की जरूरत है।"

डाक्टर और इन्सपेक्टर मुरारी के पलँग के समीप ही कुर्सियों पर बैठ गये। नर्स बाहर चली गयी।

"कहिये जनाब, अब कैसी तबियत है?" इन्सपेक्टर ने मुरारी से कोमल स्वर में पूछा।

"मालूम तो ठीक होती है।" मुरारी तकिये की धोक लगाकर बैठता हुआ बोला! "इन्सपेक्टर साहब, इससे पहले कि आप मुझसे कुछ पूछें, मैं कुछ सवाल आपसे पूछना चाहता हूँ।"

"पूछिये। इन्सपेक्टर ने मुस्करा कर कहा।

"एक्सीडेंट के समय कार में मैं अकेला था?"

"जी हाँ!" इन्सपेक्टर ने उत्तर दिया।

"और कार मैं ही चला रहा था?"

"आफकोर्स!"

"अब तो आपको मेरी बात का यकीन हुआ?" डाक्टर ने मुरारी

से प्रश्न किया । फिर डाक्टर की ओर मुड़कर बोला—"इनका ख्याल है कि कार में इनके साथ एक औरत और एक आदमी और था।"

"इन्सपेक्टर साहब, मैं कसम खाकर कहता हूँ कि कार की पिछली सीट पर मेरे साथ एक लड़की थी । कार में नहीं, दूसरा आदमी चला रहा था।" मुरारी ने मस्तक पर हाथ फेरते हुये कहा ।

"लेकिन ट्रक ड्राइवर......।"

"लेकिन हमारी कार ट्रक से नहीं, पेड़ से टकराई थी।" इन्सपेक्टर की बात बीच में ही काटकर मुरारी बोला । "मुझे अच्छी तरह याद है।"

इन्सपेक्टर और डाक्टर ने एक दूसरे की ओर देखा ।

"आप मेरी बात पर विश्वास नहीं कर रहे हैं । लेकिन मैं कसम खाकर कहता हूँ । गर्द से सनी हुयी बड़ी नीली फोर्ड गाड़ी अब भी मेरी आँखों के सामने घूम रही है।"

"आपकी कार गर्द से सनी बड़ी नीली फोर्ड गाड़ी से टकराई थी ?" इन्सपेक्टर ने अपनी फायल खोलते हुये पूछा ।

"जी नहीं ! हम लोग फोर्ड गाड़ी में बैठे थे।" मुरारी का उत्तर था ।

"आपको ठीक से याद नहीं है !" इन्सपेक्टर ने कहा । "आपकी कार नीली बड़ी फोर्ड गाड़ी नहीं, छोटी हरी बेबी आस्टिन थी ।"

"यह गलत है।" मुरारी उत्तेजित होकर बोला । "मुझे सब कुछ याद है, अच्छी तरह याद है । हमारी फोर्ट गाड़ी तेज़ी से आगे बढ़ रही थी । मैनपुरी के पास एक भयंकर मोड़ पर कार पेड़ से टकरा गयी ।"

"मैनपुरी के पास······!" इन्सपेक्टर ने विस्मय से पूछा।

"जी हाँ।"

डाक्टर और इन्सपेक्टर की दृष्टियाँ फिर मिलीं ।

"आप जानते हैं, इस समय आप किस अस्पताल में हैं ?" डाक्टर ने एक क्षण बाद मुरारी से धीमे स्वर में पूछा।

"सरकारी अस्पताल में।"

"किस शहर में ?"

"मैनपुरी में।"

"नहीं जनाब, आप इस समय कानपुर के सरकारी अस्पताल में हैं।"

डाक्टर की बात सुन कर मुरारी की आँखें फैल गयीं। चेहरे पर उलझन की परछाइयाँ पड़ने लगीं। वह कभी डाक्टर की ओर देखता और कभी इन्सपेक्टर की ओर।

"क्या मैनपुरी में अस्पताल नहीं है ?" मुरारी ने पल भर बाद पूछा।

"है क्यों नहीं !"

"फिर मैं कानपुर क्यों लाया गया ?"

"क्योंकि एक्सीडेन्ट मैनपुरी के पास नहीं, कानपुर के पास हुआ था।" इन्सपेक्टर ने कहा। "आपकी हरी बेबी आस्टिन लखनऊ से कानपुर की ओर जा रही थी। गंगा-पुल के पास एक ट्रक से एक्सीडेन्ठ हो गया।"

मुरारी चक्कर में पड़ गया। यह क्या सुन रहा है ? सब लोग मिल कर उसे किसी जाल में तो नहीं फँसाना चाहते हैं ? या...या...वह फिर किसी पागलखाने में तो नहीं आ गया है ! उसने फिर सोचने की कोशिश की। पिछली बातें दोहरायीं। उसे पूरा विश्वास था कि कार-दुर्घटना मैनपुरी के पास हुयी थी। कार नीली बड़ी फोर्ड थी। कार में उसके अतिरिक्त दो व्यक्ति और थे। कार पेड़ से टकराई थी। फिर डाक्टर और इन्सपेक्टर क्यों कह रहे हैं कि कार बेबी आस्टिन थी, दुर्घटना गंगा-पुल के निकट एक ट्रक से हुई, कार में वह अकेला था ? या दोनों झूठे हैं ?

डाक्टर और इन्सपेक्टर बड़े ध्यान से उसके चेहरे पर दृष्टि गड़ाये थे। चेहरे के उतराव-चढ़ाव से मन और मस्तिष्क का अध्ययन करने की चेष्टा कर रहे थे। मुरारी को उलझन में पड़ा देख कर दोनों ही समझ गये कि वह उनकी बात पर विश्वास नहीं कर रहा है। क्यों? शायद दिमाग़ में चोट पहुँचने से वह सब कुछ भूल गया है तभी तो सच को झूठ समझ रहा है।

"आई वान्ट रेस्ट।" टूटे स्वर में कह कर मुरारी लेट गया।

डाक्टर ने नर्स को आवाज़ दी। नर्स अन्दर से आकर मुरारी का कम्बल ठीक करने लगी।

"मैं शाम को फिर आऊँगा। उठ कर इन्सपेक्टर बोला। "शायद तब तक...।"

अपना वाक्य अपूर्ण छोड़ कर वह चला गया।

डक्टर ने नर्स को कुछ आदेश दिये और फिर वह भी बाहर चला गया।

मुरारी आँखें बन्द किये लेटा था। नर्स कुर्सी पर बैठ गयी।

"सिस्टर।" सहसा मुरारी ने आँखें खोल कर पूछा। "क्या मैं कानपुर के अस्पताल में हूँ?"

"यस।'

तभी द्वार से झाँक कर दूसरी नर्स ने कहा—"हैपी क्रिस्मस, लूसी।

"सेम टु य, मेरी!" लूसी ने उत्तर दिया।

मेरी खट्-खट् करती हुयी चली गयी।

शुभ कामनाओं के इस आदान-प्रदान ने उसे और उलझन में डाल दिया। कानों पर विश्वास नहीं हुआ। लूसी से मन्द स्वर में पूछा— "मेरी ने क्या कहा था आप से?"

"बड़े दिन की मुधारकबादी दी थी।

"आज···।

'हाँ, आज बड़ा दिन है।

मुरारी सोचने लगा बड़ा दिन पच्चीस दिसम्बर ! हे भगवान, यह कैसा चक्कर है। मैं गुरुवार—२० सितम्बर को पागलखाने से भागा था उसी रात को दुर्घटना हुयी थी। तो क्या मैं तीन महीने पाँच दिन तक अचेत रहा ? नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है ?

"सिस्टर, एक बात पूछूं ?" मुरारी ने मीठे स्वर में प्रश्न किया।

लूसी ने सिर हिला दिया।

"मैं यहाँ कब लाया गया ?"

'कल शाम को साढ़े पाँच बजे।"

लूसी ने उसे और भी उलझन में डाल दिया।

शाम को चार बजे लूसी का स्थान एक नयी नर्स ने ले लिया। उससे भी उसने कई सवाल पूछे। उसके उत्तरों ने भी डाक्टर और इन्सपेक्टर के कथन की पुष्टि की।"

शाम को डाक्टर और इन्सपेक्टर फिर आया। मुरारी उठ कर बैठ गया।

"अब कैसी तबियत है, मिस्टर मदन ?" इन्सपेक्टर ने पूछा।

मुरारी मौन रहा।

"सुना नहीं आपने ?" इन्सपेक्टर चिढ़ कर बोला।

"आपने मुझ से सवाल किया था ?" मुरारी ने अजीब लहज़े में पूछा।

"और क्या दीवार से किया था !"

"मगर मेरा नाम मदन नहीं, मुरारी है।"

इन्सपेक्टर और अधिक चिढ़ गया। क्रुद्ध स्वर में बोला—"मुझे इस

तरह की मज़ाक पसन्द नहीं ! सुबह मैंने कुछ नहीं कहा। देखिये, ठीक से मेरे सवालों का जवाब दीज़िये।"

"मगर मैं सच कह रहा हूँ। मेरा नाम मुरारी है।"

"आप झूठ बोल रहे हैं। आपका नाम मदन है। आपके भाई ने आपको पहचान लिया है। कार का रजिस्ट्रेशन भी मदन के नाम है।" इन्सपेक्टर फायल खोलने लगा।

"मेरा नाम मुरारी है और अपने पिता का एकमात्र पुत्र हूँ।" गम्भीर स्वर में मुरारी बोला।

"तो आपके भाई झूठे हैं ?"

"मुझे तो आप सब झूठे मालूम होते हैं।" कह कर मुरारी लेट गया।

इन्सपेक्टर का चेहरा क्रोध से तमतमा गया। अभी तक उसे झूठा कहने की जुर्रत किसी ने नहीं की थी ! यह कल का छोकरा......।

डाक्टर ने इन्सपेक्टर की ओर देखा और फिर उँगली से अपना सिर ठोका। उसका आशय था कि मरीज़ का दिमाग़ फिर गया है; क्रोध करने से कोई लाभ नहीं। इन्सपेक्टर उसका आशय समझ कर संयत हो गया।

"अगर आप के कोई भाई नहीं है तो वे सज्जन कौन हैं जो आपको स्पेशल वार्ड में रखने का खर्चा उठा रहे हैं ?" डाक्टर ने धीमे और मीठे स्वर में पूछा।

"मैं नहीं जानता।" मुरारी ने उत्तर दिया। फिर ध्यान आया शायद दिलीप ने यहाँ भी पीछा न छोड़ा हो। पूछा—"आप उन सज्जन की हुलिया बता सकते हैं ?"

"गोरा रंग, स्थूल शरीर, छोटी और कीचड़ से भरी आँखें, गंजा सिर, लगभग चालीस की उम्र......।"

"मैं ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानता।" डाक्टर को बीच में ही

टोक कर मुरारी ने कहा।

"आप मिस्टर जीत को नहीं जानते ?" इन्सपेक्टर ने पूछा।

"मैं यह नाम आज पहली बार सुन रहा हूँ।" मुरारी ने उत्तर दिया। फिर उठ कर बैठता हुआ बोला—"मैं मुरारी हूँ। आगरे में रहता था। पत्नी और दोस्त ने विश्वासघात करके मुझे पागलखाने भिजवा दिया था। मैं यहाँ से बीस सितम्बर की रात को भागा। रास्ते में एक कार मिल गयी। उसमें एक युवती और एक युवक था। उन्होंने मुझे बिठा लिया। कार दिल्ली की ओर से लखनऊ आ रही थी। मैनपुरी के पास दुर्घटना हो गयी। यकीन न हो तो पागलखाने से पता लगा लीजिये।"

मुरारी की बात सुन कर डाक्टर ने इन्सपेक्टर की ओर देखा। दोनों मुस्करा पड़े। उन्हें मुस्कराता देख मुरारी ने समझा कि दोनों को उसकी बातों पर यक़ीन आ गया है। उत्साहित होकर पूछा—"अब आ गया मेरी बातों पर विश्वास······?"

"आपके बहकने का कारण समझ में आ गया।" डाक्टर ने रहस्यमय ढंग से कहा।

"अगर कार-दुर्घटना बीस सितम्बर को हुई तो आप उसके बाद कहाँ रहे ? आज पच्चीस दिसम्बर है।" इन्सपेक्टर ने कहा।

"यही तो मैं जानना चाहता हूँ।" मुरारी का उत्तर था। 'यह एक ऐसी पहेली है जो मेरी समझ में नहीं आती। आप पता लगाइये।"

मुरारी ने देखा, इन्सपेक्टर विचार मग्न हो गया है। एक क्षण बाद ही इन्सपेक्टर डाक्टर को साथ लेकर बाहर चला गया।

घण्टे भर बाद ही इन्सपेक्टर फिर आया। उसके हाथ में पुराना समाचार-पत्र था।

"कुछ पता लगा ?" मुरारी ने पूछा।

इन्सपेक्टर चिन्तित था। कुर्सी पर बैठ कर बोला—"अजीब पहेली है।"

इन्सपेक्टर ने नर्स को बाहर जाने का संकेत किया। नर्स बाहर चली गयी। उसके जाने के बाद इन्सपेक्टर ने समाचार-पत्र खोलते हुये कहा—"यह अखबार बाईस सितम्बर का है। इसमें मैनपुरी के पास होने वाली दुर्घटना का हाल है।"

"अब तो आपको विश्वास हो गया कि मैं मुरारी हूँ!"

"नहीं! मुरारी तो उस दुर्घटना में मर गया।" कह कर इन्सपेक्टर ने समाचार-पत्र मुरारी के हाथ में थमा दिया।

मुरारी समाचार पढ़ कर स्तम्भित हो गया। उसमें स्पष्ट रूप से उसकी मृत्यु का उल्लेख था। सन्देह की गुंजाइश ही नहीं थी। मुरारी सोच में पड गया। यदि मुरारी की मृत्यु हो गयी है तो मैं कौन हूँ? क्या वास्तव में मैं मदन नाम का व्यक्ति हूँ?

'मुझे लगता है कि आपने यह समाचार पढ़ा होगा और इसका प्रभाव आपके दिल और दिमाग पर स्थायी रूप से पड़ा होगा। जब गंगा-पुल के पास आपकी कार ट्रक से लड़ी और आपके सिर में चोट आयी तो आप अपना सही नाम-पता भूल कर अपने को मुरारी समझ बैठे।" इन्सपेक्टर मुरारी के हाथ से समाचार-पत्र लेकर बोला। "है न यही बात?"

मुरारी ने कोई उत्तर नहीं दिय।।

"मुझे यकीन है कि ऐसी ही बात हुई है। आपका नाम है मदन और मिस्टर जीत आपके भाई हैं।"

"लेकिन···।"

"अगर वे आपके भाई न होते तो उन्हें आपका इतना ध्यान क्यों होता? आपको बेहोश देख कर रोने लगे थे। खैर, अब आप आराम कीजिये। कल सुबह फिर आऊँगा।" कह कर इन्सपेक्टर बाहर चला गया।

मुरारी के सामने जटिल समस्या थी। अगर इन्सपेक्टर की बात

सच है तो वह अपनी पत्नी माया और मित्र दिलीप के बारे में कैसे जानता है; उनके चेहरों को मन की आँखों से कैसे देख सकता है! समाचार-पत्र में माया और दिलीप का कोई जिक्र नहीं। नहीं, वह मदन नहीं, मुरारी है। उसे सब कुछ याद है—दफ्तर के बड़े बाबू, मोहल्ले का शर्मा, कामिनी, उसके पिता, उमा, पागलखाने के रमेश, गुप्ता, पाँडे……।

मुरारी को इसमें कोई सन्देह नहीं रहा कि इन्सपेक्टर की धारणा गलत है। मगर एक प्रश्न उसके सामने अब भी था! बीस सितम्बर से २४ दिसम्बर तक वह कहाँ रहा, उसने क्या किया? उसने याद करने की लाख चेष्टा की परन्तु कुछ याद न आया। इस काल की घटनाओं पर जैसे विस्मरण का गहरा काला पर्दा पड़ गया हो।

इन्सपेक्टर के जाते ही नर्स कमरे में आ गयी थी। मगर मुरारी अपने ध्यान में इस तरह डूबा हुआ था कि उसे उसका ज्ञान ही नहीं हुआ।

"ज्यादा सोचना ठीक नहीं!" नर्स ने आखिर टोक ही दिया।

मुरारी चौंक पड़ा।

नर्स ने कमरे की बत्ती जला दी।

"सिस्टर, एक्सीडेंट के वक्त मैं कौन से कपड़े पहने था? मुरारी ने पूछा।

"सूट पहने थे। इस अलमारी में रखा है।" कमरे के कोने में रखी हुई अलमारी की ओर संकेत करके नर्स ने उत्तर दिया।

मुरारी उस सूट को देखना चाहता था। शायद उससे रहस्य पर कुछ प्रकाश पड़ सके! वह नर्स से सूट दिखाने के लिए कहना ही चाहता था कि तभी बाहर से एक व्यक्ति ने कमरे में प्रवेश किया। मुरारी ने देखा कि उसकी हुलिया ठीक वैसी ही है जैसी डाक्टर ने बतायी थी।

तो क्या यही वह व्यक्ति है जो अपने को मेरा भाई बताता है?

मुरारी उठ कर बैठ गया।

१६

***

नवागन्तुक वेश-भूषा से सम्भ्रांत और धनी व्यक्ति लगता था। वह कीमती सूट पहने था। जूते शीशे की तरह चमचमा रहे थे। कलाई में 'रोमर' घड़ी थी जिसकी चेन सोने की थी। उँगलियों में हीरे और मोती की अँगूठियाँ थीं। उसके एक हाथ में फेल्ट कैप थी और दूसरे में एक पैकेट। उसे देखकर नर्स भी कुर्सी छोड़कर खड़ी हो गयी।

"गुड इवनिंग, सिस्टर!" उसने नर्स की ओर देखकर कहा।

"गुड इवनिंग!" नर्स ने मुस्करा कर कहा। उसकी दृष्टि पैकेट पर जमी थी।

"मेरी विनम्र भेंट।" जीत ने अँग्रेज़ी में कहा और पैकेट नर्स के हाथ में दे दिया।

"धन्यवाद।" नर्स ने पैकेट छाती से लगा कर कहा। वह फिर बाहर चली गयी।

मुरारी जीत को ध्यान से देख रहा था। वह सौगन्ध खाने को तैयार था कि उसने इस व्यक्ति को जीवन में पहले कभी नहीं देखा है।

"भगवान की कृपा से चोट मामूली है।" जीत कुर्सी पर बैठकर बोला। "मैं पहले तो तुम्हें बेहोश देखकर घबरा गया था।"

"आप कौन हैं?"

"मुझे नहीं पहचानते? अपने भाई को भूल गये?" जीत ने दुखी स्वर में कहा। "क्या सचमुच तुम मुझे नहीं पहचान सकते?"

"नहीं! मैंने आज से पहले न तो आपको कभी देखा है और न

मेरे कोई भाई है । आपको ज़रूर कोई ग़लतफहमी हुई है ।" मुरारी ने रूखे स्वर में कहा ।

"हे भगवान, मैं यह क्या सुन रहा हूँ !" जीत आँखें डबडबा कर बोला । "मेरा ही छोटा भाई मुझे नहीं पहचानता । क्या तुम सब कुछ भूल गये ? क्या तुम्हें यह भी याद नहीं कि लखनऊ में कोई बिचारी तुम्हारा मुँह देखने के लिये तरस रही है ?"

"लखनऊ में मेरा कोई नहीं है ।' मुरारी चिढ़कर बोला ।

"हे राम, अपनी ब्याहता बीबी को भी भूल गये तुम !"

"भगवान के लिये मुझे सोने दीजिये ।" पलँग पर लेट कर मुरारी बोला । "आप जाइये । मुझे परेशान न कीजिये ।"

"जानते हो कितनी आतुरता से हम तुम्हारे होश में आने का इन्त-ज़ार कर रहे थे ।" जीत अपनी कुर्सी पलँग से सटाकर बोला ।"अब होश आ गया है तो पहचानते भी नहीं ! क्या हमारे उपकारों का यही बदला है, मदन...?"

"मैं मदन नहीं, मुरारी हूँ ।" मुरारी तड़फ कर उठता हुआ बोला ।

"जानता हूँ !" एक क्रूर मुस्कान जीत के अधरों पर खेल गयी ।

"आप जानते हैं कि मैं मुरारी हूँ ?" व्यग्रता और उत्सुकता से पूछा ।

"हाँ !"

"फिर मुझे मदन क्यों कहते हैं ?"

"क्योंकि दुनिया के लिये मुरारी मर चुका है । अब तुम मदन हो ।"

"मगर मैं दुनिया को दिखा दूँगा कि मुरारी ज़िन्दा है ।" मुरारी आवेश से बोला ।

"दुनिया तुम्हें पागल समझेगी ।" जीत ने गम्भीरता से कहा । फिर

कठोर स्वर में बोला । "जीत से टक्कर लेने का ख्याल छोड़ दो। बताओ, रुपया और काग़ज़ात कहाँ हैं ?"

मुरारी ने जीत की ओर देखा । जीत की आँखों में क्रूरता की झलक थी । मुरारी धीमे स्वर में बोला—"मैं नहीं जानता, आप क्या कह रहे हैं ।"

"बनो मत ! तुम मेरा मतलब अच्छी तरह समझते हो । यह न समझो कि मुझे धोखा दे सकते हो । बताओ, रुपया और काग़ज़ात कहाँ छिपाये हैं ?" जीत का स्वर कठोर हो उठा । "कार में हमने अच्छी तरह देख लिया है । उसमें कुछ नहीं था । जरूर तुमने लखनऊ में ही कहीं छिपा दिये हैं !"

"मैं कुछ नहीं जानता ।"

"तुम जानते हो कि मेरा गुस्सा बहुत खराब है । तुम्हें यह भी मालूम है कि मेरी जेब में हमेशा रिवाल्वर रहता है ।" कहकर जीत ने कोट की जेब से एक छोटा अमेरिकन रिवाल्वर निकाला । "कितना प्यारा खिलौना है ? बोलो, में आखिरी बार पूछता हूँ । रुपया और काग़ज़ात कहाँ हैं ?"

"मुझे कुछ भी याद नहीं ?" मुरारी भीत स्वर में बोला । उसकी दृष्टि रिवाल्वर पर जमी थी ।

जीत ने रिवाल्वर जेब में रख लिया । सहसा स्वर कोमल करके बोला—"पागलपन छोड़ दो । देखो, मैं समझौता करने को तैयार हूँ । रुपया तुम लेलो; काग़ज़ात हमें देदो । बोलो, अब तो तैयार हो ?"

मुरारी की समझ में जीत की बातें नहीं आ रही थीं । उसे न तो रुपयों का ज्ञान था और न काग़ज़ातों का । बातों-बातों में शायद कुछ पता मिल जाये इस आशय से उसने पूछा—"काग़ज़ात इतने ज़रूरी हैं ?"

"तुम तो ऐसे बन रहे हो जैसे कुछ जानते ही नहीं ।" जीत अट्टहास

करके बोला। "हज़ारों रुपया उनके लिए छोड़ रहा हूँ!"

मुरारी ने सोचने का अभिनय किया। जीत ने समझा वह उसके प्रस्ताव पर विचार कर रहा है। वास्तव में मुरारी यह सोच रहा था कि जब जीत काग़ज़ातों के बदले में हजारों रुपये छोड़ने को तैयार है तो वे सचमुच बहुत मूल्यवान होंगे। उन काग़ज़ातों में क्या रहस्य छिपा है, यह जानने के लिये वह व्याकुल हो उठा।

"क्या जवाब है तुम्हारा ?" जीत ने पूछा।

"अगर मैं मना कर दूं तो......?" मुरारी ने प्रश्न किया।

"तो जिन्दगी से हाथ धोने पड़ेंगे।" जीत ने धमकी दी।

और मुरारी को लगा कि जीत जैसे क्रूर व्यक्ति के लिये किसी की भी हत्या कर देना कठिन नहीं है।

"तब तो सिवाय मानने के और कोई रास्ता ही नहीं है।" मगर फिर भी मुझे सोचने-समझने का मौका दीजिये।"

"मैं कल दोपहर में आऊँगा।" कहकर जीत खड़ा हो गया।

"कल नहीं, परसों।" मुरारी ने विनम्र स्वर में कहा।

"अच्छा परसों ही सही। एक दिन में कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। मगर याद रहे, धोखा देने की कोशिश न करना।" कह कर जीत ने ऊँचे स्वर में नर्स को पुकारा।

नर्स अन्दर आ गयी।

"मदन आपकी तारीफ़ कर रहा था।" जीत नर्स के कन्धे पर हाथ रख कर बोला। "मैं अहसानमन्द हूँ।"

फिर जीत ने जेब से दस-दस रुपये के पाँच नोट निकाल कर नर्स के हाथ पर रख दिये।

"इसकी क्या ज़रूरत है ?" कहकर नर्स मुस्करायी मगर नोट उस ने सँभाल कर रख लिये।

"मदन का ख्याल रखना।" जीत ने कहा। फिर मुरारी की ओर

मुड़कर बोला—"परसों आऊँगा। अच्छा !"

जीत चला गया। मुरारी कम्बल ओढ़कर लेट गया।

"योर ब्रदर इज़ वेरी काइन्ड।" नर्स ने कुर्सी पर बैठकर कहा।

"एन्ड वेरी रिच टू।" मुरारी का उत्तर था।

दिन में मुरारी को फलों का रस मिला था। सिर के घाव में पीड़ा अपेक्षाकृत कम थी किन्तु फिर भी वह दुर्बलता का अनुभव कर रहा था। आँखें मूँद कर उसने सोने की चेष्टा की परन्तु नींद न आयी। मस्तिष्क में भाँति-भाँति के विचार उठ रहे ले। वह इतना तो समझ ही गया था कि मैनपुरी के निकट दुर्घटना होने के बाद वह किसी प्रकार जीत के सम्पर्क में आया होगा और तीन महीने तक उसके साथ रहा होगा। जीत के साथ रह कर उसने मदन के रूप में क्या क्या किया, किस प्रकार का जीवन व्यतीत किया; इसका कोई ज्ञान या स्मरण उसे न था। जीत के कथनानुसार उसके अधिकार में हजारों रुपये और कुछ जरूरी कागज़ात होने चाहिएँ। शायद वह लखनऊ से रुपया और कागज़-पत्र ही लेकर भागा हो ! मगर वे हैं कहाँ ?

मुरारी ने आँखें खोलीं। देखा, नर्स की कुर्सी खाली है। कमरे का द्वार बन्द था। मुरारी ने सोचा, शायद नर्स मुझे सोया हुआ जान कर चली गयी है। वह पलँग से उठ कर अल्मारी के पास गया। अल्मारी में कोट-पैंट रखा था। उसने पैन्ट की जेबों में हाथ डाल कर देखा। वे खाली थीं। कोट की हर जेब टटोली। उनमें भी कुछ न था। मुरारी ने समझा कि रुपया-पैसा पुलिस ने अपने अधिकार में ले लिया होगा।

निराश होकर मुरारी कोट रखना ही चाहता था कि उसका चेहरा हर्ष से चमक उठा। आँखों में नयी ज्योति आ गयी। उसे कोट की आस्तीन में एक छोटी सी गुप्त जेब दिखाई दे गयी थी।

उस जेब के अन्दर उसे दो वस्तुयें मिलीं। एक सौ रुपये का नोट और एक बिल्टी।

बिल्टी लखनऊ की थी। लखनऊ से कोई माल कानपुर भेजा गया था।

भेजने वाले के नाम के स्थान पर लिखा था—मदनलाल !

पाने वाले के नाम के स्थान पर लिखा था—मुरारीलाल !!

मुरारी ने नोट और बिल्टी अपने वस्त्रों में छिपा कर कोट को ठीक से तहा कर फिर अलमारी मे रख दिया। अलमारी बन्द करके वह पलंग पर लेट गया। उसने अनुमान लगाया कि सारे रहस्य की कुन्जी इसी बिल्टी में निहित है। जिस प्रकार भी हो, उसे रहस्य का उद्घाटन करना है। मगर अस्पताल में पड़े-पड़े क्या हो सकता है ? उसे शीघ्र से शीघ्र अस्पताल छोड़ देना चाहिए ! परसों जीत फिर आयेगा ! बस जो कुछ करना है उसे कल ही कर डालना चाहिए !

सोचते-सोचते मुरारी सो गया। सुबह जब आँख खुली तो दिसम्बर की गुलाबी धूप खिड़की की राह कमरे में झाँक रही थी।

आठ बजे लूसी आ गयी।

"गुड मार्निंग, सिस्टर !" मुरारी ने मुस्करा कर अभिवादन किया।

"मार्निंग !" कह कर लूसी उसकी पट्टी खोलने लगी।

डाक्टर ने घाव देखा। पट्टी बदल दी गयी।

"अब घाव कैसा है ?" मुरारी ने डाक्टर से पूछा।

"एक-दो दिन में भर जायेगा।" डाक्टर ने बताया।

उसी समय इन्सपेक्टर ने कमरे में प्रवेश किया। मुस्करा कर बोला—हाउ आर यू टू डे, मिस्टर मदन ?"

"क्वायट वैल, इन्सपेक्टर।" मुरारी ने शरारत भरी मुस्कान के साथ कहा और फिर बैठ कर बोला—"कल आपको तकलीफ दी उसके लिये माफी चाहता हूँ।"

"तो क्या·········?"

"वह मेरा अभिनय था।" कह कर मुरारी खिलखिला कर हँस

पड़ा। "बात यह है कि मैं भाई जान से छुटकारा पाना चाहता था।"

"मगर क्यों··?" डाक्टर ने उत्सुकता से पूछा।

"क्या कहूँ, डाक्टर साहब, अजीब मुसीबत में फँस गया हूँ।" मुरारी अपने स्वर को दयनीय बना कर बोला। "शायद आप लोगों से प्यार की पीर तो छिपी न होगी। मेरा ख्याल है···।"

"गो आन।" इन्सपेक्टर ने मुस्करा कहा।

"मैं जिस लड़की को प्यार करता हूँ, वह यहीं कानपुर में रहती है। भाई साहब ने मेरी मर्जी के खिलाफ़ मेरी शादी दूसरी लड़की से कर दी आप सोच सकते हैं, मेरा क्या हाल हुआ होगा। मुझे लगा कि भाई साहब इन्सान नहीं, शैतान हैं। उनके लिए पैसा ही सब कुछ है। मैंने समझा कि अगर मैं लखनऊ में रहा तो पागल हो जाऊँगा। इसीलिए कानपुर आ रहा था। ख्याल था कि उस लड़की से मिलूँगा, उसे सारी स्थिति बता कर अपनी सफाई दूँगा, मगर······।"

"मगर रास्ते में एक्सीडेन्ट हो गया।" हँस कर इन्सपेक्टर बोला।

"जी हाँ! और अब इससे पहले कि भाई साहब मुझे अपने साथ लखलऊ ले जायें, मैं एक बार उस लडकी से मिलना चाहता हूँ।' मुरारी डाक्टर की ओर उन्मुख होकर बोला। "डाक्टर साहब, क्या मेरे ऊपर इतनी मेहरबानी करेंगे?"

"लेकिन······।"

"मैं अब बिल्कुल ठीक हूँ। कल भाई साहब आ रहे हैं। मुझे आज थोड़ी देर के लिए छुट्टी दे दीजिये।" मुरारी ने याचना की।

"अगर मिस्टर जीत को मालूम हो गया तो······।"

"लैट हिम गो, डाक्टर।" बीच में ही लूसी बोल पड़ी। शायद वह प्यार की पीड़ा का मर्म भली प्रकार समझती थी।

"अच्छी बात है।" डाक्टर सहमत हो गया।

उसके बाद इन्सपेक्टर ने कुछ साधारण प्रश्न पूछे। मुरारी ने गोल

उत्तर दिये। इन्सपेक्टर चला गया।

इन्सपेक्टर और डाक्टर के जाने के बाद मुरारी ने लूसी को धन्य-वाद दिया।

लूसी ने मुस्करा कर उत्तर दिया कि धन्यवाद देने की कोई ज़रूरत नहीं है।

मुरारी शीघ्र से शीघ्र स्टेशन पहुँच कर माल छुड़ाना चाहता था। उसने लूसी को सौ रुपये का नोट देकर छोटे नोट लाने के लिए कहा। वह नोट लेकर बाहर चली गयी।

दस-दस के नौ नोट और एक-एक के दस नोट लेकर जब लूसी लौटी तो उसने देखा कि मुरारी सूट पहने खड़ा है। नोट उसके हाथ में देकर बोली—"बहुत उतावले हो रहे हो।"

"होना ही चाहिए।" कह कर मुरारी मुस्करा दिया। फिर बोला—"सिस्टर, कोशिश तो यही करूँगा कि जल्द से जल्द लौट आऊँ। मगर हो सकता है कि देर हो जाये। तुम तो सब समझती हो···।"

"यस आई डू अन्डरस्टैन्ड ! अब जाओ ! शी मस्ट बी वेटिंग फार यू।"

मुरारी अस्पताल के बाहर आ गया। स्टेशन के लिए रिक्शा तय करके बैठ गया। जब रिक्शा स्टेशन पर पहुँचा तो दस बज चुके थे।

पुल पार करके वह पारसल-घर पहुँचा। बाबू लोग आ चुके थे। बिल्टी का महसूल अदा करके उसने माल छुड़ा लिया।

जो माल उसे मिला वह छोटा सा पैकेट था। अन्दर चमड़े की अटैची जैसी कोई वस्तु प्रतीत होती थी। ऊपर टाट लगा था। पैकेट बगल में दबा कर वह स्टेशन के सामने ही एक भव्य होटल में गया। और एक कमरा किराये पर ले लिया।

कमरे का द्वार अन्दर से बन्द करके उसने पैकेट खोलने का निश्चय किया। टाट के अन्दर चमड़े की छोटी अटैची निकली। अटैची के

अन्दर क्या है, यह जानने के लिए वह व्याकुल हो रहा था। काँपते हाथ से अटैची खोली और अटैची खोलते ही उसके मुख से आश्चर्य की धीमी चीख निकल गयी।

अटैची सौ-सौ के नोटों से भरी थी। मुरारी नोटों को इस तरह देख रहा था मानों वह जीते-जागते बिच्छू हों और हाथ लगाते ही वे उसे डस लेंगे। कुछ देर बाद संयत होकर उसने नोटों को हाथ लगाया। नोटों के नीचे एक बड़ा लिफाफा था। लिफाफे के अन्दर कुछ कागज़ात रक्खे थे।

मुरारी कागज़ों को पढ़ने लगा। एक कागज़ में अनेक नामों की सूची थी। दूसरे में भारत के सभी बड़े-बड़े शहरों के नाम थे और हर नाम के आगे एक-एक पता लिखा था। तीसरे कागज़ में कुछ हिसाब-किताब था।

नामों की सूची में उसे जीत और मदन का नाम दिखायी दिया। पतों की सूची में उसका ध्यान लखनऊ के पते पर केन्द्रित हो गया। उसने सोचा कि लखनऊ ही इस रहस्य का केन्द्र है। दुर्घटना के समय वह लखनऊ से कानपुर आ रहा था। जीत ने भी लखनऊ का जिक्र किया था।

मुरारी ने लखनऊ जाने का निश्चय किया। मगर सबसे पहले उस अटैची को किसी सुरक्षित स्थान पर रखना आवश्यक था। उसे पाँडे का ध्यान आया। मगर उसका पता ज्ञात न था।

काफी सोच-विचार के बाद उसने अटैची को किसी बैंक के 'लाकर' में रखन का निश्चय किया। पाँच नोट अपनी जेब में रख कर अटैची बन्द कर दी। फिर वेटर को बुला कर चाय-टोस्ट लाने का आर्डर दिया। दो रुपये देकर एक बड़ा और एक छोटा ताला लाने का आदेश भी दे दिया।

दस मिनट बाद ही चाय भी आ गयी और ताले भी। जलपान से

निवृत होकर उसने छोटा ताला अटैची में लगा दिया और कुंजी कोट की आस्तीन की गुप्त जेब में रख ली। अटैची लेकर बाहर आया। कमरे में ताला लगा कर मैनेजर के आफिस में गया।

"मैं दो-एक दिन के लिए बाहर जाना चाहता हूँ।" वह मैनेजर से अँग्रेजी में बोला। "लेकिन कमरा मैं नहीं छोड़ूँगा। यह लीजिये हफ्ते भर का पेशगी किराया।"

मैनेजर ने कोई आपत्ति न की। मुरारी ने पैंतीस रुपये मैनेजर को दे दिये।

होटल से निकल कर वह पंजाब बैंक गया। मैनेजर से मिल कर एक 'लाकर' किराये पर ले लिया। साल भर का किराया पेशगी अदा कर दिया। अटैची 'लाकर' में रख कर 'लाकर' बन्द कर दिया। एक चाभी मैनेजर के पास रह गयी और दूसरी उसने गुप्त जेब में डाल ली। अब अटैची पूर्णतया सुरक्षित थी क्योंकि लाकर तभी खुल सकता था जब दोनों चाभियाँ हों। बैंक के फार्म में उसने होटल का पता लिखा दिया था।

बैंक के बाहर आकर उसने सन्तोष की साँस ली। उसे लगा कि उसकी छाती पर रक्खा हुआ भारी पत्थर हट गया है।

बीस मिनट बाद ही वह लखनऊ जाने वाली ट्रेन में बैठा था। ट्रेन तीव्र वेग से कानपुर को पीछे छोड़ती हुई लखनऊ की ओर भागी जा रही थी। मुरारी मन-ही-मन लखनऊ का पता दोहरा रहा था। उसे भय था कि कहीं पता भूल न जाये।

लखनऊ पहुँच कर वह टैक्सी पर बैठ गया। टैक्सी वाले को उसने पता बता दिया। टैक्सी चल पड़ी और मुरारी के हृदय की धड़कन की गति भी तीव्र होने लगी।

टैक्सी एक भव्य भवन के सामने रुक गयी। कोठी एकान्त स्थान पर बनी थी। आस-पास दूसरा मकान नहीं था। टैक्सी वाले को किराया

देकर मुरारी फाटक के अन्दर घुसा। बाहर कोई नौकर नहीं दिखायी दिया। धड़कते हुये दिल और काँपते हुये हाथ से उसने मुख्य द्वार पर लगी बिजली की घण्टी का बटन दबा दिया। कोठी के अन्दर घण्टी का स्वर गूँज उठा।

मुरारी की दशा उस व्यक्ति के समान हो रही थी जिसके सामने से कोई पर्दा उठने वाला हो और जिसे यह ज्ञात न हो कि वह पर्दे के अन्दर क्या देखेगा। मुरारी नहीं जानता था कि द्वार खुलने पर वह किसका चेहरा देखेगा, जैसे पर्वतारोही यह नहीं जान पाता कि सामने की चोटी के बाद उसे क्या दिखाई देगा—हरी-भरी घाटी या नंगी, ऊँची कोई दूसरी चोटी।

तभी अन्दर से भारी पदचाप का स्वर आया। फिर धीरे-धीरे द्वार खुला। द्वार खोलने वाला हाथ जीत का था। मुरारी विस्फारित नयनों से जीत की ओर देख रहा था। जीत के पीछे ही उसे उस युवती का चेहरा दिखायी दिया जिसने उसको पागलखाने से भागने के बाद अपनी कार पर बिठाया था। मुरारी ने उसे पहचान लिया।

उन दोनों के चेहरे पर क्रूर मुस्कान देख कर मुरारी समझ गया कि वह ख़तरे में फँस गया है। जीत के दाहिने हाथ में लोहे का रूल देख कर वह और भी डर गया। बोलने की कोशिश की मगर मुँह से बोल न निकला।

"आगये! मैं तुम्हारा ही इन्तज़ार कर रहा था।" कहकर जीत ने मुरारी का हाथ पकड़ लिया

मुरारी ने हाथ छुड़ाकर भागने की चेष्टा की। वह हाथ छुड़ाने में सफल भी हो गया। पर इससे पहले कि वह भागने के लिये कदम उठा सके, जीत का दाहिना हाथ ऊपर उठा और फिर नीचे गिरा। मुरारी को लगा कि उसके सिर पर भारी पहाड़ टूट पड़ा है। आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। जीत और उस युवती के चेहरे धुँधले होकर अँध-

कार में विलीन हो गये। दोनों का अट्टहास उसके कानों में बहुत दूर से आने वाली ढोल की आवाज की तरह गूँज उठा और फिर शून्य...... निस्तब्धता...अँधेरा।

मुरारी को जब होश आया तब उसने अपने को एक कोठरी में बंद पाया। पहले तो समझ में नहीं आया कि वह कहाँ है, फिर धीरे-धीरे सब बातें याद आ गयीं! जीत...युवती...!

और सहसा मुरारी को लगा कि उसके सामने से काला पर्दा हट गया है। विस्मरण का स्थान स्मरण ने ले लिया। गंगा-पुल के निकट घटित होने वाली दुर्घटना में लगी सिर की चोट के कारण वह जो बातें भूल गया था, वे जीत के रूल के आघात से याद आने लगीं। मैनपुरी के निकट वाली कार-दुर्घटना के बाद की सभी घटनायें एक-एक करके उसके मानस-पटल पर चल-चित्र की भाँति उभरने लगीं।

***

पूर्व-स्मृति-खंड

(१)

मैनपुरी के निकट उस भयंकर मोड़ पर जब कार पेड़ से टकरा कर गहरे खड्ड में गिरने लगी थी तो मुरारी को ऐसा लगा था कि भारी भूडोल आ गया है। उसका सिर खिड़की से टकरा गया था और वह तत्काल ही अचेत हो गया था। वह कितनी देर बेहोश रहा इसका उसे ज्ञान नहीं। जब होश आया तो अपने को ज़मीन पर पड़ा पाया। पैर में दर्द हो रहा था, बाँह में खरोंच आ गयी थी और मस्तक पर गुमड़ा पड़ गया था।

मुरारी उठ कर बैठ गया। पूनम के डूबते हुये चाँद की रोशनी में उसने देखा कि कुछ कदमों की दूरी ही पर कार उल्टी पड़ी है। एक खिड़की टूट कर अलग हो गयी थी। दूर-दूर तक काँच के टुकड़े छितरे पड़े थे। लिली का पति शायद बुरी तरह फँसा हुआ था। लिली उसे बाहर निकालने की कोशिश कर रही थी।

मुरारी उठ कर कार के पास गया। उसने देखा कि लिली अपने पति के पैर पकड़ कर उसे बाहर खींचने का उपक्रम कर रही है। मुरारी को देख कर उसने पैर छोड़ दिये। माथे का पसीना पोंछ कर

पूछा—"चोट ज्यादा तो नहीं लगी ?"

"मामूली खरोंचे हैं। आप तो ठीक हैं ?"

"जाँघ छिल गयी है। पीठ में भी दर्द है।" कह कर लिली ने कमर सीधी की। "इन्हें बाहर निकालने में मेरी मदद करो।"

बड़ी कठिनाई से दोनों लिली के पति को बाहर निकाल सके। उसका चेहरा देख कर लिली के मुख से करुण चीख निकल गयी। मुरारी ने भय से आँखें बन्द कर लीं।

लिली के पति का चेहरा लहू-लुहान हो रहा था। विकृति अपनी पराकाष्ठा पर थी। मुरारी ने आँखें बन्द किये ही उसकी नाड़ी देखी। घबरा कर उसकी छाती पर सिर टिका कर हृदय की धड़कनों को सुनने का प्रयास किया। नाड़ी की गति की ही भाँति हृदय की धड़कन भी मौन थी।

"ही इज़ डैड।" मुरारी ने धीमे और दुखी स्वर में कहा।

लिली ने मुँह दूसरी ओर घुमा लिया। पति की लाश की तरफ देखने का साहस न था। टूटे स्वर में पूछा—"आर यू श्योर ?"

"जी हाँ। भगवान की यही इच्छा थी। साहस से काम लीजिये।" मुरारी सान्त्वना देता हुआ सहानुभूति के स्वर में बोला।

"मुझे मदन की मृत्यु का इतना दुख नहीं है जितना धन्धा चौपट हो जाने का।" लिली सिसक कर बोली। "मुझे अकेली समझ कर लोग खुद मालिक बन जायेंगे। हाय, मैं लुट गयी।"

मुरारी आश्चर्य से उसकी ओर देखता रहा। यह कैसी विचित्र है ? इसे पति की मृत्यु का शोक नहीं। चिन्ता है व्यापार की, पैसे की !!

सहसा लिली मुरारी की ओर मुड़ी। उसकी आँखों में मुरारी को नयी चमक दिखायी दी। वह गम्भीर स्वर में बोली—"हम दोनों इस वक्त एक ही नाव में हैं। तुम पुलिस से बचना चाहते हो और मैं धन्धे के नाश से ! एक पत्थर से दोनों चिड़ियाँ क्यों न मारी जायें ?"

"मैं समझा नहीं आपका आशय !"

"जो तरकीब मैंने सोची है उसमें दोनों का भला है। तुम भी पकड़े जाने की मुसीबत से बचे रहोगे और मेरा व्यापार भी चलता रहेगा। बोलो, क्या पसन्द है तुम्हें ? मेरी बात मानोगे या फिर पागलखाने की की हवा खाओगे ?"

पागलखाने के नाम से ही मुरारी काँप गया। नहीं, वह लिली का कहना मानेगा, ज़रूर मानेगा !

"मैं आपकी हर आज्ञा मानूँगा।" मुरारी ने दृढ़ता से कहा।

"ठीक है।" लिली हर्ष से बोली। "झटपट मदन के कपड़े तुम पहन लो और अपने कपड़े मदन को पहना दो।"

"जी……।"

"देरी न करो।" कह कर लिली दूर हट गयी।

मदन के वस्त्र पहन कर जब मुरारी लिली के पास पहुँचा तो लिली प्रसन्नता से खिल पड़ी। हँस कर बोली—"अब कोई नहीं कह सकता कि तुम मदन नहीं हो।"

लिली की बात सुन कर मुरारी का माथा ठनका। वह क्या खेल खेलना चाहती है, इसका कुछ-कुछ अनुमान उसने लगा लिया। घबरा कर बोला—"क्या……?"

"हाँ ! अब तुम मुरारी नहीं, मदन हो—मेरे पति ! मुरारी मर गया। उधर उसकी लाश पड़ी है।" कह कर लिली ने उस तरफ उँगली उठायी जिधर मदन की लाश पड़ी थी।

"लेकिन…मैं…आप…।"

"अच्छी तरह याद रक्खो। कोई पति अपनी पत्नी से आप नहीं कहता। समझे !" लिली ने मीठी झिड़की दी। "अब मेरी बात ध्यान से सुनो। पुलिस को हम यही बतायेंगे कि मरने वाला आदमी मुरारी है। तुम्हें मदन का रोल अदा करना होगा। लखनऊ पहुँच कर हम

अपना धन्धा सँभालेंगे, लाखों कमायेंगे ।"

"अगर लखनऊ में किसी ने पहचान लिया तो···।"

"उसकी फिक्र न करो । लखनऊ शाखा के किसी भी कर्मचारी ने मदन को पहले कभी नहीं देखा । वे मुझे पहचानते हैं । मदन का तो सिर्फ नाम चलता था ।" लिली ने आश्वासन दिया । "अब किसी तरह ऊपर पहुँचने की कोशिश करो ।"

मुरारी ऊपर चढ़ने की चेष्टा करने लगा । लिली कार के समीप आ गयी और एक क्षण बाद ही एक छोटी सी अटैची उठा लायी ।

"इसमें क्या है ?" मुरारी ने पूछा ।

"बाद में मालूम हो जायेगा ।" लिली ने मुस्करा कर उत्तर दिया ।

अत्यन्त कठिनाई से मुरारी ऊपर चढ़ पाया । लिली ने उसे अटैची पकड़ा दी । अटैची ज़मीन पर रख कर वह लेट गया और अपना हाथ नीचे लटका कर लिली को ऊपर खींचने का प्रयास करने लगा । कुछ देर बाद ही वह अपने प्रयास में सफल हो गया । लिली भी ऊपर पहुँच गयी । उसने अटैची अपने हाथ में ले ली ।

सड़क निर्जन थी । पुलिस-स्टेशन में सूचना पहुँचाने की समस्या सामने थी । मदन ने पैदल चलने का सुझाव दिया । लिली ने थके स्वर में असमर्थता प्रकट की । उसने मुरारी को अकेले जाने की भी अनुमति न दी । दोनों सड़क के किनारे बैठ कर किसी के आने की प्रतीक्षा करने लगे ।

पन्द्रह-बीस मिनट बाद ही दूर पर दो बत्तियाँ दिखायी दीं । वे धीरे-धीरे पास आ रही थीं ।

"शायद कोई कार आ रही है ।" लिली समीप आती हुई बत्तियों को देख कर बोली ।

"ट्रक मालूम होता है ।" मुरारी ने धीमे और उदास स्वर में कहा ।

मुरारी का अनुमान सच निकला । उसने ट्रक रुकवा कर ड्राइवर से

कहा कि पुलिस-स्टेशन पर कार-दुर्घटना की सूचना दे दे। ड्राइवर ने आश्वासन देकर ट्रक आगे बढ़ा दिया।

प्रतीक्षा की घड़ियाँ बड़ी कठिनाई से कटती हैं। आधा घण्टा एक युग सा लगा। जब पुलिस की लारी आ गयी तब दोनों ने सन्तोष की साँस ली। मुरारी अधिकतर मौन रहा। लिली ने ही बात की। उसने मुरारी को अपना पति मदन बताया और मदन को मुरारी।

"मुरारी आपका साथी है ?" इन्सपेक्टर ने पूछा।

"जी नहीं ! वह हमें आगरे के पागलखाने के पास मिला था। कार रुकवा कर बैठ गया। अजीब-अजीब बातें कर रहा था।" लिली ने सहज स्वर में उत्तर दिया।

इन्सपेक्टर को आगरे की पुलिस से मुरारी के भागने का समाचार मिल चुका था। बोला—"मुरारी पागलखाने से भागा था ! बेचारा···।"

कई सिपाही खड्ड में उतर गये। कार की जाँच-पड़ताल करके मदन की लाश ऊपर ले आये।

"लाश का पोस्ट-मार्टम होगा।" इन्सपेक्टर ने व्यवहारिक ढंग से कहा।

"आपकी जो इच्छा हो करें।" लिली मुस्करा कर बोली। "मगर हमारा जल्द ही लखनऊ पहुँचना बहुत जरूरी है। हम रुक नहीं सकते। आप चाहें तो लखनऊ का पता नोट कर सकते हैं।"

इण्सपेक्टर ने डायरी में लखनऊ का पता लिख लिया।

"कार का क्या होगा ?" एक सिपाही बीच में बोल पड़ा।

"मैं बीमा-कम्पनी को सूचित कर दूँगी। फिर वह जो चाहे सो करेगी। लिली ने तत्काल उत्तर दिया।

सिपाही संतुष्ट हो गया।

लिली खास बात करने के लिए इन्सपेक्टर को अलग ले गयी। अटैची से सौ-सौ के पाँच नोट निकाल कर उसकी ओर बढ़ा कर मीठे

स्वर में बोली––"हअ लोग प्रतिष्ठित आदमी हैं । बेकार की छीछालेदर······।"

"आप फिक्र न करें किसी बात की !" कह कर इन्सपेक्टर ने नोट अपनी जेब में रख लिये ।

कानूनी खानापूरी होने के बाद मुरारी और लिली ट्रेन द्वारा फर्रुखाबाद पहुँचे । जल-पान-गृह से नाश्ता करके लखनऊ जाने वाली ट्रेन के एक खाली फर्स्ट-क्लास में बैठ गये । जब ट्रेन प्लेटफार्म को छोड़ कर आगे निकल आयी तब दोनों ने सन्तोष की साँस ली । लिली अटैची को तकिया बना कर बर्थ पर लेट गयी । मुरारी बैठा रहा । उसके मस्तिष्क में रह-रह कर बवंडर उठ रहे थे । वह सोच रहा था कि परस्त्री को पत्नी-रूप में देखना महापाप है ! पकड़े जाने से बचने के लिये वह पाप कर रहा है ! उसे ऐसा नहीं करना चाहिए । और उसने दृढ़ निश्चय किया कि वह दुनिया को दिखाने के लिये ही लिली के पति का रोल अदा करेगा । इससे आगे न स्वयं बढ़ेगा और न लिली को ही बढ़ने देगा । उसके लिए लिली एक साधारण नारी के अतिरिक्त और कुछ न होगी ।

सोचते-सोचते उसने लिली की ओर देखा । दिन के प्रकाश में उसका सौंदर्य निखर गया था । वह मुरारी को अपने अनुमान से कहीं अधिक सुन्दर लगी । मुरारी की दृष्टि उसके चेहरे पर जमी थी । लिली की आँखें बन्द थीं । रात के जागरण और दुर्घटना के चिन्ह स्पष्ट थे । सहसा लिली ने आँखें खोल दीं । मुरारी को अपनी ओर देखता पाकर मुस्करा पड़ी । मुरारी बुरी तरह झेंप गया । उसने दृष्टि दूसरी ओर करली ।

अँगड़ाई लेकर लिली ने अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ाकर मीठे स्वर में कहा––"सिगरेट...।"

"जी...?"

"इसमें चौंकने की क्या बात है ? नव्ज़ को ठीक रखने के लिए कभी-कभी पी लेती हूँ ।" लिली के अधरों पर मधुर मुस्कान खेल गयी ।

"मगर सिगरेट मेरे पास कहाँ ?" मुरारी बेबसी के स्वर में बोला ।

"मदन के पास सिगरेट का न होना आठवाँ आश्चर्य है ।" लिली खिलखिला कर हँसती हुयी बोली । "कोट की जेब में देखो ।"

आज्ञाकारी बालक की भाँति मुरारी ने कोट की जेब में हाथ डाला। जेब में सुनहरा सिगरेट-केस और लाइटर पड़ा था ।

लिली ने एक सिगरेट सुलगाकर मुरारी से भी पीने का अनुरोध किया । उसने असमर्थता प्रकट की । लिली उठकर बैठती हुयी चिढ़े हुये स्वर में बोली—"तुम बार-बार यह क्यों भूल जाते हो कि तुम्हें मदन का रोल अदा करना है । छोटी-छोटी बातों में भी अगर सावधान न रहे तो पोल खुल जाने का डर है ।"

मुरारी ने बिना कुछ कहे सिगरेट सुलगा ली । धुँआ निगलकर नाक से निकालता हुआ बोला—"मदन बनने के लिए और क्या-क्या करना होगा ?"

लिली अपनी बर्थ से उठकर मुरारी की बर्थ पर बैठ गयी । शरारत से मुस्कराती हुयी बोली—"तुम्हें तो बच्चों की तरह पाठ पढ़ाना होगा ।"

मुरारी मौन रहा ।

"ड्रिंक करते हो ?"

"नहीं ।"

"सीखो ; बिना उसके काम नहीं चलेगा ।"

"और ?"

'अँग्रेज़ी की गालियाँ सीखनी पड़ेंगी । बात-बात में गाली बकना

मदन की आदत थी।"

"और ?" मुरारी चिढ़ गया।

"और...।" लिली मुरारी के निकट खिसककर बोली। "मुझसे प्यार करना होगा। जानते हो, मदन मुझे जान से ज्यादा चाहता था।"

मुरारी सिगरेट बुझाने के बहाने अलग खिसक गया। कुछ बोला नहीं। मन में जरूर कहा कि मदन तुम्हें चाहे जितना चाहता हो मगर तुम्हारे लिए वह खिलौना मात्र था। बच्चा खिलौना टूट जाने पर रोता भी है। तुमने तो उसके लिये एक आँसू भी नहीं बहाया।

मुरारी की बायीं कलाई पर मदन की घड़ी बँधी थी। उँगली में उसकी अँगूठी थी। विषय बदलने के उद्देश्य से घड़ी देखकर बोला—"लखनऊ पहुँचने में अभी पाँच-छह घन्टे की देर है। अच्छा हो, कुछ देर सो लिया जाये।"

लिली की आँखों में भी नींद झुकी आ रही थी। वह अपनी बर्थ पर जाकर लेट गयी। मुरारी ने उठकर दोनों द्वारों की सिटकनी चढ़ा दी। कोट उतारकर खूँटी पर टाँग दिया। जूते खोलकर बर्थ पर आराम से लेट गया। ट्रेन के हल्के हिचकोले ऐसे लग रहे थे मानों कोई पालने में झुला रहा हो। शीघ्र ही वह सो गया।

जब लिली ने उसे झकझोर कर जगाया तब उसकी आँख खुली। गाड़ी स्टेशन पर खड़ी थी। कोलाहल और चहल-पहल से उसने अनुमान लगाया कि कोई बड़ा स्टेशन है। जूते पहनते हुये उसने पूछा—"क्या लखनऊ आ गया ?"

"कानपुर है।" लिली ने उत्तर दिया। "डेढ़ घंटे में लखनऊ आ जायेगा। भूख तो नहीं लगी है ?"

मुरारी ने बिना किसी झिझक के कह दिया—"लगी तो है।"

लिली ने फल खरीद लिये। उसने एक केला और एक सेव ही खाया पर भूखे मुरारी ने फल डटकर खाये।

गार्ड ने सीटी बजा कर झंडी दिखाई। ट्रेन विशालकाय अजगर की भाँति रेंगने लगी। प्लेटफार्म का कोलाहल पीछे छूट गया।

मुरारी को सिगरेट सुलगाते देख कर लिली हँस पड़ी! मुरारी ने सिगरेट-केस उसकी ओर बढ़ा दिया।

"नो, थैंक्स।" मुस्करा कर लिली बोली। "तुम्हें कार चलाना आता है?"

मुरारी ने नकारात्मक सिर हिला दिया।

"सिखा दूँगी। हाँ, मैं समझती हूँ कि लखनऊ पहुँचने से पहले तुम्हें अपने व्यापार के बारे में बता दूँ। लेकिन पहले एक सवाल पूछना चाहती हूँ। दुनिया में सबसे बड़ी चीज़ क्या है?"

"अभी तक तो प्यार को समझता था लेकिन अब मालूम हो गया कि प्यार एक भोला धोखा है।" मुरारी ने सिगरेट का कश लेकर कहा।

"ख्याल बुलन्द है। सचमुच प्यार नाम की चीज़ दुनिया में है ही नहीं। प्यार तो दोधारा छलावा है जिससे प्यार करने वाला भी घायल होता है और वह भी जिससे प्यार किया जाता है। प्यार की जिन्दगी चन्द क्षणों की होती है। पार्क उसका आदि है और पलँग अन्त! शादी के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है?"

"शादी का आदि पलँग और अन्त पालना है।"

"बहुत खूब! बहुत खूब!!" लिली ताली बजा कर बोली। "हम दोनों के विचार एक ही हैं। खूब निबटेगी जो मिल बैठेंगे दीवाने दो। अब बताओ, दुनिया में सबसे बड़ी चीज़ किसे समझते हो?"

"पैसे को।"

"ठीक है। संसार में सबसे बड़ी वस्तु रुपया है। रुपये के लिए बाप बेटे का खून कर सकता है; बेटा बाप का गला घोंट सकता है; पति पत्नी को फाँसी दे सकता है; पत्नी पति को ज़हर दे सकती है! जब रुपया ही सबसे बड़ी शक्ति है तो उसे पाने के लिए जो कुछ भी किया

जाये, वह कम है। क्यों ठीक है न ?"

"ठीक है।"

"अब गलत फ़हमी की गुंजाइश नहीं है। सुनो, मैं अपने धन्धे के बारे में बताती हूँ। हमारा काम सारे देश में फैला हुआ है। सारा काम पाँच भागों में बँटा है। पूर्वी क्षेत्र, पश्चिमी क्षेत्र, दक्षिणी क्षेत्र, उत्तरी क्षेत्र और मध्य क्षेत्र! उत्तरी क्षेत्र का प्रधान कार्यालय दिल्ली में है। मदन इस क्षेत्र का हैड था। उत्तर प्रदेश, पंजाब और हिमाचल प्रदेश के बड़े-बड़े शहरों में हमारी शाखायें हैं। हर शाखा का एक मैनेजर है। मदन अधिकतर दिल्ली में ही रहता था। कभी-कभी पंजाब का दौरा कर लेता था। उत्तर प्रदेश की शाखाओं का दौरा मैं करती हूँ। कुछ कारणों से हमारा दिल्ली में रहना कठिन हो गया। इसीलिए हम लखनऊ जा रहे थे। सामान ट्रेन से भेज दिया गया था। अब हम अपना हैड आफिस लखनऊ में ही बनायेंगे।"

लिली की बातों से मुरारी ने अनुमान लगाया कि जब इसके व्यापार की शाखायें सारे देश में फैली हुई हैं तो अवश्य करोड़ों का काम होता होगा। वह यह जानने के लिए उत्सुक हो उठा कि लिली का व्यापार किस वस्तु का है। जब उसने झिझकते हुये पूछा तो लिली ने उत्तर दिया—"हम सप्लाई का भी काम करते हैं और ख़रीद-फरोख्त का भी।"

"क्या पूरे व्यापार की तुम्हीं स्वामिनी हो ?"

"केवल उत्तरी क्षेत्र की आमदनी मेरी है। इसी तरह हर क्षेत्र का एक-एक मालिक है। लेकिन हम लोग आपस में पूरे सहयोग और भाई-चारे से काम करते हैं।"

"किस चीज़ की सप्लाई करती हो ?"

"ज़िन्दा माँस की।"

"ज़िन्दा माँस की ?"

"हाँ ! मेरा मतलब माँस की चलती-फिरती पुतलियों से है। हम लड़कियों का व्यवसाय करते हैं।

मुरारी का सिर झनझना उठा। सोचा, लिली मज़ाक कर रही है। उसकी ओर देखा। लिली गम्भीर थी। तो क्या···? क्या सचमुच लिली लड़कियों का व्यापार करती है? हे भगवान! किस मुसीबत में फँस गया? क्या पाप की कमाई से पेट भरना पड़ेगा?

मुरारी को विचार-मग्न देख कर लिली व्यंग्य से बोली—"पड़ गये पाप-पुन्य के चक्कर में? मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि रुपया कमाने के लिए हर काम किया जा सकता है! और फिर और धन्धों की तरह यह भी एक धन्धा है।"

"भोली-भाली लड़कियों को फुसला कर फाँसना और फिर उन्हें गाय-बैल की तरह बेचना धन्धा है?" मुरारी तीखे स्वर में पूछ बैठा।

"हमारे पास समाज से ठुकराई हुई लड़कियाँ ही आती हैं।" लिली आवेश में आकर बोली। "हम उन लड़कियों को सहारा देते हैं जिन्हें तुम्हारा समाज पापिन कह कर दुत्कार देता है। इस व्यवसाय की जिम्मेदारी हम पर नहीं, तुम्हारे समाज पर है, समाज और धर्म के उन ठेकेदारों पर है जो पुरुष के पाप पर तो उँगली तक नहीं उठाते पर नारी की छोटी सी भूल को क्षमा नहीं कर सकते। और समाज के वही स्तम्भ, धर्म के वही रक्षक हमसे नित नये-नये मालों की माँग करते हैं।"

लिली आवेश के कारण हाँफने लगी। मुरारी कुछ बोल न सका। उसके कानों में दिलीप का स्वर गूँज उठा—"वेश्या-वृत्ति समाप्त करने के लिए हमें सामाजिक व्यवस्था और आर्थिक ढाँचे को बदलना पड़ेगा।" फिर सोचा कि सामाजिक व्यवस्था और आर्थिक ढाँचा बदलने की बात करने वाला दिलीप अन्दर से कितना काला निकला। उसने माया को भ्रष्ट किया? मेरे साथ विश्वासघात किया। तो क्या लिली की बात सच है? समाज-सोसायटियों में बड़े-बड़े भाषण देने वाले वास्तव में

पापी हैं ? छोटी सी भूल के लिए किसी भोली युवती को समाज से बहिष्कृत करने वाले समाज और धर्म के ठेकेदार स्वयं छिप-छिप कर व्यभिचार करते हैं ? क्या सचमुच आज की सभ्यता और संस्कृति दो-मुखी हो गयी है ?

"रूप तो बीच की चीज़ है।" कुछ देर बाद लिली संयत होकर बोली। "आदि और अन्त की चीज़ें तो रुपया और रोटी हैं। जिनके पास रुपया है, वे रूप के भूखे हैं; जिनके पास रूप है उन्हें रोटी की भूख है। रोटी के लिए रूप का सौदा होता है।"

मुरारी ने एक सिगरेट सुलगा कर सिगरेट-केस लिली की ओर बढ़ा दिया। लिली ने सिगरेट अधरों में दबा ली। मुरारी ने लाइटर से सिगरेट सुलगा दी।

"तुम सोचते होगे कि औरत होकर में ऐसा काम क्यों करती हूँ।" लिली सिगरेट का धीमा कश लेकर बोली। "मजबूरियों ने इस धन्धे में ला पटका। यह तो तुम समझ ही गये होगे कि मैं पंजाबी हूँ। लाहौर में घर था। भगवान का दिया हुआ सब कुछ था। मुल्क आज़ाद हुआ, मगर टुकड़े होकर ! इन्सान जानवर बन गया। दंगे हुये। माँ-बाप मारे गये। किसी तरह जान तो बच गयी मगर···।"

लिली का स्वर अवरुद्ध हो गया, मुख से सिसकी निकल पड़ी और आँखों से अश्रु-धार बह चली। मुरारी ने उसके आँसू पोंछे। धीरज बँधाया।

"मगर अस्मत न बच सकी।" लिली ने सिसकते हुये कहा। "एक गुण्डे ने घर में डाल लिया। साल भर उस नरक में रही। औरतों की अदला-बदली में दिल्ली आ गयी लेकिन बेघरबार, बेसहारा बन कर। ज़िन्दगी दूभर हो गयी। नौकरी तलाश की मगर हर जगह जिस्म के भूखे भेड़िये दिखाई दिये। भले घर की औरतें मेरी परछाई से डरती थीं। उनकी निगाह में मैं पापिन थी। उनकी नफ़रत ने मुझे पागल कर

दिया। आवारा औरतों की तरह सड़कों पर घूमने लगी। लोग हमदर्दी दिखाते मगर उस हमदर्दी के पीछे मुझे पाने की हविस होती। मैं समझ गयी कि शरीफ़ बन कर ज़िन्दा रहना बहुत मुश्किल है। ज़िन्दा रहने के लिए रोटी चाहिए और रोटी के बदले में देने के लिए रुपया। रुपया था नहीं। रुपया पाने के लिए रूप और शरीर को बेचना पड़ा। उन्हीं दिनों मदन से मुलाकात हुयी। मैं उसी के साथ रहने लगी; उसके काम में हाथ बटाने लगी। और एक दिन मैं उसकी व्याहता पत्नी बन गयी। अब तुम्हीं बताओ, इसमें मेरा दोष है या तुम्हारे अन्धे समाज का ?"

लिली का प्रश्न विशाल अजगर सा उसकी आँखों के सामने रेंग गया। उसने मन्द स्वर में कहा--"दोष और किसी का भी हो, तुम्हारा नहीं है।"

मुरारी के उत्तर से लिली को सन्तोष हुआ। हँसने की चेष्टा करती हुई बोली--"बहुत जल्द ही तुम्हारा रहा-सहा भ्रम भी दूर हो जायेगा जब तुम देखोगे कि हमारे ग्राहकों में कितने बड़े-बड़े नेता, व्यापारी, ताल्लुकेदार और महन्त हैं। चाहो तो लड़कियों से उनकी कहानियाँ भी सुन लेना। समाज और धर्म के अत्याचारों की नंगी तस्वीर सामने आ जायेगी।"

उसके बाद लिली ने लखनऊ के व्यवसायिक संगठन के बारे में बताया। उसने कहा कि लखनऊ शाखा के मैनेजर का नाम श्रीधर है। वह बहुत ही स्वामिभक्त, सुलझा हुआ और व्यवसाय के दाँव-पेंचों में पूरी तरह निपुण व्यक्ति है। व्यवसाय का प्रधान कार्यालय एक विशाल कोठी में है। उसी कोठी में श्रीधर रहता है ओर वहीं उन दोनों को भी रहना है। उसी में कुछ लड़कियाँ भी रहती हैं। वे लड़कियाँ विशेष ग्राहकों के लिए हैं। शहर के घने भाग में एक होटल है उस में भी कुछ लड़कियाँ रहती हैं। वे मध्यम वर्ग के ग्राहकों के लिए हैं। इसके अति-

रिक्त कुछ सस्ते अड्डे हैं रिक्शे-ताँगे वाले, मज़दूर, कुली आदि पहुँ-चते हैं।

"इतनी लड़कियाँ मिलती कहाँ से हैं ?" मुरारी ने उत्सुकता से पूछा।

"इकनामिक्स पढ़ी है ?" लिली ने हँस कर प्रश्न किया।

मुरारी ने 'हाँ' कह दिया मगर उसकी समझ में न आया कि अर्थ-शास्त्र से उसके प्रश्न का क्या सम्बन्ध है।

"हमारा व्यवसाय एकदम वैज्ञानिक ढंग पर है। ऊपरी तौर पर दो वर्ग ही दिखाई देते हैं—उपभोक्ता और माल–कन्ज्यूमर्स और कमो-डिटी। लेकिन वास्तव में इस चक्र में और कई वर्ग हैं। हमारा काम माँग की पूर्ति करना है। कुछ और लोग हैं जो माल की खोज में इधर-उधर भटकते रहते हैं और प्राप्त करके हमारे पास लाते हैं। ऐसे लोगों को प्रोक्योरर्स कहा जा सकता है। अब प्रश्न रहा प्राप्ति-स्थान का ! विधवाश्रम, तीर्थ-स्थान, मेला-दशहरा को हम इकनामिक्स की भाषा में भूमि कह सकते हैं। यहीं से हमें माल प्राप्त होता है।"

लिली की व्याख्या सुन कर मुरारी को हँसी आ गयी।

मुरारी के हास्य की चिन्ता किये बिना ही लिली कहती गयी—"नयी शहरी लड़कियों को हम प्रधान-अड्डे पर रखते हैं। साल-दो साल बाद उन्हें होटल में भेज दिया जाता है और होटल की लड़कियाँ सस्ते अड्डों पर पहुँचा दी जाती हैं।"

"सस्ते अड्डों की लड़कियों का क्या होता है ?"

"उन्हें सस्ते दामों में बेच दिया जाता है।"

मुरारी कुछ देर मौन रहा। फिर पूछा—"ग्राहक अड्डों पर स्वयं पहुँच जाते हैं या……।"

"होटलों के बैरे, टैक्सी-ड्राइवर, ताँगे-रिक्शे वाले हमारे एजेंट हैं। उनका काम है ग्राहकों को अड्डों पर पहुँचाना। इसके बदले में उन्हें

उचित कमीशन मिलता है।"

"मगर यह काम तो गैरकानूनी है। पुलिस वाले कुछ नहीं करते ?"

"चाँदी के जूते में बहुत ज़ोर होता है।" कह कर लिली ने अटैची हाथ में उठा ली।

ट्रेन लखनऊ स्टेशन के प्लेट फार्म पर पहुँच कर रुक गयी।
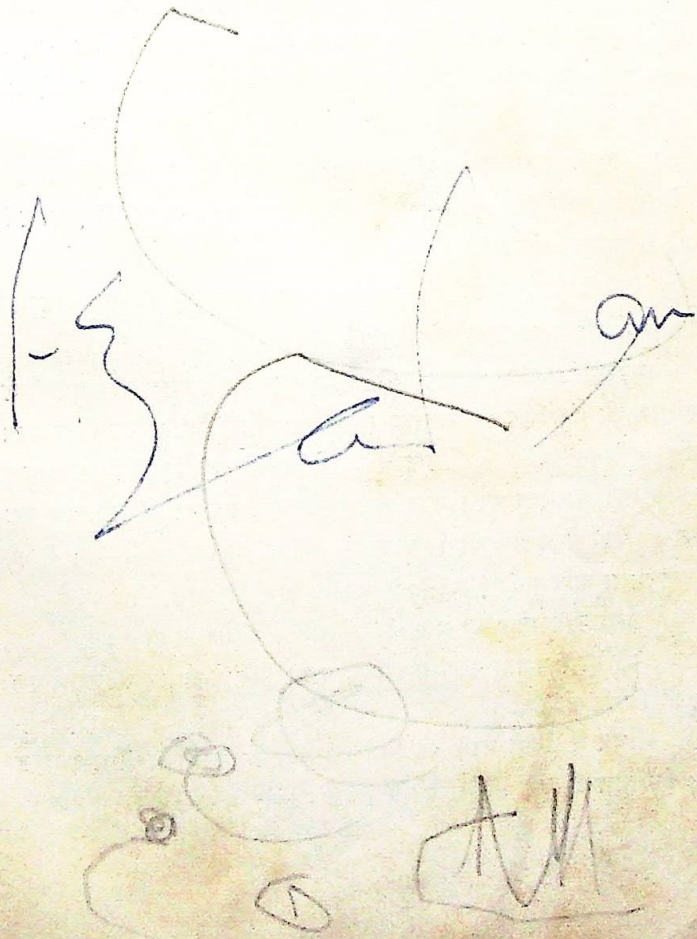
(२)

जिस कोठी के सामने मुरारी और लिली की टैक्सी रुकी वह काफी बड़ी और सुन्दर थी। चारों तरफ बड़े-बड़े लान थे। बीच में तीन मंज़िल की इमारत थी। लगता था जैसे किसी नवाब का महल हो। इमारत के सामने वाले लान के मध्य में सँगमरमर का फव्वारा बना था। क्यारियों में सफेद, गुलाबी, लाल गुलाब के फूल लगे थे। अशोक के घने वृक्षों की पँक्तियाँ बहुत आकर्षक लग रही थीं!

जैसे ही टैक्सी रुकी, श्रीधर तेज़ी से बाहर आया। टैक्सी का द्वार खोलकर लिली से बोला—"आप तो कार से आने वाली थीं! सबेरे से ही इन्तज़ार कर रहा हूँ।"

"रास्ते में एक्सीडेंट हो गया। इसीलिये ट्रेन से आना पड़ा।" लिली टैक्सी से उतरकर बोली।

मुरारी भी उतर पड़ा। श्रीधर ने मुरारी को देखा और मुरारी ने श्रीधर को। श्रीधर तीस-बत्तीस साल का जवान था। रँग गोरा था। बाल घुँघराले थे। मूँछें सफाचट होने के कारण चेहरे पर कुछ-कुछ ज़नानापन आ गया था। गठा हुआ शरीर पेंट-बुशशर्ट में खूब फब रहा था। पैरों में चप्पल थी। दृष्टि में अजीब गहराई थी। मुरारी की अन्तरात्मा काँप गयी! कहीं उसे कुछ शक न हो जाये...।

"हमारा सामान आ गया?" लिली ने श्रीधर से पूछा।

"जी हाँ! कमरा ठीक कर दिया गया है।" कहकर श्रीधर ने एक कुंजी लिली को देदी।

श्रीधर ने टैक्सी वाले का किराया अदा कर दिया। तीनों इमारत के बड़े हाल में घुसे। हाल की सजावट देखकर मुरारी दंग रह गया।

"सब ठीक-ठाक है ?" लिली ने अटैची श्रीधर को थमाकर पूछा।

"जी हाँ !" श्रीधर ने उत्तर दिया। "कल ही कुछ नया माल कलकत्ते से आया है।"

हाल पार करके तीनों ऊपर जाने के लिये सीढ़ियाँ चढ़ने लगे।

"बीमा कम्पनी को आज ही एक्सीडेंट के बारे में लिख देना। कार मैनपुरी के पास एक खड्ड में पड़ी है।"

"बहुत अच्छा।" श्रीधर ने आज्ञाकारी सेवक की भाँति कहा।

दूसरी मंजिल में भी एक बड़ा हाल था। वह नीचे वाले हाल की अपेक्षा था तो कुछ छोटा पर सजावट कहीं अधिक थी। फर्श पर कालीन बिछे थे। कई बड़े-बड़े कोच कायदे से रक्खे थे। बड़े-बड़े फूलदानों में ताजे फूल महक रहे थे। दीवारों पर सुन्दर तैल-चित्र टँगे हुये थे।

हाल के दाँये-बाँयें एक-एक गैलरी थी। हर ओर पाँच-पाँच कमरे थे जिनमें लड़कियाँ रहती थीं। जैसे ही लिली हाल में पहुँची सात लड़कियाँ दौड़ती हुयी हाल में आगयीं।

"नमस्ते दीदी !" सबने हाथ जोड़कर एक साथ कहा।

"नमस्ते।" लिली ने मुस्कराकर कहा। फिर पूछा "श्रीधर कोई कष्ट तो नहीं देता ?"

"नहीं।" सात कण्ठों का समवेत स्वर गूँज उठा।

"अच्छा-अच्छा ! अब जाओ अपने-अपने कमरों में।" श्रीधर कृत्रिम रोष से बोला।

लड़कियाँ खिलखिलाकर हँसती और परस्पर चुहल करती हुयीं हाल से चली गयीं।

तीसरी मंजिल की सीढ़ियाँ चढ़ते हुये लिली ने श्रीधर से पूछा—"इनमें कलकत्ते की लड़कियाँ नहीं थी ?"

"नहीं ! वे कमरों से निकलती ही नहीं।"

"हुँ ! बंगाली हैं ?"

"दो बंगाली हैं; एक एँग्लो इन्डियन है। बंगालिनें तो सीधी-साधी हैं मगर एँग्लो इन्डियन बहुत तेज-तर्रार है ।"

तीसरे खंड में एक बड़े कमरे में कार्यालय था। मेज़,कुर्सियाँ, अल्मारियाँ, टाइप-रायटर आदि सामान यथास्थान रक्खा था। उसके सामने वाले कमरे का ताला लिली ने खोला। तीनों अन्दर गये। कमरा काफी बड़ा था। फर्श पर सुन्दर दरी बिछी थी। दो बड़े-बड़े पलँगों पर स्वच्छ बिस्तर बिछे थे। बीच में गोल मेज़ थी। पास ही चार कुर्सियाँ पड़ी थीं। मेज़ के पास एक छोटे रैक पर टेलीफोन रक्खा था। एक कोने में बड़ा पिआनो था। दीवारें हल्के नीले रँग से पुती थीं। कई तैल चित्र टँगे थे। दाहिनी ओर एक खिड़की थी। उस पर जालीदार रेशमी पर्दा पड़ा था। सामने की दीवार के दायें कोने पर एक द्वार था जो स्नानगृह तथा शौचालय में खुलता था। बायीं ओर दूसरा द्वार था जो दूसरे कमरे में खुलता था। तीनों दूसरे कमरे में गये। वह अधिक बड़ा नहीं था। फर्श पर चार सूटकेस रक्खे थे। कोने में शृंगार करने की मेज थी जिस पर स्नो, पाउडर, क्रीम, लिपिस्टिक, कंघा, ब्रुश, तेल आदि ठीक से रक्खा था। कुछ देशी तथा विलायती इत्रों की शीशियाँ भी थीं। पास ही गद्दीदार छोटा गोल स्टूल पड़ा था। एक दीवार में लोहे की छोटी तिजोरी जड़ी थी। लिली ने श्रीधर से अटैची लेकर उसे खोला और उसमें से चाभियों का गुच्छा निकालकर तिजोरी खोली। तभी मुरारी ने देखा कि अटैची नोटों से भरी है। वह स्तम्भित रह गया। लिली ने अटैची तिजोरी में रखकर तिजोरी बन्द करदी और और गुच्छा कमर में खोंस लिया।

बड़े कमरे में आकर श्रीधर ने पूछा—"आप खाना नीचे खायेंगी या...।"

"यहीं भेज देना ! आध घण्टे बाद। इनके लिए ह्विस्की और सोडा भी।"

श्रीधर द्वार भेड़कर चला गया। लिली मुरारी को फिर छोटे कमरे में ले गयी और दो सूटकेसों की ओर संकेत करके बोली—"ये तुम्हारे हैं। समझे !"

मुरारी ने सिर हिला दिया।

चाभियों का गुच्छा मुरारी को थमाकर लिली बोली—"खोलकर देख लो।"

मुरारी ने सूटकेस खोलकर देखे। एक में गर्म कपड़े थे और दूसरे में सूती तथा रेशमी। सभी वस्त्र कीमती थे और अच्छे दर्जी द्वारा सिले गये थे। मुरारी ने एक रोयेंदार तौलिया और पहनने के लिये वस्त्र निकालकर सूटकेस बन्द कर दिये। गुच्छा लेकर लिली ने अपना सूटकेस खोला। वस्त्र और तौलिया निकाल कर सूटकेस बन्द कर दिया। गुच्छा कमर में खोंसकर वह नहाने चली गयी।

मुरारी श्रृंगार करने की मेज के पास खड़ा होकर बड़े दर्पण में अपना चेहरा देखने लगा। बाल रूखे और बिखरे हुये थे। कपोलों पर तीन दिन की बढ़ी हुयी दाढ़ी थी। गालों पर हाथ फेरकर उसने दाढ़ी बनाने का विचार किया। मगर सेफ्टीरेज़र कहाँ से मिले? सूटकेस में था नहीं! शायद मदन रखना भूल गया हो या फिर नाई से दाढ़ी बनवाता हो।

मुरारी श्रृंगार करने की मेज की दराजें खोल-खोलकर देखने लगा। वे खाली थीं। उसने अपना चेहरा फिर दर्पण में देखा। दाढ़ी बनाना ज़रूरी था!

मगर सेफ्टीरेजर...?

बाहर के कमरे में आकर वह बाथ-रूम के द्वार के पास गया और ऊँचे स्वर में बोला—"अरे सुनती हो...?"

"क्या है ?" अन्दर से लिली की आवाज़ आयी ।

"शेव करना चाहता हूँ । मगर शेविंग सेट नहीं मिल रहा है ।"

"पलँग के पास घण्टी का बटन लगा है । दबा दो ! नौकर आजायेगा; उससे कह देना ।" लिली ने अन्दर से ऊँचे स्वर में कहा ।

मुरारी ने बटन दबा दिया । घण्टी कहीं बजी या नहीं, वह जान न सका । पलँग पर बैठकर वह नौकर की प्रतीक्षा करने लगा । एक मिनट बाद ही द्वार पर किसी ने बाहर से धीमी दस्तक दी ।

"आजाओ !" मुरारी ने आदेश दिया ।

सफ़ेद वर्दी पहने हुये एक नौकर अन्दर आकर खड़ा हो गया ।

"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"श्यामू, सरकार ।" हाथ जोड़कर नौकर ने सादर कहा ।

"देखो श्यामू, मुझे शेव करने का सामान चाहिए । कितनी देर में ला सकते हो ?"

"एक मिनट में, सरकार !"

"बाज़ार क्या पास ही है ?"

"बाज़ार जाने की जरूरत नहीं है, सरकार ! मैनेजर साहब के पास सब चीजें रहती हैं ।" कहकर श्यामू चला गया । दो मिनट के अन्दर ही वह एक सुन्दर शेविंग-सेट ले आया ।

लिली स्नान करके बाहर आ गयी । वह गीले बालों को तौलिये से रगड़-रगड़कर सुखा रही थी । खुले हुये काले केशों के बीच उसका मुखड़ा घटाओं के बीच चाँद सा लग रहा था । शेव करके मुरारी भी स्नान करने गया । बाथ रूम में मंजन, ब्रुश, साबुन, तेल आदि रक्खा था । फर्श चिकने-सफेद टायल्स का था । फव्वारे के नीचे खड़ा होकर वह देर तक नहाता रहा । शीतल जल की फुहार ने उसकी सारी थकावट और उदासी दूर कर दी ।

दो नौकरों ने भोजन की सामग्री मेज़ पर सजा दी । श्रीधर ह्विस्की

सोडा और पाँच सौ पचपन सिगरेट का टिन रख गया । लिली का संकेत पाकर नौकर भी चले गये । लिली और मुरारी कुर्सियों पर बैठ गये ।

लिली ने थोड़ी सी व्हिस्की गिलास में ढालकर सोडा मिलाया । गिलास मुरारी के हाथों में थमाकर बोली—"पी जाओ ।"

"मैंने कभी...।"

"यह न भूलो तुम मदन हो ।" लिली स्वर को दबाकर बोली । "पी जाओ ! शुरू में बुरी लगेगी । फिर आदी हो जाओगे ।"

मुरारी आँखे बन्द करके और साँस रोक कर पूरा गिलास एक ही घूंट में पी गया । उसे लगा कि कण्ठ से लेकर पेट तक एक लकीर सी हो गयी है । मुँह का ज़ायका ठीक करने के लिए वह थाली पर टूट पड़ा ।

लिली भी मुस्कराकर खाने लगी ।

कुछ देर बाद मुरारी को सरूर आने लगा । लिली ने थोड़ी सी मदिरा और दी । मुरारी पी गया । इस बार मदिरा अपेक्षाकृत कम तीखी लगी ।

"खाना बहुत स्वादिष्ट है ।" मूड में आकर मुरारी बोला ।

"रसोइया बहुत पुराना है ।" लिली ने उत्तर दिया । फिर पूछा—"मांस खाते हो ?"

"अभी तक तो नहीं खाया, मगर खा सकता हूँ—सब कुछ खा सकता हूँ ।" मुरारी अपनी तरंग में बोला ।

लिली के अधरों पर हास्य खेल गया ।

भोजन समाप्त हो गया । लिली ने घण्टी का बटन दबाया । नौकर आकर थाली, गिलास, सोड़े की खाली बोतलें उठा ले गये । लिली पलंग पर लेट गयी । मुरारी टहलने लगा ।

"सब लड़कियाँ तुम्हें दीदी क्यों कहती हैं ?" सिगरेट सुलगा कर

मुरारी ने पूछा।

"डर से नहीं कहती हैं, इसका यकीन दिलाती हूँ।"

"फिर क्यों कहती हैं ?"

"क्योंकि मैं उन्हें बड़ी बहन का स्नेह देती हूँ। अच्छे से अच्छा खाना, कपड़े घूमने-फिरने की सुविधा..."

लिली का वाक्य अधूरा रह गया। द्वार पर किसी ने दस्तक दी।

"आ जाओ।" कह कर लिली बैठ गयी।

श्रीधर अन्दर आया। पूछा--"और कुछ चाहिए ?"

"नहीं। अब हम आराम करेंगे। वी शुड नाट बी डिस्टर्ब्ड। और हाँ, तुम्हारी कार ठीक है न ?"

"जी हाँ।"

"जरूरत पड़ेगी।" लिली बोली। फिर कुछ सोच कर कहा—"मगर तुम्हारी कार तो बड़ी है। सुनो, आज ही एक छोटी कार और खरीद लो।"

"बहुत अच्छा।" कह कर श्रीधर बाहर चला गया। वह द्वार बन्द कर गया था।

मुरारी की पलकें भारी हो रही थीं। वह पलँग पर लेट गया।

"छोटी कार तुम्हारे लिए ली है।" लिली पलँग पर लेट कर बोली—"तुम्हें ड्राइव करना सिखाना है।"

"नींद आ रही है।" जमुहाई लेकर मुरारी ने कहा।

"मदन का रोल कैसा लग रहा है ?" लिली ने अँगड़ाई लकर पूछा।

"शानदार। अब सोने दो।" कह कर मुरारी ने करवट बदली और एक मिनट बाद ही नींद के सागर में डूब गया।

पिछले रात के जागरण तथा मदिरा के प्रभाव के कारण मुरारी काफी देर तक सोता रहा। जब आँख खुली तो शाम हो चुकी थी और

धरती पर धीरे-धीरे अँधेरा उतरने लगा था। अँगड़ाई लेकर उठ बैठा। लिली का पलँग खाली था। सोचा वह नीचे चली गयी होगी। हाथ-मुँह धोकर वस्त्र बदले। तभी दृष्टि मेज़ पर रक्खी व्हिस्की की बोतल पर पड़ी। पास ही गिलास, सोडा और 'ओपनर' था। सोचा नीचे जाने के पूर्व थोडी सी पी लेनी चाहिये। शायद इसीलिए लिली ने सोडा और गिलास भिजवाया है। थोड़ी सी मदिरा गिलास में डाल कर सोडे की बोतल खोली। सोडा मिला कर मदिरा पीने लगा। गिलास खाली करके सिगरेट के टिन से एक सिगरेट निकाल कर सुलगायी और फिर गुनगुनाता हुआ कमरे के बाहर आ गया।

नीचे का हाल बिजली से जगमगा रहा था। सजी-सँवरी लड़कियाँ परस्पर हँसी-मज़ाक कर रही थीं। लिली वहाँ भी नहीं थी। उसे देख कर लड़कियों का हास-परिहास रुक गया। वे सहमी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगीं।

"लिली कहाँ है ?" मुरारी ने एक कोच पर बैठ कर पूछा।

"दीदी हज़रतगंज गयी हैं।" कई कण्ठों का समवेत स्वर गूँज गया।

मुरारी ने ध्यान से लड़कियों की ओर देखा। कुल सात थीं। तीन साड़ियाँ पहने थीं; दो शलवार-कुर्ता, एक गरारा-कुर्ता और एक स्कर्ट-ब्लाउज़। उसने अनुमान लगाया कि साड़ी पहने हुये लड़कियाँ उत्तर प्रदेश की हैं और शलवार-कुर्ता वाली पंजाब की! गरारा-कुर्ता वाली सूरत-शक्ल से मुसलमान जँची और स्कर्ट ब्लाउज़ वाली ईसाई। सभी युवा, सुन्दर और चुस्त और आकर्षक थीं। वस्त्र भी ढँग के थे और मेक-अप भी कायदे का था। हाँ, ईसाई लड़की ने अपने अधरों को आवश्यकता से अधिक गहरा लाल कर लिया था। पर बुरी वह भी नहीं लग रही थी।

मुरारी ने संकेत से सबको अपने पास बुला लिया। वे उसके आस-पास बैठ गयीं और कुतूहल से उसकी ओर देखने लगीं। मुरारी ने सोचा

कि इनसे बात करनी चाहिए। समय भी कट जायेगा और इनके बारे में जानकारी भी हो जायेगी।

"व्हाट इज़ यौर नेम ?" मुरारी ने ईसाई लड़की से पूछा।

"मार्था।" लड़की ने कोमल स्वर में उत्तर दिया।

मार्था की अवस्था अठारह वर्ष से कम नहीं थी। रंग भी गोरा था। बाल घुँघराले थे। स्वर में अजीब मिठास थी। आँखों में सदैव हास्य तैरता रहता था। मुरारी को उसका स्वभाव बहुत चँचल लगा।

"और तुम्हारा ?" मुरारी ने उस लड़की की ओर देखा जो गरारा-कुर्ता पहने थी।

"नाचीज़ को नूरजहाँ कहते हैं।"

"बहुत खूबसूरत नाम है।"

"और मैं.........?" नूरजहाँ ने खड़ी होकर गर्दन को झटका देते हुये पूछा।

नूरजहाँ वास्तव में सबसे सुन्दर थी। गुलाबीपन लिए हुये गोरा रंग, सुती हुयी लम्बी नाक, पतले अधर, बड़ी आँखे, लम्बे-काले केश, इकहरा बदन, अल्हड़ यौवन, शोख अदा!

"तुम सचमुच नूरजहाँ हो।" मुरारी हँस कर बोला।

"शुक्रिया।" कह कर नूरजहाँ अपने स्थान पर बैठ गयी।

शलवार-कुर्ता वाली लड़कियों ने अपने नाम शीला और बीना बताये। दोनों पंजाबी थीं। शीला की अवस्था बीस वर्ष की थी और बीना की उससे एक वर्ष कम। दोनों के शरीर भरे हुये थे। बातचीत की शैली में पंजाबीपन की झलक थी।

मुरारी फिर उन लड़कियों की ओर बढ़ा जो साड़ियाँ पहने थीं। एक लड़की काफी लम्बी थी और दूसरी ठिगनी थी। तीसरी लड़की का कद ठीक था। वह काफी चुलबुली थी और जब मुरारी अन्य लड़कियों से बात कर रहा था तब वह बराबर हँसती जा रही थी।

"तुम्हारा नाम जान सकता हूँ ?" मुरारी ने पहले उसी से पूछा।

कोई उत्तर न देकर उसने अपनी साड़ी का अंचल मुँह में ठूँस लिया।

"वैसे नाम तो इसका छाया है मगर हम सब ने इसका नाम छबीली रक्खा है।" शरारत के स्वर में शीला बोली।

छाया ने शीला की बाँह में इतनी जोर की चुटकी ली कि शीला 'सी' 'सी' करके चीख पड़ी।

"बहुत शैतान हो तुम !" मुरारी ने छाया की ओर देख कर कहा।

छाया ने मुरारी की ओर देखा। मुरारी चौंक पड़ा। उसे लगा कि छाया की आँखों की गहराई में अजीब उदासी है। तो क्या बाहर से शोख चंचल और शैतान दिखाई देने वाली छाया के दिल में दर्दीले तूफान सोये पड़े हैं ? क्या हास्य-हिम के नीचे ज्वालामुखी दबा है ? उसने अनुभव किया कि छाया की आँखे उससे मूक भाषा में कह रही हैं कि ऊपरी चंचलता के पर्दे को हटा कर अन्दर की पीड़ा को पहचानने की कोशिश करो ! मुरारी ने घबरा कर आँखें दूसरी ओर कर लीं !

"तुम्हारा परिचय·········।" मुरारी ने लम्बी लड़की की ओर देख कर पूछा।

"मेरा नाम सरोज है।"

"और मेरा शान्ति।" ठिगनी लड़की बीच में ही बोल पड़ी।

"मगर हम दोनों ने इनके नाम कुछ और ही रक्खे हैं।" खिलखिला कर हँसने के बाद नूरजहाँ बोली।

"अच्छा······! क्या नाम रक्खे हैं ?"

"टाली और शार्टी।"

और फिर हँसी और कहकहों का दौर शुरू हो गया। बेचारी सरोज और शान्ति लजा गयीं।

मुरारी अभी तक समझता था कि शरीर का व्यवसाय करने वाली लड़कियाँ बहुत दुखी और उदास रहती होंगी मगर इन लड़कियों को

प्रसन्न और अतीव उत्साह पूर्ण देख कर उसे आश्चर्य हुआ। सोचा, शायद यह हर्ष-उत्साह दिखावटी हो! अच्छे वस्त्र और भोजन को पाकर वे अपनी अन्तरात्मा को झुठलाने की चेष्टा करती हों! उसकी इच्छा हुयी कि हर एक से उसके पिछले जीवन के बारे में पूछे। फिर विचार किया कि पहले ही दिन अधिक उत्सुकता दिखाना ठीक नहीं। हर एक लड़की से अलग-अलग धीरे-धीरे सब कुछ पूछने का निश्चय करके वह उठ खड़ा हुआ। तभी ध्यान आया कि कलकत्ते से आने वाली नयी लड़कियों से भी मिला जाये।

"कलकत्ते वाली लड़कियाँ कहाँ हैं?" उसने पूछा।

"अपने-अपने कमरों में।" शीला बोली।

"उनके कमरे किधर हैं?"

"चलिये, बता दूँ।" कह कर शीला साथ हो गयी।

शीला उसे दाहिनी गैलरी में ले गयी। वहाँ आमने-सामने कई कमरे बने थे। तीन बन्द कमरों की ओर इशारा करके शीला ने कहा—

"इन्हीं में हैं। अब जाऊँ?"

मुरारी को श्रीधर के शब्द याद आ गये। श्रीधर ने ऐंग्लो इन्डियन लड़की को तेज़-तर्रार बताया था। मुरारी ने निश्चय किया कि पहले उसी से मिलना चाहिए।

"ऐंग्लो इन्डियन लड़की किस कमरे में है?" उसने दबे स्वर में शीला से पूछा।

"बीच वाले में।" कह कर शीला चली गयी।

मुरारी गैलरी में अकेला रह गया। दिल ने कहा—क्यों बेकार की बला मोल ले रहे हो। लौट चलो। न जाने क्या बकने लगे। मगर मुरारी ने दिल की आवाज अनसुनी कर दी। हिम्मत करके आगे बढ़ा और बीच वाले कमरे के द्वार पर धीरे से दस्तक दी।

"हू इज इट?" अन्दर से प्रश्न हुआ।

"प्लीज़ ओपिन द डोर।" मुरारी ने धीमे और मीठे स्वर में कहा। कमरे के अन्दर कुछ हलचल हुई। पदचाप द्वार के निकट आयी और फिर द्वार खुल गया।

मुरारी ने देखा कि द्वार खोलने वाली लड़की सत्तरह-अठारह वर्ष की दुबली-पतली युवती है। बाल कन्धों पर लहरा रहे हैं। वह स्कर्ट और ब्लाउज पहने है और उसकी ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देख रही है।

मुरारी अन्दर चला गया। साफ-सुथरा कमरा था। एक किनारे पलँग पड़ा था। दूसरी ओर मेज-कुर्सी थी। मेज पर शृंगार का सामान और दर्पण रक्खा था।

"व्हाट डू यू वान्ट ?" लड़की ने तीखे स्वर में पूछा।

"यौर नेम, प्लीज़।"

"व्हाट द हेल हैव यू टु डू विथ माई नेव ? आई एम यंग एन्ड प्रैटी एन्ड विलिंग टु सेल माई बाडी एन्ड सोल। इज़ इट नाट एनफ़ ?" वह लड़की कमर पर दोनों हाथ रख कर, सीना तान कर, चुनौती की मुद्रा में खड़ी हो गयी।

"सिगरेट...?" कहकर मुरारी ने अपना सिगरेट केस उसकी ओर बढ़ा दिया।

"थैंक्स" कहकर उसने सिगरेट लेली। मुरारी ने दूसरी सिगरेट अपने अधरों में दबाकर लायटर से दोनों सिगरेटें सुलगा दीं।

"सिट डाउन !" सिगरेट का लम्बा कश खींचकर लड़की पलँग पर बैठ गयी।

मुरारी कुर्सी पलँग के समीप खिसका कर बैठ गया। उसने लड़की की ओर ध्यान से देखा। चेहरा पीला था ! आँखों के नीचे काले दाग़ थे। कहीं यौवन की लालिमा नहीं, ताजगी नहीं। वह मुरझाये हुये गुलाब के फूल की तरह लग रही थी ! मुरारी को लगा कि उसके शरीर का सारा रस और रक्त जैसे चूस लिया गया है।

"तुम हिंदुस्तानी जानती हो ?"

"यस ! थोड़ा-थोड़ा ।"

"तुम्हें अपना नाम बताने से चिढ़ क्यों है ?" मुरारी ने मीठे स्वर में पूछा ।

"हम अपना नाम भूलना माँगता । नयी जिन्दगी शुरू करना माँगता ।"

"तब कोई नया नाम रख लो ।" मुरारी ने सुझाव दिया ।

लड़की विचार-मग्न हो गयी । मुरारी का प्रस्ताव उसे अच्छा लगा । मुस्कराने की चेष्टा करती हुई बोली—"ठीक है ! हमारा नया नाम केली रहा !"

"गुड नेम !" कहकर मुरारी मौन रहा ।

"आप हमको इम्पर्टिनेंट समझता ।" केली सिगरेट बुझाकर बोली । "मगर हमारा कसूर नहीं । सरकम्सटान्सेज़ हमको ऐसा बना दिया । आप हमारी क्या उमर समझता ?"

"यही–कोई सत्तरह-अठारह की ।"

"मगर हम अभी से बूढ़ा माफिक लगटा । जानना माँगटा, क्यों ?"

मुरारी ने सिर हिला दिया ।

"पहले हमको व्हिस्की पिलाओ । हम कल से प्यासा मरटा ।" केली ने मुरारी का मुँह सूंघकर कहा । "आप अकेला ड्रिंक करटा । दिस इज़ बैड—वेरी बैड ! गिव मी वन पेग, प्लीज़ ! आई प्रे । आई एम डाइंग विदाउट इट !"

मुरारी ने केली की सूनी आँखों में याचना की करुण झाँकी देखी ; वह समझ गया कि केली मदिरा पीने की आदि है और उसके अभाव में उसको बहुत कष्ट हो रहा है । वह केली का पूर्व-इतिहास जानने का इच्छुक था । अतः केली को आश्वासन देकर ऊपर कमरे में गया । व्हिस्की की बोतल और गिलास लेकर वह तुरन्त ही केली के पास पहुँच गया ।

मदिरा देखकर केली की आँखों में हर्ष की चमक आ गयी। उसने झपट कर बोतल मुरारी से छीन ली।

"सोडा मँगाता हूँ...।"

"डैम सोडा···।" कहकर उसने थोड़ी मदिरा गिलास में ढाली और फिर उसे एक घूंट में ही पी गयी। गिलास मेज़ पर रखकर उसने मुरारी से सिगरेट माँगी।

"इस तरह ड्रिंक करने से तुम मर जाओगी।" सिगरेट सुलगाते हुये मुरारी बोला।

"डैथ इज़ लवलियर दैन लायफ!"

मुरारी इस बात से अनभिज्ञ नहीं था कि कभी-कभी मौत ज़िन्दगी से अधिक प्यारी बन जाती है। उसका हृदय केली के प्रति सहानुभूति से भर गया। वह भारी मन से कुर्सी पर बैठ गया।

थोड़ी सी मदिरा और पीकर केली पलँग पर बैठ गयी। मदिरा के प्रभाव से उसका चेहरा चमकने लगा। सिगरेट का धुँआ छोड़कर गम्भीर और उदास स्वर में बोली—"हमारी जिन्दगी भी एक धुँआ है। ए डार्क ऐन्ड थिक स्मोक!"

"आग के बिना धुँआ नहीं होता, मिस केली!" मुरारी सहानुभूति के स्वर में बोला। "लगता है तुम्हारी पिछली ज़िन्दगी दुःख और दर्द की आग से झुलसी हुई है। क्या मुझे अपनी कहानी सुनाओगी?"

"यस! आप पहला आदमी है जिसने हमसे हमदर्दी दिखाया, मीठा बोला। हम आपको अपना स्टोरी जरूर सुनायेगा।"

और फिर केली अपनी कहानी सुनाने लगी। जब वह दस-ग्यारह साल की थी तभी उसकी माँ का देहान्त हो गया था। पिता शराबी और जुआरी था। थोड़े दिनों में ही उसने रेस और मदिरा में वे सब रुपये फूँक दिये जो माँ ने उससे छिपाकर जोड़े थे। घर में भूख और ग़रीबी का नंगा नाच होने लगा। पिता को शराब और जुए के लिए

पैसे की जरूरत थी। उसने केली को भीख माँगने के लिए मजबूर किया। मना करने पर उसने उसे बुरी तरह पीटा। लाचार होकर उसे कलकत्ते की सड़कों पर भीख माँगनी पड़ी।

स्वास्थ्य अच्छा होने के कारण तेरह साल में ही केली युवती लगने लगी। उसके लिए भीख माँगना कठिन हो गया। जिस सड़क पर जाती आवारा उसका पीछा करते। उसने निश्चय किया कि चाहे वह भूखों मर जाय मगर भीख नहीं माँगेगी। जब अपना निश्चय पिता को सुनाया तो वह बहुत बिगड़ा। घर से निकालने का धमकी दी। वह रोती रही, सिसकती रही। उसे घर में बन्द करके वह बाहर चला गया। आधी रात को जब लौटा तो नशे में चूर था। उसके साथ एक नौजवान और था। वह भी शराब पिये था। नौजवान ने केली को देखा और फिर पिता के हाथ पर दस-दस के दो नोट रख दिये। उसके बाद पिता बाहर चला गया और फिर उस नौजवान ने हैवान बनकर उस भोली बालिका की अस्मत लूट ली।

फिर तो यह नित्य का नियम बन गया। हर रात को पिता किसी न किसी व्यक्ति को ले आता और रोज केली को अपने पिता के व्यसनों के लिए पैसा जुटाने के उद्देश्य से अपना शरीर बेंचना पड़ता। दो-तीन वर्ष के अन्दर ही उसका शरीर खोखला हो गया।

जब पिता के लिए ग्राहक खोजना असम्भव हो गया तो उसने केली को आदेश दिया कि वह स्वयं सड़कों पर घूमकर ग्राहक फँसाये। वह जानती थी कि मना करने पर राक्षस पिता खाल उधेड़ देगा। फलस्वरूप वह सड़कों पर घूमने लगी। साल भर में शरीर का रहा-सहा रक्त भी चुस गया। वह अक्सर बीमार रहने लगी। कुत्सित रोगों के कीटाणु शरीर को खाने लगे। और जब वह कमाने के योग्य न रही तो पिता ने ठोकर मारकर घर से बाहर निकाल दिया।

ज़िन्दगी के नरक से ऊबकर वह आत्महत्या का विचार कर ही रही

थी कि तभी उसकी भेंट एक व्यक्ति से हुई । उसने उसे सहारा दिया; उसका इलाज कराया। वह व्यक्ति एक अड्डे का स्वामी था। स्वस्थ हो कर वह अड्डे पर रहने लगी। यद्यपि वहाँ रहकर भी उसे शरीर बेचना पड़ता था तदापि पहले की अपेक्षा वह सुखी थी। घर में तो पिता सिर्फ रूखा-सूखा भोजन और साधारण वस्त्र ही देता था। अड्डे पर अच्छा भोजन मिलता था, अच्छे वस्त्र मिलते थे, अच्छा व्यवहार मिलता था और अच्छे दाम मिलते थे। कुछ महीनों बाद वह कलकत्ते से दो अन्य युवतियों के साथ लखनऊ भेज दी गयी।

केली की कहानी सुनकर मुरारी का हृदय करुणा से भर गया। उसने सोचा कि वह पिता सचमुच राक्षस से भी नीच है जो अपनी लड़की को वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए विवश करता है। अगर अड्डे का स्वामी केली की सहायता न करता तो वह निश्चय ही आत्महत्या कर लेती। तो क्या लिली का कथन सर्वथा सत्य है? घर और समाज से ठुकरायी हुई लड़कियों को सहारा देकर उन्हें ज़िन्दा रहने की प्रेरणा देना क्या शुभ काम नहीं है! लिली ने ठीक ही कहा था—डूबतों को सहारा देना ही हमारा काम है।

"मुझे तुमसे पूरी हमदर्दी है, मिस केली! वाक़ई तुमने बहुत तकलीफें उठाई हैं। मगर यकीन रक्खो। यहाँ तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा।" मुरारी ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा।

"आप बहुत मेहरबान हैं।"

"हाथ मुँह धोकर कपड़े बदल डालो। हाल में और लड़कियाँ हैं। उनसे हँसो-बोलो। कमरे में क्यों पड़ी हो?"

"आई वान्टेड ड्रिंक! उस आदमी से माँगा मगर वह डाँट दिया। यू आर वेरी कायन्ड, मिस्टर...!"

"मदन इज़ माई नेम!"

"मिस्टर मदन, आई एम ग्रेट फुल टु यू। हम अभी तैयार होकर

बाहर आटा।" केली पलँग से उठकर बोली।

जब मुरारी उठकर बोतल उठाने लगा तो केली विनीत स्वर में बोली—

"प्लीज़ डोन्ट टेक इट! इदर छोड़ दो।"

"मगर और न पीना।"

"नहीं पियेगा। प्रमिज़।"

मुरारी बाहर आ गया। आस-पास के कमरे उस समय भी बन्द थे। दोनों बंगाली लड़कियों से मिलने की तीव्र इच्छा होते हुये भी वह वापस हाल में आ गया। केली की सजल कहानी ने उसकी अन्तरात्मा को द्रवित कर दिया था और वह अपने को उन लड़कियों से बात करने की स्थिति में नहीं पा रहा था।

भारी कदमों वह अपने कमरे में जाने के लिए सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

३

दूसरे दिन नई कार आ गयी। लिली मुरारी को लेकर गोमती-रोड गयी और उसे कार चलाना सिखाने लगी। लिली ने बताया कि नयी बेबी आस्टिन कार मदन के नाम से ली गयी है और उसी के नाम रजिस्ट्रेशन कराया गया है। थोड़ी ही देर में मुरारी का समझ में कार चलाने के मोटे-मोटे सिद्धान्त आ गये।

वापस लौटने पर श्रीधर ने लिली को एक तार दिया। तार बम्बई से आया था। पढ़कर लिली ने मुरारी को थमा दिया। उसमें लिखा था—

"माँग बढ़ रही है। माल फौरन भेजो।"

मुरारी समझ गया कि लड़कियों की माँग है। उसने तार लिली को वापस कर दिया।

"किसको भेजना चाहिए?" लिली ने श्रीधर से पूछा।

"मेरे ख्याल से कलकत्ते वाली लड़कियों को भेज दिया जाय।"

"मगर तीन से क्या होगा?"

"दो लड़कियाँ होटल से भेज दीजिये"

"ठीक है! पाँचों को आज ही भेज दो। साथ में कौन जायेगा?"

"रामलाल को भेज दूं?" रामलाल होटल का मैनेजर था।

"उसके भेजने से होटल के काम में गड़बड़ी होने का डर है।" लिली ने कुछ देर सोचकर कहा। "तुम चले जाओ।"

"बहुत अच्छा।"

उसी शाम को श्रीधर पाँच लड़कियों को लेकर बम्बई के लिए रवाना हो गया। मुरारी दोनों बंगालिनों के विषय में कुछ भी न जान

सका। वह केवल उनकी शक्लें भर देख सका था। सूरत-शक्ल से वे भले घर की लड़कियाँ मालूम होती थीं। जाते समय केली ने मुरारी से करुण स्वर में विदा माँगी थी और भावावेश में आकर उसने उसका मस्तक चूम लिया था।

धीरे-धीरे मुरारी इस नयी ज़िन्दगी का अभ्यस्त हो गया। हफ्ते भर में ही वह मदन का अभिनय करते-करते मदन बन गया। मदिरा में आनन्द आने लगा; सिगरेट के बिना रहना कठिन मालूम होने लगा। बातचीत करने और उठने-बैठने के ढंग में पूर्ण परिवर्तन हो गया। इस परिवर्तन पर उसे कभी-कभी स्वयं आश्चर्य होता।

शीघ्र ही वह कार चलाने में भी दक्ष हो गया। लिली के व्यवसाय में रुचि लेने के कारण वह व्यवसाय के दाँव-पेंचों के साथ-साथ उसके आन्तरिक संगठन से भी भली प्रकार परिचित हो गया। इस बीच उसे कुछ अजीबो-गरीब अनुभव हुये। पहले वह समझता था कि रूप के हाट में बैठ कर अपने तन का सौदा करने वाली औरतें ही वेश्या होती हैं। अब उसे ज्ञात हुआ कि वेश्यावृत्ति के भी कई वर्ग और रूप हैं। कोठों पर बैठने वाली लड़कियों के अतिरिक्त कुछ लड़कियाँ ऐसी होती हैं जो अड्डों, होटलों आदि में रहती हैं। इस वर्ग की अधिकांश लड़कियाँ घूमती-फिरती रहती हैं—आज इस शहर में, कल उस शहर में। तीसरा वर्ग उन लड़कियों का है जो रहती तो अपने घरों में हैं पर थोड़ी-बहुत देर के लिए किसी अड्डे या प्रायवेट हाउस में पहुँच जाती हैं। ऐसी लड़कियों का नाम-पता अड्डे या प्रायवेट हाउस के मालिक के पास रहता है और वह ग्राहकों के अनुरोध पर उन्हें बुला देता है। ऐसी लड़कियों को 'काल-गर्ल्स' कहा जा सकता है। चौथे वर्ग में वे लड़कियाँ आती हैं जो ग्राहक की खोज में स्वयं पार्क आदि के चक्कर लगाती हैं। एसी लड़कियाँ अक्सर रात में रिक्शे पर घूमती हुयी देखी जा सकती हैं। पाँचवा वर्ग ऐसी लड़कियों का है जो वैसे तो भले घरों की हैं और

जिनमें से कुछ दफ्तरों, टेलीफून एक्सचेंज, अस्पताल आदि में काम भी करती हैं परन्तु आर्थिक विषमता के कारण अथवा अपने शौकों को पूरा करने के उद्देश्य से लुके-छिपे शरीर का व्यवसाय करती हैं। छठा वर्ग उन तितलियों का है जो सोसायटी-गर्ल्स की संज्ञा पाती हैं!

मुरारी को यह देख कर और भी आश्चर्य हुआ कि रुपये से रूप का क्रय करने वालों में कुली-मजदूर से लेकर बड़े-बड़े प्रतिष्ठित नागरिक और नेता तक हैं। क्लर्क, अफ़सर, विद्यार्थी, शिक्षक, व्यापारी, उपदेशक सभी वर्ग और अवस्था के लोग ग्राहकों की सूची में आते हैं। क्वाँरे और विवाहित में कोई फर्क नहीं। क्यों···? लोग इस अमानुषिक वृत्ति को क्यों प्रोत्साहन देते हैं? काफी सोच-विचार के बाद मुरारी इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि शायद जो लोग आर्थिक अथवा अन्य किसी कारण से क्वाँरे रहना पसन्द करते हैं वे वेश्यागामी हो जाते हैं। विवाहित व्यक्ति पारिवारिक कलह से ऊब कर, अथवा नवीनता के लोभ से इस मार्ग पर आता है। उसे घर की सीधी-साधी स्त्री की सादगी की तुलना में बाज़ारु लड़कियों की चटक-मटक अच्छी लगती है। यह शौक एक बार शुरू होने पर फिर जोंक की तरह चिपक जाता है।

आखिर इस वृत्ति का अन्त कैसे हो? और यह प्रश्न मुरारी की आँखों के सामने विराट रूप धर कर खड़ा हो गया। लड़कियाँ इस वृत्ति में मजबूर होकर आती हैं। जब सामाजिक और आर्थिक विषमतायें उन्हें पीसने लगती हैं तभी वे ज़िन्दा रहने का यह साधन अपनाती हैं। यदि अब भी समाज उन्हें भला बनने की सुबिधा दे तो वे सहर्ष इस नरक से निकलने के लिए तैयार हो जायें। मगर समाज क्या उन्हें अपनायेगा···?

मुरारी के मस्तिष्क में हमेशा इसी प्रकार के विचार उठते रहते। ज्यों-ज्यों वह इस समस्या पर सोचता त्यों-त्यों उलझन बढ़ती जाती। अन्त में विवश होकर उसने सोचना-विचारना ही छोड़ दिया।

पिछले सप्ताह में उसने सातों लड़कियों से उनके पिछले जीवन की

बातें सुनी थीं। अजीब-अजीब सी बातें उसे सुनने को मिली थीं। मार्था भूख और गरीबी से ऊब कर इस मार्ग पर आयी थी। और भूख तथा गरीबी का कारण उसका प्रेमी था। अपने प्रेमी के लिए उसने माँ-बाप को छोड़ दिया था; मगर प्रेमी ने धोखा दिया था।

नूरजहाँ की कहानी भी कुछ इसी प्रकार की थी। शीला और बीना लाहौर में अपना सर्वस्व गँवा कर दिल्ली आयी थीं। हर तरफ से निराश और मजबूर होकर उन्हें यह वृत्ति अपनानी पड़ी थी।

सरोज प्रयाग की रहने वाली थी। पिता नगर के प्रतिष्ठित नागरिक थे। ब्याह के सात-आठ महीने बाद ही वह विधवा हो गयी। पुरातन-पंथी होने के कारण पिता ने उसकी दूसरी शादी न की। ससुराल से उपेक्षित, माँ-बाप की छाती का बोझ बन कर दिन काटने लगी। पड़ौस के एक युवक ने उसके प्रति अपनी रुचि प्रदर्शित की। स्नेह और प्यार का भूखा हृदय अँगड़ाई लेकर मचल पड़ा। फल यह हुआ कि पुरुष के पाप का दण्ड नारी को भोगना पड़ा। युवक मकान छोड़ कर अन्यत्र चला गया और सरोज के पिता बदनामी से बचने के लिए उसे काशी के घाटों पर छोड़ आये। वहाँ एक पंडे ने अपने यहाँ आश्रय दिया। वहाँ उसने एक दुर्बल पुत्री को जन्म दिया। बच्ची तीसरे दिन ही चल बसी। शीघ्र ही पंडे ने उसे एक दलाल के हाथ बेच दिया। वही दलाल उसे लखनऊ पहुँचा गया।

शान्ति बचपन में ही अनाथ हो गयी थी और उसका पालन-पोषण अनाथालय में ही हुआ था। युवा होने पर उसे अनाथालय के मैनेजर की पाशविकता का शिकार होना पड़ा था। उसके बाद वह कई बार बेची-खरीदी गयी थी और फिर श्रीधर के हाथ लग गयी थी।

छाया की कहानी सबसे करुण थी। वह निर्धन पिता की पुत्री थी। गरीब बाप की बेटी और उस पर सुन्दर······! करेला और नीम चढ़ा! साहूकार के सूद की तरह वह दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती गयी

और साथ ही साथ पिता की उद्विग्नता भी वृद्धि पाती रही। दहेज का दानव मुँह बाये सामने खड़ा था। इसी चिन्ता में माँ चल बसी। पिता सूख कर काँटा हो गये। एक दिन पिता को चिन्ता से मुक्ति देने के लिए उसने जमुना में डूब कर जान देने का निश्चय किया। वह पौ फटने से पहले ही घर से निकल कर जमुना की ओर चल दी। थोड़ी दूर पहुच कर ही उसे ध्यान आया कि यदि उसने आत्म-हत्या कर ली तो पिता की क्या दशा होगी! और बूढ़े पिता का ध्यान आते ही वह लौट पड़ी। होनी की बात, शीघ्र ही एक ऐसा युवक मिल गया जो बिना कुछ दहेज लिए शादी करने को तैयार था। पिता ने सन्तोष की साँस ली; छाया प्रसन्नता से झूम उठी। जल्द ही फेरे पड़ गये। वह नये घर में पहुँच कर सुखी थी। न सास-ससुर का नियन्त्रण और न नन्द-देवरानी की चुगलखोरी! पति अकेला था। उसने पति को सम्पूर्ण प्यार दिया; श्रद्धा दी। सप्ताह भर जब पति काम पर नहीं गया तो उसने टोका। पति टाल गया। उसने सोचा शायद शादी की वजह से छुट्टी ले ली होगी। पर शीघ्र ही वास्तविकता खुलने लगी। पति बेकार था। अब उसने पूछा कि घर का खर्च कैसे चलेगा तो वह बोला कि तुम्हारी जैसी सुन्दर पत्नी के रहते पैसे की क्या कमी? उस समय तो उसकी बात छाया की समझ में न आयी परन्तु एक-दो दिन जब वह अपरिचित व्यक्तियों को मित्र कह-कह कर घर लाने लगा तो उसका माथा ठनका। वह आशंका से काँप उठी। जिस पति की पूजा उसने परमेश्वर समझ कर की थी वह राक्षस निकला। उसने स्पष्ट कह दिया कि यदि वह अपनी खैर चाहती है तो उसे आज्ञा का पालन करना चाहिए। और उसके मित्रों का 'मनोरंजन' करना चाहिए। मनोरंजन करने का अर्थ था उन्हें अपने शरीर से खेलने देना। छाया ने भरसक विरोध किया, अनुनय-विनय की पर पति ने एक न सुनी। उसने धमकी दी कि कहना न मानने पर वह उसे दुश्चरित्रा कह कर हमेशा के लिए छोड़ देगा। कहना मानने पर अच्छे वस्त्र और आभूषण देने का प्रलोभन भी

दिया। छाया को वस्त्रों और आभूषणों का इतना चाव न था जितना पति द्वारा त्याग दिये जाने का भय। विवश होकर उसे पति की आज्ञा के सामने झुकना पड़ा। उसकी कमाई पर पति मौज उड़ाने लगा। दो साल बाद पति उसे घुमाने के बहाने लखनऊ लाया। श्रीधर के हाथ उसे बेच कर वह लौट गया। बाद में छाया को श्रीधर से मालूम हुआ कि उसके पति का यही धन्धा है। वह हर दूसरे-तीसरे साल पुरानी पत्नी को बेच कर नई शादी करता है।

इन सब बातों को सुन कर मुरारी का हृदय समाज के प्रति ग्लानि एवं विद्रोह से भर गया था। उसे लगा था कि समाज के अनाचारों की अग्नि की भयंकर लपटों मे असंख्य भोली-भाली ललनायें भस्म हुयी जा रही हैं। और तब उसने उन लपटों की गर्मी को खुद महसूस किया था और फिर उसने घबरा कर अपनी आँखें बन्द कर ली थीं।

× × ×

एक दिन रात को रामलाल का फोन आया कि नगर के प्रमुख रईस रायसाहब अमोलकचन्द कुछ देर में ही पहुँचने वाले हैं। हाल में खलबली मच गयी। लड़कियाँ साज-श्रृंगार में एक दूसरे से होड़ करने लगीं। लिली और श्रीधर रायसाहब के स्वागत का प्रबन्ध करने लगे।

मुरारी ने आने वाले व्यक्ति का नाम सुना तो सिहर उठा। राय साहब अमोलकचन्द······! हाँ, यही नाम बताया था गुप्ता ने! यही वह राक्षस हैं जिसने अपनी पुत्री के साथ बलात्कार किया था और अपने एकमात्र पुत्र को पागलखाने भेजने में नहीं हिचका था। मुरारी का हृदय घृणा से भर गया! वही शैतान पैसे से अपनी प्यास बुझाने के लिए उस कोठी में आ रहा था!

मुरारी हाल में बैठा सिगरेट पी रहा था। लड़कियाँ अपने-अपने कमरों में थी। लिली का यही आदेश था। कुछ देर बाद ही मुरारी ने कार आकर रुकने की आवाज़ सुनी। मुरारी के हृदय की गति तीव्र-

तर हो गयी । लिली और श्रीधर आगन्तुक को लेकर ऊपर आये। स्थूल शरीर,, साँवला रंग, दो दाँत निकले हुये, चेहरे पर कठोरता का भाव, कीमती वस्त्र, हाथ में हाथी-दाँत की मूँठ वाली सुन्दर छड़ी ! लिली राय साहब को एक कोच पर आदर से बैठाकर दूसरे कोच पर बैठ गयी। श्रीधर लिली का संकेत पाकर नीचे चला गया।

"कहिये, क्या सेवा की जाये ?" लिली ने मीठे स्वर में पूछा।

"कोई नयी छोकरी है ?"

"कई हैं।" कहकर लिली ने ताली बजायी । क्षण भर में ही नूर-जहाँ, मार्था, शीला, वीना, सरोज, छाया और शान्ति हाल में प्रविष्ठ हुईं और राय साहब अमोलक चन्द के सामने खड़ी हो गयीं । उन्होंने बैठे ही बैठे सबका निरीक्षण किया । सब लड़कियाँ दृष्टि नीची किये खड़ी थीं । मुरारी ने उनके चेहरों पर आने-जाने वाले रंगों से अनुमान लगाया कि हर लड़की मन-ही-मन भगवान से यही प्रार्थना कर रही है कि ग्राहक उसे पसन्द न करे। राय साहब ने शीला, वीना, सरोज और शान्ति को चले जाने का संकेत किया। वे सन्तोष की साँस लेकर भाग गयीं। रह गयीं मार्था, नूरजहाँ और छाया। राय साहब की दृष्टि कभी मार्था पर टिकती, कभी नूरजहाँ पर और फिर घूमकर छाया के चेहरे पर जम जाती। मुरारी मन-ही-मन कुढ़ रहा था। उसकी इच्छा हो रही थी कि उस जानवर को मार पीटकर कोठी से बाहर निकाल दे।

राय साहब ने मार्था को अपने पास बैठने का संकेत किया। मगर मार्था टस से मस न हुई।

"मार्था...।" लिली ने कड़े स्वर में कहा।

"आई कांट सिट विथ दिस बीस्ट।" मार्था के हृदय का सारा आक्रोश तथा विद्रोह उसके स्वर में व्यक्त हो गया।

राय साहब शायद अंग्रेजी जानते थे । क्रोध से उनका साँवला-चेहरा काला हो गया। आँखों में क्रूर हिंसा नाचने लगी। उठकर मार्था

के गालों पर तड़ातड़ कई तमाचे जड़ दिये।

मुरारी को अवसर मिल गया। चीते की फुर्ती से उठ कर उसने राय साहब को पकड़कर कोच पर धकेल दिया। राय साहब को इसकी आशा न थी। वे लिली की ओर देखने लगे।

"तुम्हें किसी लड़की पर हाथ उठाने की जुर्रत कैसे हुई?" मुरारी चीख कर बोला। "तुमने अपने को समझ क्या रक्खा है?"

"मदन···।" लिली ने बीच में हस्तक्षेप किया।

"तुम चुप रहो, लिली!" मुरारी गरज कर बोला।

राय साहब उठकर जाने का उपक्रम करने लगे। धनी ग्राहक को जाते देखकर लिली घबरा गयी। राय साहब को रोककर बोली—"मैं इनकी तरफ से माफी माँगती हूँ। आप बैठिये! अभी सब ठीक होजा-येगा। सच, मैं बहुत शरमिन्दा हूँ।"

राय साहब फिर कोच पर बैठ गये। उन्होंने भूखी दृष्टि से मार्था की ओर देखा। वह सिसकने लगी।

"यू गो टु योर रूम, मार्था।" मुरारी ने मार्था की ओर मुड़ कर कहा।

मार्था ने सहमी दृष्टि से लिली की ओर देखा और फिर हाल से बाहर चली गयी।

लिली ने मदन को एक ओर ले जाकर समझाना शुरू किया—

"राय साहब बहुत प्रतिष्ठित आदमी हैं। उन्हें नाराज़ करना ठीक नहीं। अपना धन्धा ही चौपट हो जायेगा।"

"मगर......!"

"इस धन्धे में ऐसी बातें होती रहती हैं। भगवान के लिए बात का बतंगड़ न बनाओ।"

मुरारी की इच्छा हुई कि ऊपर चला जाये। मगर न जाने क्यों उस के पैरों की शक्ति जाती रही। वह चुपचाप कोच पर बैठ गया और

सिगरेट सुलगा कर पीने लगा।

"लीव मार्था।" लिली राय साहब के पास बैठ कर बोली। "इन दोनों में से······।"

"ठीक है! ठीक है!!" कह कर राय साहब हो-हो करके हँस पड़े।

छाया और नूरजहाँ के जिस्म काँप गये।

नूरजहाँ की अल्हड़ता और चंचलता न जाने कहाँ लुप्त हो गयी थी। वह पत्थर के बुत की तरह निश्चेष्ट, निस्पन्द खड़ी थी। छाया का आँखों की उदासी और भी बढ़ गयी थी और वह रायसाहब की ओर भीत दृष्टि से इस प्रकार देख रही थी जिस प्रकार कोई व्यक्ति भयंकर गोरिल्ला को देखता है।

राय साहब ने गिद्ध-दृष्टि से दोनों की ओर देखा। एक क्षण में ही निर्णय कर लिया। उठ कर नूरजहाँ का हाथ पकड़ कर बोले—"अपने कमरे में चलो।"

नूरजहाँ ने कातर-दृष्टि से मुरारी की ओर देखा। मुरारी की आत्मा कसमसा उठी। बेबसी का घूँट पीकर मुँह घुमा लिया। नूरजहाँ बलि की बकरी की तरह रायसाहब के साथ चली गयी।

छाया ने अपनी साड़ी के आँचल से माथे का पसीना पोंछा।

लिली उठ कर नूरजहाँ के कमरे की ओर चल दी। छाया मुरारी का संकेत पाकर उसके समीप बैठ गयी।

"तुम तो अभी तक काँप रही हो।" मुरारी ने उसके कम्पित हाथ को देख फर कहा।

"राम रे राम······। आदमी है या पूरा भैंसा। मैं तो डर रही थी कि कहीं······!" छाया ने अपना वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया।

"मुझे नूरजहाँ से दिली हमदर्दी है। भगवान उसकी रक्षा करे।" मुरारी उदास स्वर में बोला।

तभी नीचे से श्रीधर आया। उसके साथ अँग्रेजी वेश-भूषा में एक

नवयुवक था। उसे देख कर छाया का चेहरा खिल उठा।

"बहुत इन्तज़ार कराया, कमल !" छाया उसके पास जाकर बोली।

"जरूरी काम से बम्बई चला गया था।" कमल ने छाया का हाथ पकड़ कर उत्तर दिया।

छाया कमल को अपने साथ ले जाती हुई मुरारी की ओर मुड़ कर बोली—"दीदी को बता देना।"

और फिर दोनों चले गये।

मुरारी को उस दिन ज्ञात हुआ कि शरीर का सौदा करने वाली लड़कियों के भी दिल होता है और उस दिल की अपनी रुचि-अरुचि होती है।

"रायसाहब किसके कमरे में हैं……?" श्रीधर ने मुरारी से धीमे स्वर में पूछा।

"अभागिन नूरजहाँ के……। श्रीधर,हर काम का एक स्तर होना चाहिए। रायसाहब जैसे जानवरों को यहाँ क्यों आने दिया जाता है? उसने आज मार्था के तमाचे मार दिये…।"

"तमाचे मार दिये ? क्यों ?"

"क्योंकि उसने सच्ची बात कह दी थी। उसने जानवर को जानवर कह दिया था।"

"जानवर कह दिया था…?" श्रीधर प्रसन्न स्वर में बोला। "गुड ! मार्था वाकई बहुत बोल्ड है।"

"श्रीधर ! क्या ऐसा नहीं हो सकता कि यहाँ ऐसे ही लोग आयें जो भले हों, इन्सान को इन्सान समझते हों ?"

"हो क्यों नहीं सकता ?" श्रीधर उत्साह से बोला। "अब कमल बाबू को ही देख लीजिये। कितने भले हैं। छाया के अलावा और किसी की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते।"

"रायसाहब जैसे लोग इस घर में न आने पायें। यह मेरा आदेश है।"

"बहुत अच्छा, साहब ! मैं भी यही चाहता हूँ। मगर लिली

जो......।"

"आज से लिली का नहीं, मेरा हुक्म चलेगा। जाओ।"

श्रीधर चला गया।

एक क्षण बाद ही लिली आयी। उसके हाथ में सौ-सौ के दो नोट थे।

"छाया कमल के साथ अपने कमरे में गयी है।" मुरारी ने लिली को सूचित किया।

लिली बिना कुछ उत्तर दिये फिर लौट गयी। मुरारी अपने विचारों में खो गया। दो मिनट बाद ही लिली लौट आयी। अब उसके हाथ में तीन नोट थे।

"मैंने श्रीधर से कह दिया है कि आज से इस घरमें राय साहब जैसे आदमी नहीं आयेंगे।" जब लिली मुरारी के निकट बैठ गयी तो वह बोला।

"क्या तुम राय साहब को पहले से जानते हो ?" लिली ने मन्द स्वर में पूछा।

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"मैं औरत हूँ और औरत की नज़र कभी धोखा नहीं खा सकती।"

"राय साहब का लड़का मेरे साथ पागलखाने में था।" मुरारी दबे स्वर में बोला। "उसने मुझे बताया था कि इस राक्षस ने अपनी बेटी के साथ बलात्कार किया। लड़की ने आत्महत्या कर ली। लड़के ने सब कुछ अपनी आँखों से देखा था। जब उसने लोगों से कहना शुरू किया तो उसे पागल करार देकर पागलखाने भिजवा दिया।"

"क्या...क्या यह सच है ?" लिली ने विचित्र स्वर में फुसफुसा कर प्रश्न किया।

"हाँ ! और इसीलिए इसका नाम सुनते ही मेरा खून खौल उठा था।"

लिली अधिक न सुन सकी। उठकर तेज़ी से नूरजहाँ के कमरे की

ओर चल दी। मुरारी की समझ में लिली के जाने का कारण न आया। वह उठकर हाल में टहलने लगा।

कुछ क्षण बाद ही उसे राय साहब का भारी स्वर सुनाई दिया। वे कह रहे थे—"यह क्या बेहूदगी है ? मैं पैसे दे चुका हूँ।"

"मुझे नहीं चाहिए ऐसे पैसे। यह लीजिये अपने नोट और यहाँ से फौरन चले जाइये।" लिली का तेज़ स्वर आया।

"आप मेरी इन्सल्ट कर रही हैं। मैं...मैं...।"

"मैं कहती हूँ आप मेहरबानी करके फौरन चले जाइये। वरना आपके हक़ में अच्छा न होगा।" लिली का स्वर और तेज़ हो गया।

शीला, वीना, मार्था, सरोज और शान्ति हाल में एकत्र हो गयीं। कुछ देर बाद रायसाहब आवेश से भरे, अपनी छड़ी टेकते हुये हाल में आये। पीछे-पीछे लिली और नूरजहाँ थीं।

"मैं इस अपमान का बदला लूंगा...हाँ...।" राय साहब गरजे।

तब तक श्रीधर भी ऊपर आ गया था। लिली ने उसे आदेश दिया—

"इन्हें फौरन नीचे ले जाओ। आयन्दा कभी कोठी में घुसने न पायें। रामलाल को भी फोन कर देना।"

श्रीधर उन्हें पकड़ कर नीचे ले गया। सब लड़कियाँ स्तब्ध सी खड़ी थीं। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि अचानक क्या घटना घटित हो गयी है।

नीचे से कार स्टार्ट होने की आवाज़ आयी। कार चली गयी। श्रीधर ऊपर आ गया।

"मार्था, तुमने ठीक ही कहा था।" लिली धीमे और दुखी स्वर में बोली। "यह आदमी जानवर से भी गया-बीता था। आई एम सारी। मैं सबसे माफ़ी माँगती हूँ।"

मुरारी को लगा कि लिली का स्वर रुद्ध हो गया है।

"ऐसा न कहिए, दीदी!" कई लड़कियाँ एक साथ बोल पड़ीं।

"मैं ठीक कहती हूँ।" लिली भरे कण्ठ से बोली। "मैं सबसे माफी माँगती हूँ। खास तौर पर मार्था और नूरजहाँ से।"

और फिर लिली तेज़ी से ऊपर चली गयी। सब लड़कियाँ विस्मय से उस ओर देखती रहीं।

श्रीधर ने मुरारी से पूछा—"क्या बात हो गयी थी ?"

"मैं नहीं जानता।" मुरारी झूठ बोल गया।

"तुम्हारे साथ बुरी तरह पेश आया था ?" श्रीधर ने नूरजहाँ से पूछा।

उत्तर में नूरजहाँ ने अपना चेहरा आगे कर दिया। उसके कपोलों पर दाँतों के गहरे निशान थे। कहीं-कहीं पर खून भी आ गया था।

"वहशी...!" कहकर श्रीधर नीचे चला गया।

"बन्दर का बच्चा !" मार्था ने मुँह बिगाड़कर कहा।

सब लड़कियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। नूरजहाँ की हँसी आँसुओं से भी गीली और करुण थी !

मुरारी जब ऊपर कमरे में पहुँचा तो लिली को पलँग पर करवटें बदलते पाया। लिली के प्रति जो घृणा का भाव उसके दिल में पहले उभरा था वह धुल गया था। उसने उसको नये रूप में देखा था। उसे यह जानकर हर्ष भी हुआ था कि लिली को अपने स्तर का ध्यान है और वह पैसे को ही सब कुछ नहीं समझती है। जिस साहस से उसने राय साहब को कोठी से निकलवा दिया था उसे देखकर मुरारी का हृदय उसके प्रति अगाध श्रद्धा से भर गया था। लिली को बेचैन देख कर उसे दुख हुआ। सोचा, वह आत्म-ग्लानि से पीड़ित हो रही है।

"जो हो गया सो हो गया। परेशान होने से क्या फायदा ?" मुरारी अपने पलँग पर बैठकर बोला।

"काश ! तुमने मुझे पहले बता दिया होता !" लिली लेटे-लेटे

बोली। "तुम मुझसे नफरत करने लगे होगे !"

"पहले ज़रूर क्रोध आया था। मगर बाद में तुमने जो कुछ किया उसे देखकर हर्ष हुआ। मुझे गर्व है अपनी लिली पर।" मुरारी ने भावावेश में आकर कहा।

लिली उठकर बैठ गयी। उसकी आँखों में हर्ष के आँसू थे।

अभी तक मुरारी अपने पर पूर्ण नियंत्रण रक्खे था। औरों की दृष्टि में वह लिली का पति था, परन्तु उसने लिली को कभी भी सीमा का अतिक्रमण न करने दिया था। दोनों अपने-अपने पलँगों पर सोते थे मगर उस रात भावों का ऐसा प्रबल प्रभंजन उठा कि नियंत्रण का वृक्ष ढह गया; भावनाओं की ऐसी बाढ़ आयी कि संयम का बाँध टूट गया। मुरारी ने सच्चे हृदय से लिली को पत्नी-रूप में स्वीकार कर लिया।

श्रीधर ने पूछा—"यहाँ की रामलीला कैसी लगी ?"

मुरारी श्रीधर के साथ रामलीला देखने गया था। दोनों रामलीला के मैदान से कोठी की ओर लौट रहे थे। मुरारी कार चला रहा था। श्रीधर उसकी बगल में बैठा था।

"ठीक ही रही।" मुरारी ने उत्तर दिया। "मगर दिल्ली की रामलीला की तुलना में कुछ भी नहीं थी।" दिल्ली के स्थान पर उसके मुँह से आगरा निकलते-निकलते रह गया था।

"दिल्ली और लखनऊ में भी तो फर्क है।" कहकर श्रीधर हँस पड़ा।

मुरारी और श्रीधर में काफी घनिष्टता हो गयी थी। मुरारी श्रीधर को पसन्द करने लगा था। श्रीधर ने उसे एक दिन स्वयं बताया था कि वह मार्था को प्यार करता है और वह भी उसे चाहती है। तब मुरारी ने शादी कर लेने का सुझाव दिया था। उत्तर में उसने मार्ग में आने वाली बाधाओं और कठिनाइयों की ओर संकेत किया था। उसी दिन बात-बात में मुरारी को यह भी ज्ञात हो गया था कि श्रीधर प्रयाग विश्व-वविद्यालय का स्नातक है। तब से मुरारी के दिमाग़ में हमेशा यही विचार उठा करता था कि ग्रेजुएट होकर भी श्रीधर ने इस धन्धे को क्यों अपनाया ? कोई और नौकरी क्यों नहीं की ?

"एक बात पूछूँ श्रीधर···?"सहसा मुरारी पूछ बैठा।

"पूछिये।"

"तुम इस धन्धें में कैसे आ गये ?"

"परिस्थितियों में पड़कर।" कुछ देर मौन रहकर श्रीधर निःश्वास

छोड़कर बोला।

"मनुष्य का निर्माण परिस्थितियों द्वारा तो होता ही है।" मुरारी गंभीर होकर कहने लगा।",मुझे सहज जिज्ञासा है यह जानने की कि तुम्हें किन परिस्थितियों ने इस व्यवसाय में आने के लिए मजबूर किया।"

"वह बहुत करुण कहानी है, साहब। श्रीधर उदास स्वर में बोला। हजारों-लाखों नौजवानों की तरह मैं भी डिप्टी-कलक्टर बनने के सपने देखता था। सोचता था कि बी.ए. करके सरकार फौरन नौकरी दे देगी। मगर सरकार तो सरकार किसी सेठ-महाजन ने भी टके को न पूछा। सड़कों की धूल छानी, नौकरी दिलाने वाले दफ्तर के चक्कर लगाये, मगर मिला क्या...? सिर्फ फ़ाके! बेकार आदमी का दिमाग शैतान का घर होता है। तरह-तरह के ख्याल आते। कभी सोचता कि वह सरकार निकम्मी है जो जनता को रोटी, काम और घर नहीं दे सकती! कभी विचार आता कि इसमें सरकार का क्या दोष? हर साल लाखों लड़के बी०ए० करते हैं। सभी नौकरी चाहते हैं। सरकार किस-किस को नौकरी दे? आखिर पढ़ाई-लिखाई का ध्येय नौकरी ही तो नहीं है। छोटा-मोटा काम करने के विचार से इलाहाबाद से लखनऊ आया—बिना टिकट! आज जिस लखनऊ में शान-शौकत से रहता हूँ उसी लखनऊ में तब सिर छिपाने की भी जगह न मिली। फुटपाथों और पार्कों में रातें कटती; दिन में काम की तलाश में चक्कर लगाता। फटे वस्त्र, बढ़ी दाढ़ी और भूख से बेहाल चेहरा देखकर लोग घृणा की दृष्टि से देखते; पुलिस चोर-उचक्का समझ कर परेशान करती।"

बोलते-बोलते श्रीधर रुक गया। मुरारी को लगा कि उसकी आँखों के सामने अतीत की दुखद तस्वीरें नंगी होकर नाच रही हैं। कुछ देर बाद श्रीधर फिर बोला—

"सच मानिये। मैं मज़दूरी तक करने को तैयार था। मगर लोग मुझसे सामान तक न उठवाते थे। समझते थे, सामान लेकर भाग

जाऊँगा। भूख की आग ने भीख माँगने को मजबूर किया, मगर मुझ अभागे को भीख तक न मिली। एक दिन एक पढ़े-लिखे नवयुवक के सामने यह सोचकर हाथ फैलाया कि शायद वह तरस खाकर कुछ दे दे। अंग्रेजी में उसके सामने अपनी दयनीय स्थिति रक्खी। सुनकर उसका दूसरा साथी बोला—"साला दलाल है लौंडियों का। भले घर के लड़कों को बहकाता है।" सुनकर सन्न रह गया। इच्छा हुई कि उसका गला घोंट दूँ,मगर खून का घूँट पीकर रह गया।

"ऐसा न कहिये भाई जान ! मैं शरीफ आदमी हूँ। कई दिन का भखा हूँ।" मैंने करुण स्वर में कहा।

"बहाने बनाने की जरूरत नहीं है। सीधी बात करो। कोई माल है तुम्हारे पास ? पचास रुपये तक खर्च कर सकता हूँ।" वह युवक फुसफुसा कर बोला।"माल एक दम फ्रेश होना चाहिए।"

मैंने सोचा कि इस दुष्ट को उल्लू बनाना चाहिये। धीमे स्वर में बोला—

"माल तो फर्स्ट क्लास है। मगर······।"

"मगर क्या ? सौ रुपये तक खर्च कर सकते हैं हम।"

"फिर लाइये इसी बात पर बयाना।"

"उल्लू किसी और को बनाना। अपना रोज़ का यही काम है। पहले माल दिखाओ।"

"माल मेरी जेब में तो है नहीं। बयाना नहीं तो कम से कम रिक्शा-भाड़ा ही दे दीजिये। आप जहाँ कहें वहीं लेकर आजाऊँगा।"

दोनों नौजवानों ने राय-मशविरा किया और फिर रुपया मेरे हाथ पर रख दिया। एक होटल का पता बताकर कहा कि यदि धोखा दिया तो अच्छा न होगा। लड़की को शीघ्र लाने का आश्वासन देकर मैं चल दिया और एक सस्ते होटल में भरपेट खाना खाया। उस दिन के बाद मैंने महसूस किया कि दुनिया में शरीफ बनकर जिन्दा रहना बहुत

क़ठिन है। शराफ़त का मतलब है भूख गरीबी, बेकारी बेबसी··· ।"

"उन दोनों को खूब बुद्धू बनाया। बिचारे होटल में तुम्हारी राह देखते रहे होंगे।" मुरारी हँसकर बोला।

"नहीं साहब, मैं लड़की लेकर होटल पँहुचा।"

"अच्छा ! लड़की कहाँ से मिल गयी ?"

"खाना खाकर मैं चौक गया। एक वेश्या कम उम्र और सूरत-शक्ल की अच्छी दिखाई दी। मैं ऊपर चढ़ गया। उससे बात की; उसे अपनी योजना बताई। वह तैयार हो गयी। उसे सिखा-पढ़ा कर होटल ले गया।

"इसी की तारीफ़ करते थे ?" उसे देखकर वह तरुण बोला।

"जनाब, एक दम फेमिली गर्ल है। स्कूल में पढ़ती है।" मैं बोला।

दोनों ने उसे घूरकर देखा; आपस में कानाफूसी की। फिर एक बोला—"भाई, हमें यह पसन्द नहीं।"

"आखिर क्या बुराई है इसमें !" मैं बिगड़ कर बोला।"न जाने क्या-क्या बहाने बनाकर तो घर से आयी है और आप······।"

"मगर हमें पसन्द नहीं···।"

"तो हम क्या करें ?"मैं उसी स्वर में बोला।"आपको हर्जाना देना पड़ेगा।" और काफी झकझक के बाद उनसे दस रुपये ऐंठकर हम बाहर आ गये। पाँच रुपये उसे देकर पाँच मैंने रख लिए। हम दोनों प्रसन्न थे !

और इस तरह समाज ने मुझे वेश्याओं का दलाल बना दिया। धीरे धीरे मेरा सम्पर्क स्कूल-कालेजों की ऐसी लड़कियों से हो गया जो "लूज़" थीं। धन्धा चल निकला। दस-बीस रुपये रोज़ कमा लेता। दैवात एक दिन लिली जी से भेंट हो गयी। उन्होंने मेरे गुणों को परखा। पहले छोटी नौकरी दी। साल भर में ही मैनेजर बन गया।"

श्रीधर की कहानी मुरारी को अजीब सी लगी। उसकी कहानी

एक ऐसे इन्सान की कहानी थी जो शरीफ़ बनकर रहना चाहता था मगर समाज ने मौका न दिया, सुविधा न दी और उसे शरीर के व्यवसाय का दलाल बना दिया और अब समाज के प्रतिष्ठित नागरिक, नेता, व्यापारी, अफसर आदि उसी की खुशामद करते हैं।

दूसरे दिन दशहरा था। मुरारी सब लड़कियों को मेला दिखाने ले गया। लौटते समय मुरारी ने हिन्दी, उर्दू और अँग्रेज़ी के कुछ उपन्यास खरीदे।

"आप उर्दू ज़ानते हैं ?" नूरजहाँ के इस प्रश्न के उत्तर में मुरारी ने बताया कि पुस्तकें उसने अपने लिए नहीं बल्कि उन्हीं के लिए ली हैं।

"मेनी मेनी थेंक्स ।" कहकर मार्था ने अँग्रेजी उपन्यास अपने हाथ में ले लिए।

"मैंने सोचा कि तुम लोग दिन भर या तो सोती रहती हो या ताश खेलकर समय नष्ट करती हो। किताबों से समय भी कट जायेगा और ज्ञान भी बढ़ेगा।" मुरारी हँसकर बोला।

"मुझे उपन्यास पढ़ने का बहुत शौक था।" छाया बोल पड़ी।

"उस शौक को फिर ताजा कर लो।" नूरजहाँ ने चुटकी ली।

"मैंने लिली से बात करली है। कल से बैडमिंटन का भी प्रबन्ध हो जायेगा। शाम को घंटे-दो घंटे खेला करना।" मुरारी ने सूचित किया।

मार्था प्रसन्नता से ताली बजा कर बोल पड़ी—"थ्री चियर्स फार मिस्टर मदन।"

शीला, वीना और सरोज ने भी तालियाँ बजायी।

"मुझे तो खलना आता नहीं।" नूरजहाँ उदास होकर बोली।

"मैं सिखा दूँगी।" छाया ने आश्वासन दिया।

"खेल का खल और कसरत की कसरत।" शान्ति का स्वर गूँज उठा।

"अब बोलीं मिस शार्टी।" शीला के कहते ही सब खिलखिला कर हँस पड़ीं। शान्ति बुरी तरह झेंप गयी।

× × ×

दोपहर को भोजन करके मुरारी लेटा ही था कि नूरजहाँ कमरे में आ गयी। लिली भी अपने पलँग पर लेटी थी। नूरजहाँ उसके पलँग पर बैठ गयी।

"तुम तो हफ्ते भर में ही काफी अच्छा खेलने लगीं।" लिली ने नूरजहाँ की प्रशंसा की।

"आप तो बनाती हैं। अभी तो कोशिश ही कर रही हूँ सीखने की।" नूरजहाँ ने विनम्र स्वर में कहा।

"कहो, कैसे आयीं ?" लिली ने पूछा। वह जानती थी कि लड़कियाँ उसके कमरे में तभी आती हैं जब कोई खास बात होती है।

"इन्हें बुलाने आयी हूँ।"

"क्यों, क्या किताबें खत्म हो गयीं ?" मुरारी उठकर बैठता हुआ बोला।

"नहीं ! आज सब की तबियत आपके साथ ताश खेलने की है।"

"अच्छा, चलो।" कहकर मुरारी नूरजहाँ के साथ चल दिया।

नूरजहाँ के कमरे में सभी लड़कियाँ उपस्थित थीं। पलँग खड़ा करके फर्श पर दरी और चादर बिछाई गयी थी। ताश की गड्डी बीच में रक्खी थी।

"खेलने वाले तो आठ हैं और गड्डी एक ही है।" कहकर मुरारी बैठ गया। नूरजहाँ उसी की बगल में बैठ गयी।

"हम लोग गन खेलेंगे। मार्था और शान्ति खेलेंगी नहीं। रह गये छह। अपने-अपने पार्टनर चुन लो।" छाया बोली।

नूरजहाँ, मुरारी और शीला एक तरफ रहे और दूसरी तरफ रहीं छाया, सरोज और वीना। खेल शुरू हुआ। बीच-बीच में हँसी-मज़ाक चलता रहा। एक बार छाया से भूल हो गयी। सरोज चिढ़कर बोली—

'तुम्हारा ध्यान तो बस उन्हीं के पास रहता है हमेशा।"

"ग़लती हो गयी।" छाया ने संकुचित स्वर में कहा।

"किसके पास ध्यान रहता है इसका ?" मुरारी मज़ा लेता हुआ बोला।

"अरे, आप नहीं जानते ?" नूरजहाँ ने विस्मय से पूछा। "कमल बाबू की दीवानी है यह।"

"जाओ, मैं नहीं खेलती।" पत्ते फेंक कर छाया कृत्रिम रोष से बोली।

"हाँ, तुम हमारे साथ क्यों खेलोगी ?" कह कर शीला ने भी पत्ते फेंक दिये।

फिर सभी ने पत्ते फेंक दिये। ताश एक ओर सरका दिये गये। बातों का सिलसिला शुरू हुआ।

"बड़ी भाग्यवान है छाया जो कमल बाबू जैसा चाहने वाला मिला!" सरोज ने निःश्वास छोड़ कर कहा।

"तुम्हें क्यों जलन होती है?" नूरजहाँ ने कहा। "अपनी-अपनी किस्मत है। तुम्हारी किस्मत में तो वह मोटू ही है।"

कमरा मुक्त हास्य से गूँज उठा।

"और तुम्हारी किस्मत में है दढ़ियल बकरा !" सरोज ने अपनी झेंप मिटाने की चेष्टा करते हुए कहा।

"अच्छा, सब लोग जाओ अपने-अपने कमरों में। मैं छाया से बात करना चाहता हूँ।" मुरारी ने मीठी डाँट बताते हुये कहा।

नूरजहाँ और छाया को छोड़ कर सब चली गयीं।

"मेरा कमरा तो यही है। मैं कहाँ जाऊँ ?" मुस्करा कर नूरजहाँ बोली। "कहिये तो हाल में जाकर बैठी रहूँ !"

"तुम यहीं रह सकती हो।"

"शुक्रिया।" नूरजहाँ उसी मुद्रा में बोली। "वैसे छाया का कोई राज़ मुझ से छिपा नहीं है। उसके लिए हमशीरा की तरह हूँ।"

"कमल बाबू क्या करते हैं?" मुरारी ने छाया से पूछा।

छाया सिर नीचा किये बैठी रही। नूरजहाँ ने उसकी तरफ से उत्तर दिया—

"कपड़े की तिजारत करते हैं। पिछले साल वालिद का इन्तकाल हो गया। अब खुद ही मालिक हैं। वालिद की मौत कई साल पहले हो गयी थी।"

"तुम उन्हें चाहती हो?" मुरारी ने फिर छाया से ही पूछा।

"अजी, बुरी तरह जान देती है।" नूरजहाँ बोल पड़ी।

"और कमल बाबू?"

"दोनों तरफ़ है आग बराबर लगी हुई।" नूरजहाँ हँसकर कहने लगी। "वे तो कई बार शादी का इसरार कर चुके हैं मगर यह है कि राज़ी ही नहीं होती।"

शादी की बात सुनकर मुरारी गम्भीर हो गया। छाया को नया जीवन शुरू करने का अवसर मिल रहा है। इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है! उसे तो प्रसन्न होना चाहिए। मगर वह शादी से इन्कार क्यों कर रही है? क्या वह कमल के प्यार को क्षणिक आवेश-मात्र समझती है?

"कमल बाबू अभी तक क्वाँरे हैं?" मुरारी ने इस बार नूरजहाँ की ओर मुँह करके प्रश्न किया।

"चार साल पहले शादी हुई थी। मगर वह लड़की शायद किसी और से मोहब्बत करती थी। कमल बाबू ने उसे अपना सच्चा प्यार दिया; उसे खुश रखने की कोशिश की। मगर वह लड़की उन्हें अपना शौहर न मान सकी। दो साल बाद ही वह घुल-घुल कर मर गयी। कमल बाबू के दिल पर इस हादसे का काफी धक्का लगा। उन्होंने फैसला कर लिया कि या तो दूसरी शादी ही नहीं करूँगा या फिर उसी लड़की से करूँगा जिसके लिए उन्हें पूरा यक़ीन होगा कि वह उनके सिवा किसी

और को नहीं चाहती।"

"और उन्हें छाया के प्यार पर पूरा यक़ीन है ?"

"तभी तो शादी का इसरार करते हैं।"

"छाया, क्या तुम्हें उनके प्यार पर भरोसा नहीं ?" मुरारी ने छाया के कन्धे पर हाथ रखकर गम्भीर स्वर में पूछा।

"मुझे उन पर पूरा भरोसा है।" छाया दृष्टि नीची करके धीमे स्वर में बोली। "वे इन्सान नहीं, देवता हैं।"

"फिर शादी से इन्कार क्यों करती हो ?"

छाया मौन रही।

"बोलो।"

छाया ने मुरारी की ओर सजल दृष्टि से देखा। कम्पित स्वर में बोली—"क्यों कि मैं अपने को उनके योग्य नहीं समझती।"

"क्या खराबी है तुम में ?" नूरजहाँ ने व्यंग्य किया।

"मुझमें खराबियों के सिवा और है ही क्या ?" छाया दुखी और अवरुद्ध स्वर में बोली। "नरक के कीड़े की तरह मेरा जीवन, वासना की जोंकों से चूसा हुआ गन्दा शरीर······। नहीं, अपनी अपवित्रता से मैं उनकी पवित्रता को नष्ट करना नहीं चाहती।"

छाया अपनी बाँहों में मुँह छिपा कर सिसकने लगी।

"गन्दी नाली गंगा में मिलकर पावन हो जाती है, छाया।" मुरारी उसकी पीठ पर हाथ फेरता हुआ समझाने लगा। "कमल बाबू से तुम अपनी वास्तविकता छिपाती, दोष तब था। सब कुछ जानते हुये भी वे तुम्हें अपनाने को तैयार हैं। तुम्हें यह अवसर हाथ से नहीं खोना चाहिए।"

"लेकिन···लेकिन मेरी आत्मा इसे स्वीकार नहीं कर पाती।" छाया रुँधे कण्ठ से बोली।

"पागलपन छोड़ दो। तुम अच्छी पत्नी बन सकती हो। छाया, शादी से इन्कार करके तुम स्वर्ग को ठुकरा रही हो। इस नरक में

क्या है ? साल-दो-साल में तुम्हारे शरीर का रहा-सहा सौन्दर्य भी नष्ट हो जायेगा। फिर···फिर क्या होगा ? ज़रा सोचने-समझने की कोशिश करो।"

"मदन बाबू ठीक कह रहे हैं, छाया। ज़िद छोड़ दो।" नूरजहाँ भी समझाती हुई बोली।

छाया मौन रही। वह सोच रही थी। द्वन्द्व की आँधी हृदय में उठ रही थी। कुछ देर बाद वह धीमे स्वर में बोली—"क्या···क्या दीदी मान जायेंगी ?"

"क्यों नहीं मानेंगी ?" मुरारी आवेश से बोला। किसी का भविष्य बिगाड़ने का उन्हें क्या अधिकार है ? मैं अभी जाकर बात करता हूँ।"

मुरारी सीढ़ियों पर चढ़ते समय सोच रहा था कि यदि लिली न मानी तो क्या होगा ? छाया उसकी आय का साधन है। वह उसे छोड़ने में जरूर आना-कानी करेगी। लेकिन जिस तरह भी हो, उसे राजी करना होगा। छाया का जीवन नष्ट नहीं होना चाहिए !

"कमल छाया से शादी करना चाहता है।" मुरारी कमरे में पहुँच कर अपने पलँग पर बैठ कर बोला।

"और छाया···?" लिली ने स्वप्निल पलकें उठाकर पूछा।

"वह भी राजी है। लेकिन वह तुम्हारी आज्ञा के बिना कमल से 'हाँ' नहीं कह सकती।

लिली उठकर बैठ गयी। वह निर्निमेष दृष्टि से दीवार की ओर देखने लगी। मुरारी को डर लगा कि लिली इन्कार करने वाली है।

"ठीक है।" एक क्षण बाद लिली बोली और फिर उसने पलँग के पास वाला बटन दबा दिया। नौकर के आने पर उसने छाया को भेजने का आदेश दिया।

सहमी हुई छाया ने अन्दर प्रवेश किया। उसकी दृष्टि नीची थी और वह मन-ही-मन डर रही थी कि दीदी ज़रूर डाँटेंगी।

"मेरे पास बैठो।" लिली ने छाया का हाथ पकड़ कर अपने पास बिठा लिया। "तुम कमल से आज ही सब बातें तय कर लेना।"

छाया ने कृतज्ञता के आँसुओं से भीगी आँखें ऊपर उठायीं।

"तुम्हारी दीदी इतनी स्वार्थिन नहीं है जितनी तुम समझती हो, छाया।" लिली धीमे स्वर में बोली। "अपने लाभ के लिए तुम्हारे सुख का गला नहीं घोंटूँगी।"

छाया बच्ची की तरह फूट-फूट कर रो पड़ी। उसने अपनी स्नेह और ममतामयी दीदी की छाती में मुँह छिपा लिया।

मुरारी ने मुँह दीवार की ओर करके अपने आँसू पोंछ लिये।

छाया के जाने के बाद मुरारी बोला—"तुम्हें समझाना बहुत कठिन है, लिली! सच, अगर तुमने अपनी सहमति न दी होती तो मैं तुमसे नफ़रत करने लगता और शायद यहाँ से चला भी जाता।"

लिली अपने पलँग से उठकर मुरारी के पास बैठ गयी। उसका हाथ अपने दोनों हाथों में दबा कर बोली—"जिस दिन नारी को समझने लगोगे उस दिन प्रलय हो जायेगी। पुरुष की जिज्ञासा और नारी की पहेली...सृष्टि के दो पहिये हैं।"

"ठीक कहती हो......शायद तुम ठीक कहती हो।" निःश्वास छोड़ कर मुरारी बुदबुदा उठा।

चौथे दिन छाया और कमल दाम्पत्य-सूत्र में बँध गये। संस्कार अत्यन्त सादगी से सम्पन्न हुआ। दिन भर सब के दिलों में उत्साह की लहरें उठती रही थीं। लिली भी प्रसन्न थी। दहेज के रुपये उसने लगभग दो हज़ार रुपये के वस्त्र और आभूषण भी दिये। हर लड़की ने कोई न कोई वस्तु उपहार में दी। श्रीधर ने एक अँगूठी दी और मुरारी ने पार्कर कलम।

बेटी की विदा का करुण दृश्य पत्थर की तरह कठोर दिलों को भी पिघला देता है। छाया की विदा आँसुओं और सिसकियों के मध्य

हुई। वह हर लड़की के गले लग-लग कर रोयी—खूब रोयी। लड़कियाँ खुद रो रही थीं मगर उसे समझा रही थीं। और जब उसने दहाड़ मार कर लिली के पैर पकड़ लिये तो मुरारी की आँखों में भी आँसू आ गये। लिली ने उसे उठाकर अपने अंक में भर लिया। उसके सिर पर हाथ फेरती हुई भीगे स्वर में बोली—"भगवान तुम दोनों को सुखी रक्खे।" फिर कमल की ओर मुड़ कर कहा—"समाज को चुनौती देकर जिस साहस से इसका हाथ पकड़ा है उसी साहस से जीवन भर निबाहना, कमल बाबू।"

"दुनिया की कोई शक्ति हम दोनों को अलग नहीं कर सकती।" कमल ने दृढ़ता से कहा।

"हम सब की शुभ कामनायें तुम्हारे साथ हैं।" कह कर अपने उमड़ते हुये आँसुओं को भरसक रोकने की चेष्टा करती हुई लिली तीव्र गति से ऊपर चली गयी। वह सब के सामने रोकर अपनी दुर्बलता का प्रदर्शन करना नहीं चाहती थी।

छाया रो रही थी—उस लड़की की तरह जिसका नैहर छूट रहा हो स्नेहमयी माँ छूट रही हो, सखी-सहेलियाँ छूट रही हों। कातर हो कर वह मुरारी से लिपट गयी।

"जाओ बहन!" मुरारी भरे कंठ से बोला। "नयी सुबह की सुनहरी किरणें तुम्हें आमंत्रित कर रही हैं। तुम्हारा सौभाग्य अचल रहे, भगवान से यही प्रार्थना है।"

छाया चली गयी। उसके रूप में कोठी की आत्मा ही चली गयी। बेटी की विदा के बाद का सूनापन कोठी की ईंट-ईंट में व्याप्त हो गया।

रोती-सिसकती लड़कियाँ भी ऊपर चली गयीं।

"देखो श्रीधर, आज कोई भी व्यक्ति ऊपर न आने पाये। समझे!" मुरारी श्रीधर से उदास स्वर में बोला।

"मैं उन्हें नीचे से ही लौटा दूँगा।" कह कर श्रीधर अपने आँसू पोंछता हुआ दूसरी ओर चला गया।

मुरारी ने कमरे में पहुँच कर देखा कि लिली पलँग पर पड़ी बिलख-बिलख कर रो रही है—उस माँ की तरह जिसकी अपनी जायी बेटी ससुराल गयी हो!

(५)

मुरारी सिगरेट अधरों में दबाय, पैन्ट की जेबों में हाथ डाले, खिड़की के पास खड़ा था। नीचे लान में लड़कियाँ बैडमिंटन खेल रही थीं। यद्यपि उसकी दृष्टि उसी ओर थी तदपि उसका ध्यान खेल में नहीं था। इधर कई दिनों से वह न जाने क्यों उदासी का अनुभव कर रहा था। लखनऊ से मन उचट सा गया था। उसकी इच्छा होती थी कि वह कहीं दूर—बहुत दूर—जाकर कुछ दिन घूमे-फिरे। उस सयय खिड़की के समीप खड़ा-खड़ा वह यही सोच रहा था कि बाहर जाने का प्रस्ताव लिली के सामने कब और कैसे रक्खा जाये!

मुरारी अपने विचारों में खोया था। उसे ज्ञात ही नहीं हुआ कि लिली उसके पास आकर खड़ी हो गयी है। लिली एकटक उसकी ओर देख रही थी। मुरारी की उदासी उससे छिपी न थी। वह मुरारी को प्रसन्न देखना चाहती थी। उसके कन्धे पर हाथ रखकर बोली—"क्या सोच रहे हो?"

मुरारी चौंक पड़ा। पैन्ट की जेबों से हाथ निकाल कर, दाहिने हाथ से सिगरेट बुझाता हुआ बोला—"कुछ भी नहीं।"

"इधर कई दिनों से परेशान रहते हो। क्या बात है? क्या लखनऊ से जी हट गया है?"

'हाँ लिली, मन घूमने-फिरने के लिये तड़फने लगा है।"

"कहाँ चलना चाहते हो?"

"कहीं भी चलो, लिली! मगर लखनऊ से चली चलो।"

लिली ने बम्बई का प्रस्ताव रक्खा। मुरारी ने बम्बई-नगरी पहले कभी न देखी थी। सहर्ष स्वीकृति दे दी।

"बम्बई की दिवाली मशहूर है। तबियत खुश हो जायेगी।"

मुरारी ने उत्तर न दिया। वह बाहर की ओर देखने लगा !

बम्बई-यात्रा की तैयारीयाँ होने लगीं। बम्बई-शाखा के मालिक मिस्टर मल्कानी को उनके पहुँचने के दिन तथा समय की सूचना तार द्वारा दे दी गयी। दूसरे दिन शाम की गाड़ी से लिली और मुरारी बम्बई के लिए रवाना हो गये।

मिस्टर मल्कानी ने अपनी मधर मुस्कान से बम्बई के प्लेटफार्म पर दोनों का स्वागत किया। वे ठिगने कद के गोरे से व्यक्ति थे। हर समय सिगार मुँह में दबाये रहते थे। मुरारी को उनकी खुशमिजाजी बहुत ही पसन्द आयी।

"वेलकम, माई लिटिल लिली !" कह कर वे खिलखिला कर हँस पड़े।

मिस्टर मल्कानी अपनी कार लाये थे। सामान पीछे रख दिया गया। कार मैरिन ड्राइव स्थित एक विशाल होटल के सामने रुक गयी। यह होटल मिस्टर मल्कानी का ही था और इसी में उनके व्यवसाय का प्रमुख अड्डा भी था। तीनों लिफ्ट द्वारा ऊपर पहुँच गये। मुरारी लिफ्ट पर जीवन में प्रथम बार चढ़ा था। यह नया अनुभव कुछ अजीब सा लगा।

मुरारी मिस्टर मल्कानी से केली के बारे में पूछने के लिए उतावला हो रहा था। कमरे में पँहुचते ही बोला—हाउ इज़ केली, मिस्टर मल्कानी ?"

"केली···?" मिस्टर मल्कानी भौंहों में बल डाल कर याद करने की कोशिश करने लगे।

"मिस केली ! जिसे हमने लखनऊ से भेजा था !" मुरारी ने याद दिलायी।

"ओह, दैट एँग्लो-इन्डियन गर्ल ! शी वाज़ अ सेन्टीमेन्टल फूल, मिस्टर मदन !" मिस्टर मल्कानी सिगार का कश खींच कर बोले।

मिस्टर मल्कानी के मुख से केली का उल्लेख भूतकाल में सुनकर

मुरारी चौंक पड़ा। घबरा कर पूछा—"क्या बात हुई, मिस्टर मल्कानी ?"

"उसने खुदकशी कर ली।" मिस्टर मल्कानी ने ऐसे स्वर में कहा मानों उनके लिए आत्म-हत्या साधारण सी बात हो।

मुरारी का हृदय दुख से भर गया। आँखों के सामने केली का पीला, उदास और मुरझा हुआ चेहरा घूम गया। उसने सोचा, केली मूर्ख नहीं, कमजोर थी। वह जिन्दगी की ठोकरें न झेल सकी। तभी उसने मौत का सहारा लिया।

स्नान-आदि से निवृत होकर दोनों ने भोजन किया। मिस्टर मल्कानी भी उनके साथ बैठे। मुरारी ने मिस्टर मल्कानी के अनुरोध करने पर मदिरा का भी सेवन किया।

"यहाँ तो नशाबन्दी है!" मुरारी को ह्विस्की देखकर आश्चर्य हुआ।

"नशाबन्दी तो नाम की है।" मिस्टर मल्कानी बोले। "इस शहर की सब बातें निराली हैं, मिस्टर मदन! यहाँ आधी रात को एक गिलास पानी नहीं मिल सकता मगर एक गैलन शराब मज़े से मिल सकती है।"

मुरारी को मिस्टर मल्कानी की बात अजीब सी लगी।

यात्रा की थकान थी। खा-पीकर मुरारी और लिली सो गये।

दूसरे दिन दीपावली का पर्व था। नगर की शोभा देखकर मुरारी दंग रह गया। जिस धूम-धाम से लक्ष्मी का पर्व बम्बई में मनाया जाता है उस धूम-धाम से शायद ही किसी अन्य शहर में मनाया जाता हो! हर तरफ़ रोशनी के फूल, पटाखों का शोर, आतिशबाजी की छटा, हर्ष और उत्साह की लहर! मैरीन ड्राइव की जगमगाती अट्टालिकाओं की मनोहारी छवि देखकर मुरारी मंत्र मुग्ध सा हो गया। बम्बई-नगरी सचमुच अलकापुरी सी विदित हो रही थी।

दीपावली आयी और चली गयी। उसके बाद भ्रमण के प्रोग्राम बनने लगे। मिस्टर मल्कानी उन दोनों को अपनी कार पर जुहू ले गये।

तीनों ने समुद्र में स्नान-किया। मुरारी को सागर की लहरों में खेलना बहुत भला लगा।

हैंगिग गार्डन से नगरी की शोभा देखी। चौपाटी पर चाट खायी। मालाबार हिल की सैर की। कमला नेहरू पार्क में घंटों घूमे-फिरे। महालक्ष्मी के मैदान में घुड़दौड़ देखी। दाँव भी लगाये। मिस्टर मल्कानी लगभग पाँच सौ हारे। लिली और मुरारी एक हजार जीते। एलीफैन्टा की गुफायें देखीं। और एक सप्ताह पलक मूँदते बीत गया।

मुरारी ने सोचा कि बम्बई आकर यदि फिल्म की शूटिंग न देखी तो कुछ नहीं देखा। उसने लिली से कहा और लिनी ने मिस्टर मल्कानी से। मिस्टर मल्कानी के लिए कोई बात असम्भव न थी। पास का प्रबन्ध हो गया और एक दिन मिस्टर मल्कानी की कार फ़ेमस स्टुडियो के सामने पहुँच गयी।

दिलीपकुमार और मीनाकुमारी सेट पर उपस्थित थे। सेट तीव्र प्रकाश से आलोकित रहा था। रोमांटिक दृश्य की शूटिंग हो रही थी। मुरारी को वहाँ सब कुछ अपनी धारणा के विपरीत ही मिला। एक-एक संवाद की कई-कई बार रिहर्सल, शूटिंग के मध्य में भी कई बार 'कट' 'टेक' 'रिटेक' के आदेश। मुरारी ऊब गया।

"दूर के ढोल सुहावने लगते हैं।" लिली के कान में मुरारी फुसफुसाया। "चलो, चलें।"

तीनों उठकर स्टूडियो के बाहर आ गय। गेट के बाहर लड़के लड़कियों की भीड़ दिखायी दी। मुरारी ने समझा कि शायद मीनाकुमारी और दिलीपकुमार के दर्शन करने के लिए एकत्र हुये हैं।

"जानते हो ये लोग कौन हैं?" मिस्टर मल्कानी ने कार स्टार्ट करके पूछा।

"शायद दिलीपकुमार और मीनाकुमारी को देखने आये हैं।" मुरारी बोला।

"नहीं जी ! ये "एक्सट्राज़" हैं। आपने ग़ौर किया होगा—फटे और गन्दे कपड़े, सूनी आँखें, रूखे और बिखरे बाल, पीले और उदास चेहरे। इनमें से हर एक कभी दिलीपकुमार और मीनाकुमारी बनने के ख्वाब देखता था।"

मिस्टर मल्कानी की बात मुरारी की समझ में नहीं आयी।

"इनमें से कई लड़कियाँ भले घरों की होंगी।" मिस्टर मल्कानी कहते गये। "वे हीरोइन बनने के शौक से घर-बार छोड़ कर बम्बई आयी होंगी। अपना सब कुछ गँवा कर आज दो रोटियों के लिए स्टुडियो के चक्कर लगाती हैं।"

"अच्छा······।"

"जी हाँ ! फिल्मी जिन्दगी की बाहरी चमक-दमक से खिंच कर रोज़ सैकड़ों लोग मुल्क के हर हिस्से से यहाँ आते हैं। लड़के गाँठ की पूँजी गँवा कर या तो वापस चले जाते हैं या फिर पर्दे पर अपना चेहरा देखने का शौक उन्हें एक्स्ट्रा बना देता है और वे फुटपाथ की ज़िन्दगी बिताने लगते हैं। लड़कियों का हश्र और भी खराब होता है। हीरोइन बनने के लिये उन्हें अपने जिस्म तक बेचने पड़ते हैं। मगर नतीजा कुछ नहीं निकलता। मीनाकुमारी और बीनाराय बनने का ख्वाब या तो खुद कशी में खत्म होता है या स्ट्रीट-गर्ल बनने में।"

"यह तो बहुत बुरी बात है। इसके लिए······।"

"शहर में सैकड़ों बोगस कम्पनियाँ खुल गयी हैं।" मि मल्कस्टरानी लिली की बात काट कर बोले। "जो अखबारों में लम्बे-चौड़े इश्तहार देती हैं; हीरो-हीरोइन बनाने की गारंटी करती हैं। भोले लोग जाल में फँसकर पैसा भी गंवाते हैं और अपनी ज़िन्दगी भी खराब करते हैं।"

मुरारी और लिली मौन रहे। कार मैरिन ड्राइव की ओर बढ़ती गयी। कुछ देर बाद सिगार बाहर फेंककर मिस्टर मल्कानी बोले—"फिल्मी ज़िन्दगी में 'कैरेक्टर' नाम की कोई चीज है ही नहीं, मिस्टर मदन ! हर

खोखलापन, धोखा, फरेब ! मेरी राय में भले लोगों को इस लाइन में आना ही नहीं चाहिए।"

"आपकी बातों से तो ऐसा ही लगता है कि फिल्मी-जिन्दगी पीतल पर चढ़े मुलम्मे की तरह ही है।" मुरारी ने पीछे छूटने वाली ऊँची-ऊँची इमारतों की तरफ देखते हुये कहा।

"बम्बई शहर ही कुछ अजीब सा है। एक तरफ आँखों को चका-चौंध करने वाली रोशनी और दूसरी तरफ घना अँधेरा। एक तरफ आसमान को छूने वाली ऊँची शानदार इमारतें और दूसरी तरफ दम घोंटने वाली कबूतरखानों की तरह और गन्दी खोलें। एक तरफ ऐश आराम की जिन्दगी और दूसरी तरफ भूख, गरीबी और बेकारी। किसी, ने ठीक ही कहा है कि आधा बम्बई महलों में सोता है और आधा फुटपाथों पर।"

बम्बई शहर के बारे में मिस्टर मल्कानी की राय मुरारी को बहुत पसन्द आयी। प्रशंसा के स्वर में बोला— "आपने थोड़े में बहुत कुछ कह दिया, मिस्टर मल्कानी। वाकई बम्बई अजीब शहर है।" और तभी लाउड-स्पीकर की आवाज गूँज गयी — "इन्साँ का नहीं कहीं नामो-निशाँ ! यह है बाम्बे मेरी जाँ।"

× × ×

मिस्टर मल्कानी के मुँह से यह सुनकर कि बम्बई में ऐसे मालिश-घर हैं जहाँ लड़कियाँ पुरुषों की मालिश करती हैं, मुरारी को बहुत आश्चर्य हुआ। अधिक पूछने पर मिस्टर मल्कानी ने यह भी बताया कि वे मालिश-घर व्यभिचार के अड्डे हैं। मालिश घर देखने की इच्छा से उसने मिस्टर मल्कानी से एक-आध का पता पूछा।

"क्यों, क्या मालिश कराने का इरादा है ?" मिस्टर मल्कानी ने मुस्करा कर पूछा।

"नहीं जी !" मुरारी भी मुस्कराया। "देखना-समझना चाहता हूँ।"

मिस्टर मल्कानी ने एक पता बता दिया।

"लिली से न कहियेगा।" मुरारी ने बायीं आँख दबाकर कहा।

"डोन्ट वरी।" कहकर मिस्टर मल्कानी सिगार सुलगाने लगे।

दोपहर को भोजन आदि से निवृत होकर के मुरारी होटल के बाहर आया। पास ही एक टैक्सी दिखायी पड़ी। उस टैक्सी को वह अक्सर होटल के आस-पास ही देखता था, मगर पिछले तीन-चार दिनों से वह नहीं दिखायी पड़ी थी। मुरारी ने संकेत किया। टैक्सी उसके सामने आकर रुक गयी।

"किदर कूँ चलना माँगता, साब ?" मुरारी के बैठते ही ड्राइवर ने पूछा।

मुरारी ने पता बता दिया।

ड्राइवर मुस्कराया। टैक्सी आगे बढ़ गयी।

"तीन चार दिन कहाँ रहे ?" मुरारी ने अपनेपन से पूछा !

"साला पुलिस ने बन्द कर दिया था।"

"बन्द कर दिया था ? क्यों...?"

"दिवाली पर अपन साला दो-चार दोस्तों के साथ पत्ता खेल रहा था।"

"जुआ खेल रहे थे ?"

"यह सरकार का अन्धेर है, साब ! साला त्योहार पर पत्ता खेलो तो चालान, मगर पाटले में साला रोज जुआ होता है उसका कुछ नहीं ! उदर महालक्ष्मी में जुआ होता है उसका कुछ भी नहीं।"

टैक्सी ड्राइवर की बात ने मुरारी को विचार-मग्न कर दिया। वह सोचने लगा कि बिचारा ठीक ही तो कहता है। सट्टे के नाम पर रोज़ लाखों का जुआ होता हैं, सैंकड़ों बनते-बिगड़ते हैं उस पर कोई पाबन्दी नहीं ! घुड़दौड़, लाटरी और वर्ग-पहेलियों के रूप में खुले आम जुआ होता है उधर सरकार का कोई ध्यान नहीं ! और त्योहार पर मन

बहलाने के लिए या शगुन के लिए ताश खेलने वाले पकड़ लिए जाते हैं! मगर तब भी पुलिस बड़े लोगों को नहीं पकड़ती। पकड़े जाते हैं बिचारे ग़रीब ही!

"साब, आप किदर से आया है ?" टैक्सी ड्राइवर का प्रश्न सुन कर मुरारी चौंक पड़ा।

"लखनऊ से।"

"उदर मसाज-हाउस होता ?"

"नहीं।" मुरारी ने उत्तर दिया। फिर पूछा—"जहाँ मैं जा रहा हूँ यह मसाज-हाउस कैसा है ?"

"एकदम फस्ट क्लास है, साब ! उदर वहोत अच्छा-अच्छा छोकरी लोग होता।"

"तुम्हें कैसे मालूम ? कभी गये हो ?"

"हँसी काये कूँ करता, साब ? साला अपन का पाकेट में इतना रुपया कहाँ ? हाँ, होटल से साब लोगों को ले जाता। तभी देखा।"

मुरारी जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगा।

"मगर साब अपना पाकेट सँभाले रहना। साला छोकरी लोग बहुत चार सौ बीस होता।"

मुरारी को उसकी चेतावनी सुन कर हँसी आ गयी।

टैक्सी ड्राइवर ने टैक्सी जिस इमारत के सामने रोकी वह पाँच मंज़िल की थी। ऊपर जाने के लिए लिफ्ट लगी थी। मुरारी टैक्सी से उत्तर कर इमारत का निरिक्षण करने लगा। अनेक रंग-बिरंगे साइन-बोर्ड लगे थे। बाहर से यही मालूम होता था कि इस इमारत में व्यवसायिक दफ्तर हैं। कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता था कि तीसरे खंड के एक फ्लैट में मालिश-घर की ओट में शरीर का व्यवसाय होता है।

मुरारी को झिझकता देखकर ड्राइवर बोला—"तीसरे माले में

जाइये, साब !"

मुरारी उसका किराया अदा करने के लिए जेब से पर्स निकालने लगा। ड्राइवर ने टोक कर कहा—"किराया काये कूँ देता, साब ? अपन इदर वेट करेगा।"

मुरारी वरामदे की सीढ़ियाँ चढ़कर लिफ्ट की ओर बढ़ा। लिफ्ट में प्रवेश करके उसने लिफ्ट वाले को तीसरी मंजिल पर पँहुचाने का आदेश दिया। लिफ्ट वाले ने लिफ्ट का द्वार बन्द करके बटन दबाया और लिफ्ट घरर-घरर करके ऊपर चढ़ने लगी। मुरारी को लगा कि लिफ्ट वाला उसकी तरफ अजीब दृष्टि से देख रहा है; शायद वह उसे भी अन्य "कस्टमरों" की तरह ही समझ रहा है; शायद वह मन-ही-मन सोच रहा है कि यह बाबू भी पैसे के ज़ोर से अपनी प्यास बुझाने जा रहा है। मुरारी का दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। माथे पर पसीने की बूँदें छलक आयीं। लिफ्ट वाले की आँखों से आँख मिलाने का साहस न हुआ।

लिफ्ट तीसरी मंजिल पर पँहुच कर रुक गयी। लिफ्ट वाले ने द्वार खोल दिया। मुरारी बाहर आकर सिगरेट सुलगाने लगा। गैलरी में कुछ बच्चे खेल रहे थे। शायद कमरों में कुछ परिवार रहते हों। उसकी समझ में न आया कि किधर जाये। दाहिनी ओर कुछ कदम बढ़ाने पर सामने की ओर एक बड़ा बोर्ड दिखायी दिया। लिखा था—"मसाज एन्ड बाथ हाउस।"

मुरारी की इच्छा हुई कि वापस लौट जाये। लौटने के लिए मुड़ा भी। फिर सोचा, यहाँ तक आया हूँ तो देखने में क्या हर्ज है ? और वह घूमकर तेज़ी से मालिश-घर की ओर चल दिया।

जिस कमरे में उसने प्रवेश किया वह छोटा पर स्वच्छ था। दीवारों पर शरीर-विज्ञान सम्बन्धी अनक चार्ट तथा चित्र टँगे थे। एक अलमारी में बहुत सी शीशियाँ रक्खी थीं। बैठने के लिए कुर्सियाँ पड़ी थीं।

तीन-चार व्यक्ति बैठे सिगरेट पी रहे थे। कोने में एक छोटी सी मेज़ थी। वहीं एक अधेड़ व्यक्ति आँखों पर चश्मा लगाये बैठा था। मुरारी ने अनुमान लगाया कि वही मालिश-घर का मालिक है।

"आइये, इधर आइये!" मुरारी के घुसते ही उस व्यक्ति ने उसे अपने समीप बुलाया।

मुरारी उसके सामने वाली कुर्सी पर बैठ गया।

"मसाज एन्ड बाथ बोथ आर ओनली ड्राई मसाज ?"

मुरारी की समझ में न आया कि क्या उत्तर दे।

"मसाज और बाथ दोनों का दस रुपया; सिरफ मसाज का पाँच रुपया!" कहकर उस व्यक्ति ने अपना हाथ मुरारी के आगे फैला दिया।

मुरारी ने पाँच रुपये का नोट उसके हाथ पर रख दिया।

"थैंक्स। अब आप उधर बैठिये।" और लोगों की ओर इशारा करके वह व्यक्ति बोला। "अभी छोकरी लोग फ़्री नहीं हैं।"

मुरारी उठकर अन्य बैठे हुये लोगों के पास बैठ गया।

"इदर नहीं, उदर बैठो बाबा! आपका नम्बर पाछू है।"

मुरारी उठकर दूसरी ओर बैठ गया।

कमरे का एक द्वार दूसरे कमरे में खुलता था। द्वार पर पर्दा पड़ा था। अन्दर से स्त्री-पुरुष की मिली-जुली आवाजें आ रही थीं। कभी-कभी किसी लड़की की हँसी का स्वर गूँज उठता था। मुरारी ने सोचा कि उसी कमरे में मालिश का प्रबन्ध होगा। वह सिमटा-सिकुड़ा सा बैठा था। हृदय की धड़कनों की गति तीव्र थी। गला सूख रहा था मानो उसे तेज़ बुखार हो।

एक व्यक्ति अन्दर के कमरे से निकला और बिना किसी की ओर देखे बाहर चला गया। एक क्षण बाद ही एक दुबली-पतली लड़की बाहर आयी।

"योर नम्बर, प्लीज।" मेज़ के पास बैठे हुये व्यक्ति ने उस व्यक्ति से कहा जिसने मुरारी को अपने पास बैठने से रोका था।

उस व्यक्ति ने दृष्टि उठाकर लड़की की ओर देखा। फिर भारी स्वर में बोला— "हम दूसरा छोकरी माँगता।"

"तब बैठो रहो।" कहकर दूसरा व्यक्ति उस लड़की के साथ अन्दर चला गया।

मुरारी का दम घुटने लगा। साँस लेने में कठिनाई होने लगी। लगा कि यदि वह खुली हवा में नहीं जाता तो बेहोश हो जायेगा।

"हम बाहर वेट करता।" कह कर मुरारी बाहर चला आया। गैलरी में पँहुच कर उसने खुल कर साँस ली। फिर वह तेज़ी से लिफ्ट की ओर चल दिया। जब लिफ्ट के पास पहुँचा तो लिफ्ट नीचे से ऊपर की ओर आ रही थी। वह प्रतीक्षा करने लगा। लिफ्ट उसी मंजिल पर रुक गयी। द्वार खुलते ही एक लड़की बाहर निकली।

उस लड़की को देखकर मुरारी चौंक पड़ा। सूरत पहचानी सी लगी। उस लड़की ने भी उसे ध्यान से देखा, कुछ झिझकी और फिर मन्द गति से मालिश-घर की ओर चल दी।

सहसा उसके मस्तिष्क में पूर्व-स्मृति बिजली की तरह कौंध गयी। वह तेज़ी से लड़की की ओर बढ़ा और पास पँहुच कर धीमे स्वर में कहा—"उमा! तुम यहाँ कहाँ?"

लड़की रुक गयी। उसने मुरारी की ओर देखा। आँखों में चमक आ गयी परन्तु वह चमक पल भर में ही विलीन हो गयी।

"आपको धोखा हुआ है। मैं उमा नहीं हूँ।" लड़की धीमे स्वर में दृष्टि दूसरी ओर करके बोली।

"मैंने तुम्हें पहचान लिया है, उमा! छिपाने से कोई फायदा नहीं!"

"मगर आप······?"

"मैं मुरारी हूँ—कामिनी का मास्टर! याद है न?"

"मगर···मगर कामिनी तो कहती थी आप···! अखबार में भी······।" उमा विस्मय से मुरारी की ओर देखने लगी।

"वह एक लम्बी कहानी है, उमा! बस इतना समझ लो कि मुरारी दुनिया की नज़र में मर चुका है। अब मैं मुरारी नहीं मदन हूँ।" मुरारी मन्द स्वर में बोला। "मगर तुम अपनी सुनाओ! क्या इसी बिल्डिंग में रहती हो?"

"यहाँ काम करती हूँ।" नज़र नीची करके उमा ने उत्तर दिया।

"काम करती हो? कहाँ···?" मुरारी ने शंकित स्वर में पूछा।

"मसाज-हाउस में।" कहकर उमा धोती के अंचल से अपने आँसू पोंछने लगी।

मुरारी की छाती पर मुक्का सा पड़ा। बड़े घर की बेटी उमा यहाँ कैसे आ गयी?

"मगर···मगर तुम बम्बई······।"

"वह एक लम्बी कहानी है, मास्टर साहब! अगर आपका कहना माना होता तो······।" उमा सिसकने लगी।

'घबराओ मत, उमा! सब ठीक हो जायेगा। छुट्टी लेकर नीचे आओ। मैं प्रतीक्षा करूँगा!"

"वह हत्यारा छुट्टी नहीं देगा। चलिए, ऐसे ही चलती हूँ।" कहकर उमा मुड़ कर लिफ्ट की ओर चल दी।

मुरारी और उमा लिफ्ट से नीचे पहुँचे। लिफ्ट वाले की हथेली पर जब मुरारी ने एक रुपये का नोट रखा तो वह आशिष देने लगा। दोनों आगे बढ़े। टैक्सी अपने स्थान पर खड़ी थी मगर ड्राइवर सामने वाली पान की दूकान के पास खड़ा दूकानदार को समझा रहा था—"लराई-झगरा क्यूँ करता, बाय? अपना धन्धा देखो! चार दिन की ज़िन्दगी है; मेल-मुलाकात से रहो।"

तभी ड्राइवर की दृष्टि मुरारी पर पड़ गयी। भाषण बन्द करके

भागता हुआ आया। मुरारी और उमा पीछे बैठ गये। ड्राइवर ने अपने स्थान पर बैठ कर प्रश्न किया-- "अब किदर कूँ चलूँ, साब ?"

मुरारी एकान्त स्थान चाहता था, जहाँ उमा से बिना विघ्न-बाधा के बात कर सके। उसके मुख से अचानक निकल गया--"हैंगिंगगार्डेन।"

ड्राइवर टैक्सी आगे बढ़ाते हुये बोला—"वहोत अच्छा जगा है, साब ! अबी पँहोचता।"

रास्ते भर दोनों मौन बैठे रहे। ड्राइवर कुछ न कुछ बड़बड़ाता ही रहा। कभी सरकार की आलोचना करता, कभी कारपोरेशन की। कभी धन्धे की मन्दी का दुखड़ा रोता, कभी पुलिस का ज्यादती का।

हैंगिंग-गार्डेन पहुँच कर दोनों एक एकान्त बैन्च पर बैठ गये। मुरारी ने सोचा कि उमा का संकोच दूर करने के लिए पहले अपनी कहानी सुनाना ठीक रहेगा। उसने संक्षेप में पागलखाने जाने, वहाँ से भागने, लिली की कार मिलने, दुर्घटना होने और फिर मदन का रोल अदा करने की बातें बता दीं। उमा कुतूहल से सुनती रही।

"अब तुम अपनी सुनाओ, उमा ! आगरा छोड़ कर बम्बई कैसे आ गयीं और···और इस जिन्दगी······।" मुरारी अपना वाक्य पूरा न कर सका।

"यह तो आपको मालूम ही है कि मैं पति से झगड़ कर आगरे आ गयी थी। आपने कामिनी से कहलवाया भी था कि मुझे पति के पास चली जाना चाहिए। मगर मैं मूर्ख थी; मति पर पत्थर पड़े थे। अपनी ज़िद पर अड़ी रही। कुछ दिन तो ठीक रहा फिर सौतेली माँ ताने देने लगी, डाँटने-डपटने लगी।"

बोलते-बोलते उमा रुक गयी, मानो पिछली बातों की चर्चा से उसकी अन्तरात्मा को दुख हो रहा हो। कुछ देर बाद फिर कहने लगी—

"सामने के मकान में एक लड़का रहता था। वह अक्सर मेरी तरफ देखा करता था। मैं भी उसकी ओर खिंच चली। चिट्ठियाँ आने-जाने

लगीं। लुक-छिप कर मिलना-जुलना हुआ। उसने मुझे रंगीन सपने दिखाये। मैं छलावे में आ गयी और एक रात को कुछ नकदी और ज़ेवर लेकर उसके साथ चल दी। हम दोनों बम्बई आये। एक होटल में ठहरे। पैसा पानी की तरह खर्च होने लगा। नकद रुपया खर्च हो गया। एक दिन उसने बेचने के लिए ज़ेवर माँगे। मैंने दे दिये। वह ज़ेवर लेकर गया, फिर लौट कर न आया। मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। होटल वाला बिल अदा करके होटल छोड़ने की धमकी देने लगा।"

उमा का स्वर अवरुद्ध होने लगा। आँखों में आँसू भर आये। अंचल से आँसू पोंछ कर अपने को संयत रखने की भरसक चेष्टा करती हुयी बोली—

"मैं रोयी, गिड़गिड़ायी! मगर उसे तो पैसा चाहिए था। घर का पता बता कर उससे तार देने की विनती की। पैसा वसूल होने की आशा से उसने तार दिया मगर पिता जी ने रुपये नहीं भेजे। उत्तर दिया कि मेरा अब उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है; मैं उनके लिए मर चुकी हूँ! एक सहारा था वह भी टूट गया। समुद्र में डूब कर जान देने की सोची मगर कम्बख्त होटल वाला बाहर जाने ही न देता था। सब तरफ से मजबूर होकर मुझे होटल वाले की बात माननी पड़ी; उसका बिल अदा करने के लिए अपना शरीर······।"

उमा अंचल में मुँह छिपा कर सिसकने लगी। मुरारी ने समझाने की कोशिश नहीं की। वह जानता था कि आँसुओं का निकल जाना ही ठीक है; रोने से जी हल्का हो जायेगा।

"उसी होटल वाले ने कुछ दिन बाद इस मसाज-हाउस में रखवा दिया।" कुछ देर बाद उमा बोली। "सोचा था पेट भरने के लिए छोटी मोटी नौकरी ही सही। मगर बाद में मालूम हुआ कि मालिश की आड़ में यहाँ भी पाप और व्यभिचार का अड्डा है।"

भागता हुआ आया। मुरारी और उमा पीछे बैठ गये। ड्राइवर ने अपने स्थान पर बैठ कर प्रश्न किया–– "अब किदर कूँ चलूँ, साब ?"

मुरारी एकान्त स्थान चाहता था, जहाँ उमा से बिना बिघ्न-बाधा के बात कर सके। उसके मुख से अचानक निकल गया––"हैंगिंगगार्डेन।"

ड्राइवर टैक्सी आगे बढ़ाते हुये बोला—"बहोत अच्छा जगा है, साब ! अबी पँहोचता।"

रास्ते भर दोनों मौन बैठे रहे। ड्राइवर कुछ न कुछ बड़बड़ाता ही रहा। कभी सरकार की आलोचना करता, कभी कारपोरेशन की। कभी धन्धे की मन्दी का दुखड़ा रोता, कभी पुलिस का ज्यादती का।

हैंगिंग-गार्डेन पहुँच कर दोनों एक एकान्त बैन्च पर बैठ गये। मुरारी ने सोचा कि उमा का संकोच दूर करने के लिए पहले अपनी कहानी सुनाना ठीक रहेगा। उसने संक्षेप में पागलखाने जाने, वहाँ से भागने, लिली की कार मिलने, दुर्घटना होने और फिर मदन का रोल अदा करने की बातें बता दीं। उमा कुतूहल से सुनती रही।

"अब तुम अपनी सुनाओ, उमा ! आगरा छोड़ कर बम्बई कैसे आ गयीं और···और इस ज़िन्दगी······।" मुरारी अपना वाक्य पूरा न कर सका।

"यह तो आपको मालूम ही है कि मैं पति से झगड़ कर आगरे आ गयी थी। आपने कामिनी से कहलवाया भी था कि मुझे पति के पास चली जाना चाहिए। मगर मैं मूर्ख थी; मति पर पत्थर पड़े थे। अपनी ज़िद पर अड़ी रही। कुछ दिन तो ठीक रहा फिर सौतेली माँ ताने देने लगी, डाँटने-डपटने लगी।"

बोलते-बोलते उमा रुक गयी, मानो पिछली बातों की चर्चा से उसकी अन्तरात्मा को दुख हो रहा हो। कुछ देर बाद फिर कहने लगी—

"सामने के मकान में एक लड़का रहता था। वह अक्सर मेरी तरफ देखा करता था। मैं भी उसकी ओर खिंच चली। चिट्ठियाँ आने-जाने

लगीं। लुक-छिप कर मिलना-जुलना हुआ। उसने मुझे रंगीन सपने दिखाये। मैं छलावे में आ गयी और एक रात को कुछ नकदी और ज़ेवर लेकर उसके साथ चल दी। हम दोनों बम्बई आये। एक होटल में ठहरे। पैसा पानी की तरह खर्च होने लगा। नकद रुपया खर्च हो गया। एक दिन उसने बेचने के लिए ज़ेवर माँगे। मैंने दे दिये। वह ज़ेवर लेकर गया, फिर लौट कर न आया। मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। होटल वाला बिल अदा करके होटल छोड़ने की धमकी देने लगा।"

उमा का स्वर अवरुद्ध होने लगा। आँखों में आँसू भर आये। अँचल से आँसू पोंछ कर अपने को संयत रखने की भरसक चेष्टा करती हुयी बोली—

"मैं रोयी, गिड़गिड़ायी! मगर उसे तो पैसा चाहिए था। घर का पता बता कर उससे तार देने की विनती की। पैसा वसूल होने की आशा से उसने तार दिया मगर पिता जी ने रुपये नहीं भेजे। उत्तर दिया कि मेरा अब उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है; मैं उनके लिए मर चुकी हूँ! एक सहारा था वह भी टूट गया। समुद्र में डूब कर जान देने की सोची मगर कम्बख्त होटल वाला बाहर जाने ही न देता था। सब तरफ से मजबूर होकर मुझे होटल वाले की बात माननी पड़ी; उसका बिल अदा करने के लिए अपना शरीर······।"

उमा अँचल में मुँह छिपा कर सिसकने लगी। मुरारी ने समझाने की कोशिश नहीं की। वह जानता था कि आँसुओं का निकल जाना ही ठीक है; रोने से जी हल्का हो जायेगा।

"उसी होटल वाले ने कुछ दिन बाद इस मसाज-हाउस में रखवा दिया।" कुछ देर बाद उमा बोली। "सोचा था पेट भरने के लिए छोटी मोटी नौकरी ही सही। मगर बाद में मालूम हुआ कि मालिश की आड़ में यहाँ भी पाप और व्यभिचार का अड्डा है।"

"रहती कहाँ हो ?"

"एक छोटी सी कोठरी है। उसमें चार लड़कियाँ रहती हैं।"

"कितनी तनख्वाह मिलती है ?"

"तनख्वाह के नाम पर कुछ भी नहीं मिलता। बल्कि हमें अपनी कमाई से मालिक को आधा देना पड़ता है।"

मुरारी कुछ बोला नहीं। उसकी अन्तरात्मा उमा और उसी की तरह अन्य अभागिनों के लिए आँसू बहा रही थी।

"अब कृपा करके मुझे वहीं पहुँचा दीजिये। अगर आज कुछ न कमाया तो पेट भी नहीं भरेगा।" उमा करुण स्वर में बोली।

"पेट भरने के लिए अब तुम्हें शरीर बेचने की ज़रूरत नहीं है, उमा ! चलो मेरे साथ ! मैं तुम्हें लखनऊ ले चलूँगा।"

उमा को अपने कानों पर विश्वास न हुआ। क्या इस नरक से मुक्ति मिलना सम्भव है ? उसने तो समझा था कि जीवन भर इस आग में जलना पड़ेगा।

"क्या···क्या···।" उमा आगे न बोल सकी। कंठ हर्षातिरेक से रुँध गया। वह साश्रु नयनों से मुरारी की ओर देखने लगी।

"हाँ उमा, तुम मेरे साथ लखनऊ चलो।" मुरारी उठ कर बोला। "तुम्हें अपना सामान लेना है ?"

"सामान है ही क्या ?" उमा खड़ी हो गयी। "एक ट्रंक है।"

"ट्रंक यहीं छोड़ दो। आज से तुम्हारा नया जीवन शुरू हो रहा है।" मुरारी बोला। एक क्षण रुक कर पूछा—"बम्बई छोड़ने की सूचना अपनी संगिनों को देना जरूरी है ?"

"कोई जरूरी नहीं। समझ लेंगी कि आत्म-हत्या कर ली।"

मुरारी और उमा टैक्सी की ओर चल दिये। उमा बहुत प्रसन्न थी।

"देखो, लिली को यह न मालूम होने पाये कि हम एक दूसरे को

पहले से जानते हैं।" मुरारी ने समझाया। "भूल कर भी मुझे मास्टर साहब कह कर न पुकारना।"

"फिर क्या कहा करूँ ?"

"मदन बाबू। मैं लिली से कह दूँगा कि तुम्हें बेसहारा पाकर मैं अपने साथ ले आया हूँ।"

टैक्सी के समीप पहुँच कर मुरारी ने देखा कि ड्राइवर गायब है। वह झुँझला पड़ा। इधर-उधर देखा; कहीं नज़र न आया। चिढ़ कर हार्न बजाने लगा।

कुछ दूरी पर एक टी-स्टाल था। ड्राइवर उसके अन्दर से निकल कर भागता हुआ आया।

"कहाँ चले गये थे ?" मुरारी ने चिढ़ कर पूछा।

"साब, एक पुराना दोस्त मिल गया था। वो चाय पीने कूँ बोला। अपन सोचा जब साला फोकट का माल मिलता तब काये कूँ छोड़ूँ।" टैक्सी का द्वार खोल कर ड्राइवर एक साँस में कह गया।

मुरारी की झुँझलाहट उसकी बात सुन कर काफ़ूर हो गयी। वह मुस्करा कर टैक्सी में बैठ गया। उमा उसके पास बैठ गयी।

"अब किदर कूँ चलूँ, साब ?" टैक्सी स्टार्ट करके ड्राइवर ने अपने सधे लहज़े में पूछा।

"होटल।" मुरारी ने आदेश दिया।

जिस समय मुरारी और उमा होटल पहुँचे, मिस्टर मल्कानी कहीं बाहर गये हुये थे। लिली कमरे में अकेली थी। उमा को देख कर उसने प्रश्न भरी दृष्टि मुरारी की ओर घुमायी।

"बेचारी बेसहारा है। इसे लखनऊ ले चलेंगे।"

लिली ने फिर उमा की तरफ देखा। उमा दृष्टि नीची किये खड़ी थी। लिली ने सिर से पैर तक उसके जिस्म को परखा और फिर मुरारी की ओर नज़र घुमा कर बोली—"तुम भी क्या तमाशा ले आये हो ?"

"लिली यह मुसीबत की मारी है। हम...।"

"अच्छा, अच्छा, बस करो।" मुरारी की बात बीच में ही काट कर लिली बोली। फिर उमा से कहने लगी—"नहा-धोकर कपड़े बदल लो। अन्दर वाले कमरे में मेरे कपड़े रक्खे हैं।"

उमा लिली के वस्त्र लेकर बाथ-रूम में घुस गयी।

"कहाँ मिल गयी?" लिली ने धीमे स्वर में पूछा।

"सड़क पर।" मुरारी गोल उत्तर देकर सिगरेट सुलगाने लगा।

लिली समझ गयी कि मुरारी विस्तार में नहीं बताना चाहता। फिर उसने उमा के बारे में और कुछ नहीं पूछा। उमा सुन्दर थी, जवान थी। उसके लिए इतना ही काफी थी। वह यह सोच कर प्रसन्न हो रही थी कि छाया का अभाव दूर हो जायेगा।

उमा जब बाथ रूम से बाहर आयी तो उसका चेहरा निखरा हुआ था। लिली के वस्त्र उस पर खूब फब रहे थे। लिली ने प्रशंसात्मक दृष्टि से उसको देखा और फिर उसे अपने पास बिठा कर मुरारी से बोली—"बैरा से जलपान के लिए तो कह दो। न जाने कब की भूखी हो बेचारी!"

मुरारी ने घण्टी बजा दी। बैरे के आने पर उसने चाय-नाश्ता लाने का आदेश दे दिया। बैरा चला गया।

"तुम्हारा क्या नाम है?" लिली ने उमा से पूछा।

"उमा...।"

"मेरा लिली है। मगर तुम मुझे दीदी कह सकती हो।"

उमा ने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा और फिर पलकें झुका लीं।

जलपान के बाद मुरारी ने लिली से कहा—"बम्बई तो घूम चुके। अब न हो तो कल वापस चला जाये।"

"ऐसी जल्दी क्या है?" लिली मुस्करा कर बोली। "ज़रा उमा

को भी बम्बई घुमा दें। दो-चार दिन में चले जायेंगे।"

और उमा को भली प्रकार बम्बई घुमा कर मुरारी और लिली ने पाँच दिन बाद बम्बई से विदा ली तीस। नवम्बर की शाम को वे लखनऊ पहुँच गये!

(६)

मुरारी यह नहीं चाहता था कि उमा को और लड़कियों की तरह अपना शरीर बेचना पड़े। इसलिए उसने उसको समझा दिया था कि दिन में तो वह सब लड़कियों से हिले-मिले मगर रात को सज-धज कर हाल में आने के बजाय बीमारी का बहाना करके अपने कमरे में ही रहे! मुरारी यह भी जानता था कि बीमारी का यह स्वाँग अधिक दिन तक नहीं चल सकता और एक न एक दिन लिली से उमा के बारे में कहा-सुनी अवश्य होगी।

चार-पाँच दिन तो कोई बात नहीं हुई। लिली ने भी उमा से कुछ नहीं कहा। मगर धीरे-धीरे लिली का उमा के प्रति व्यवहार रूखा होता गया। यह बात मुरारी से छिपी न रही। एक दिन शाम को लिली ने उमा को अपने कमरे में बुलवाया। मुरारी भी वहीं था। उमा आकर चुपचाप खड़ी हो गयी।

"उमा, आज रात को और लड़कियों की तरह तुम भी हाल में आना।" लिली ने कड़े स्वर में आदेश दिया।

"जी, मेरी तबियत······।"

"बीमारी का बहाना अब और नहीं चलेगा।" लिली डाँट कर बोली। 'मैंने यहाँ कोई खैरातखाना नहीं खोल रक्खा है।"

लिली की डाँट सुन कर उमा सहम गयी।

"उमा अपने कमरे में ही रहेगी।" मुरारी तभी बोल पड़ा

"क्यों ?"

"क्योंकि उसकी तबियत खराब है।"

"तबियत खराब है या तुम नहीं चाहते।" लिली के स्वर में व्यंग्य की कटुता आ गयी।

"ऐसा ही समझ लो।" मुरारी शान्त स्वर में बोला।

"मगर क्यों ?" लिली फुत्कार कर बोली। "तुम्हारी कौन है उमा ?"

"तुम अपने कमरे में जाओ, उमा !" मुरारी ने लिली के प्रश्न का उत्तर न देकर उमा से कहा।

उमा जिस तरह आयी थी उसी तरह चुपचाप चली गयी।

"मैं पूछती हूँ, क्या नाता है तुम्हारा उससे ?" लिली ने चिढ़ कर तेज़ स्वर में पूछा।

"इन्सानियत का नाता।" मुरारी का स्वर गम्भीर था।

"साफ क्यों नहीं कह देते कि तुम उसे चाहते हो।"

"लिली !" मुरारी चीख पड़ा।

"उसे तुम रखैल बना कर रखना चाहते हो ! वह मेरी सौत है ? यही बात है न ?" लिली सीना तान कर खड़ी हो गयी। उसकी मुट्ठियाँ बँध गयीं और माथे की नसें फूल आयीं।

मुरारी लिली का यह नया रूप देख कर काँप उठा। लिली ईर्ष्या की भयंकर ज्वाला में दग्ध हो रही थी, यह उससे छिपा न रहा। समझाने की चेष्टा करता हुआ बोला—"जो कुछ तुम सोच रही हो, वह ग़लत है, लिली ! मेरे और उमा के बीच में इस तरह की कोई बात नहीं है।"

"तुम औरत की आँख को धोखा नहीं दे सकते।"

"पागलपन छोड़ दो, लिली। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारा ख्याल ग़लत है।" मुरारी धीमे स्वर में बोला। "अगर ज़रा-ज़रा सी बातों पर हम झगड़ेंगे तो कैसे काम चलेगा ?"

"अगर वह तुम्हारी कोई नहीं है तो तुम उसे हाल में क्यों नहीं आने देते ? बोलो, जवाब दो !"

"मेरे पास इसका कोई जवाब नहीं है।"

(६)

मुरारी यह नहीं चाहता था कि उमा को और लड़कियों की तरह अपना शरीर बेचना पड़े। इसलिए उसने उसको समझा दिया था कि दिन में तो वह सब लड़कियों से हिले-मिले मगर रात को सज-धज कर हाल में आने के बजाय बीमारी का बहाना करके अपने कमरे में ही रहे! मुरारी यह भी जानता था कि बीमारी का यह स्वाँग अधिक दिन तक नहीं चल सकता और एक न एक दिन लिली से उमा के बारे में कहा-सुनी अवश्य होगी।

चार-पाँच दिन तो कोई बात नहीं हुई। लिली ने भी उमा से कुछ नहीं कहा। मगर धीरे-धीरे लिली का उमा के प्रति व्यवहार रूखा होता गया। यह बात मुरारी से छिपी न रही। एक दिन शाम को लिली ने उमा को अपने कमरे में बुलवाया। मुरारी भी वहीं था। उमा आकर चुपचाप खड़ी हो गयी।

"उमा, आज रात को और लड़कियों की तरह तुम भी हाल में आना।" लिली ने कड़े स्वर में आदेश दिया।

"जी, मेरी तबियत······।"

"बीमारी का बहाना अब और नहीं चलेगा।" लिली डाँट कर बोली। 'मैंने यहाँ कोई खैरातखाना नहीं खोल रक्खा है।"

लिली की डाँट सुन कर उमा सहम गयी।

"उमा अपने कमरे में ही रहेगी।" मुरारी तभी बोल पड़ा

"क्यों ?"

"क्योंकि उसकी तबियत खराब है।"

"तबियत खराब है या तुम नहीं चाहते।" लिली के स्वर में व्यंग्य की कटुता आ गयी।

"ऐसा ही समझ लो।" मुरारी शान्त स्वर में बोला।

"मगर क्यों ?" लिली फुत्कार कर बोली। "तुम्हारी कौन है उमा ?"

"तुम अपने कमरे में जाओ, उमा !" मुरारी ने लिली के प्रश्न का उत्तर न देकर उमा से कहा।

उमा जिस तरह आयी थी उसी तरह चुपचाप चली गयी।

"मैं पूछती हूँ, क्या नाता है तुम्हारा उससे ?" लिली ने चिढ़ कर तेज़ स्वर में पूछा।

"इन्सानियत का नाता।" मुरारी का स्वर गम्भीर था।

"साफ क्यों नहीं कह देते कि तुम उसे चाहते हो।"

"लिली !" मुरारी चीख पड़ा।

"उसे तुम रखैल बना कर रखना चाहते हो ! वह मेरी सौत है ? यही बात है न ?" लिली सीना तान कर खड़ी हो गयी। उसकी मुट्ठियाँ बँध गयीं और माथे की नसें फूल आयीं।

मुरारी लिली का यह नया रूप देख कर काँप उठा। लिली ईर्ष्या की भयंकर ज्वाला में दग्ध हो रही थी, यह उससे छिपा न रहा। समझाने की चेष्टा करता हुआ बोला—"जो कुछ तुम सोच रही हो, वह ग़लत है, लिली ! मेरे और उमा के बीच में इस तरह की कोई बात नहीं है।"

"तुम औरत की आँख को धोखा नहीं दे सकते।"

"पागलपन छोड़ दो, लिली। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारा ख्याल ग़लत है।" मुरारी धीमे स्वर में बोला। "अगर ज़रा-ज़रा सी बातों पर हम झगड़ेंगे तो कैसे काम चलेगा ?"

"अगर वह तुम्हारी कोई नहीं है तो तुम उसे हाल में क्यों नहीं आने देते ? बोलो, जवाब दो !"

"मेरे पास इसका कोई जवाब नहीं है।"

"मगर मेरे पास है।" लिली फिर क्रुद्ध हो उठी। "इस कोठी की स्वामिनी मैं हूँ। यहाँ वही होगा जो मैं चाहूँगी। आज शहर के एक खास रईस आ रहे हैं। उमा को हाल में आना ही पड़ेगा।"

"अगर ऐसा हुआ तो अच्छा नहीं होगा, लिली।" मुरारी इस बार धमकी के स्वर में बोला। "यह मत भूलो कि तुम मुझसे लड़ कर अपना ही अहित करोगी।"

मुरारी की धमकी का तात्पर्य लिली से छिपा न रहा। विस्मय और भय से उसकी ओर देख कर बोली—"उमा के लिए तुम मुझे बरबाद कर दोगे? खुद पागलखाने चले जाओगे?"

"हाँ, मैं उमा के लिए सब कुछ कर सकता हूँ।" मुरारी दृढ़ स्वर में बोला।

"और फिर भी कहते हो कि तुम्हें उससे प्यार नहीं है।"

"प्यार के मर्म को तुम नहीं समझ सकती, लिली।" मुरारी गम्भीर स्वर में बोला। "तुम्हारी नज़र में स्त्री-पुरुष का शारीरिक सम्बन्ध ही प्यार है। शायद तुम नहीं जानती कि भाई-बहन के बीच में भी प्यार की पावन गंगा बहती है।"

अपनी बात समाप्त करके मुरारी तेज़ी से बाहर चला गया। उसके इस कथन की प्रतिक्रिया लिली पर क्या हुई वह यह तो न जान सका पर हाँ उस रात को लिली ने उमा से हाल में जाने के लिए नहीं कहा।

दिन बीतते गये। लिली मुरारी से रूठी-रूठी रहने लगी। मुरारी ने मनाने की चेष्टा भी नहीं की। लिली को शायद विश्वास नहीं हुआ था कि मुरारी उमा को बहन के रूप में देखता है। उसकी दृष्टि में उमा सौत ही थी।

तभी एक दिन मुरारी की दृष्टि एक ऐसे समाचार पर पड़ी जिसने उसे उद्विग्न कर दिया। दिल्ली से प्रकाशित होने वाले एक समाचार-पत्र में छपा था—

"सरकारी डाक्टर की काली करतूतें !
डाक्टर रँगरेलियों में मस्त रहा !!
बिचारा रोगी मर गया !!!

मेरठ के सरकारी अस्पताल के डाक्टर श्री दिलीपकुमार की असावधानी के कारण एक रोगी की मृत्यु हो गयी। ज्ञात हुआ है कि रोगी की चिन्ताजनक दशा पर ध्यान न देकर वे अस्पताल की एक नर्स को लेकर रँगरेली मनाने चले गये थे। रोगी के सम्बन्धियों ने उच्चाधिकारियों से शिकायत की है। मामले की जाँच जारी है। श्री दिलीपकुमार पहले आगरा में थे और अभी हाल में ही स्वेच्छा से तबादला करा कर मेरठ आये थे। इस घटना से नगर की जनता में काफी क्षोभ है। श्री दिलीपकुमार को नौकरी से बरख्वास्त कर दिया जायेगा, ऐसी सम्भावना है।"

इस समाचार ने मुरारी को व्याकुल कर दिया। उसके हृदय ने कहा कि दिलीप अवश्य माया को छोड़ कर मेरठ चला गया होगा। माया आगरे में अकेली रह गयी होगी। कैसे गुज़र करती होगी ? क्या करती होगी ? और माया का चेहरा आँखों के सामने घूमने लगा। उसकी आँसू भरी आँखें उसे आमंत्रण देने लगीं। आगरा जाकर माया को देखने की इच्छा हुई। मगर वह आगरा जाये कैसे ? दुनियाँ की दृष्टि में वह मर चुका है। आगरा जाना ठीक नहीं।

मुरारी दिन भर बेचैन रहा, उदास रहा। शाम को जब वह उमा के कमरे में गया तो उमा उसकी व्याकुलता देख कर सिहर उठी। वह यह जानती थी कि उसके लिए मुरारी और लिली में कहा-सुनी हुई है। मुरारी की दशा देख कर उसे आत्म-ग्लानि हुई।

"आपके कष्टों की जड़ मैं ही हूँ।" वह मन्द और दुखी स्वर में बोली। "न यहाँ आती और न आप दोनों में लड़ाई होती।"

"ऐसा न कहो, उमा।" मुरारी दयनीय स्वर में बोला।

"मगर मेरे पास है।" लिली फिर क्रुद्ध हो उठी। "इस कोठी की स्वामिनी मैं हूँ। यहाँ वही होगा जो मैं चाहूँगी। आज शहर के एक खास रईस आ रहे हैं। उमा को हाल में आना ही पड़ेगा।"

"अगर ऐसा हुआ तो अच्छा नहीं होगा, लिली।" मुरारी इस बार धमकी के स्वर में बोला। "यह मत भूलो कि तुम मुझसे लड़ कर अपना ही अहित करोगी।"

मुरारी की धमकी का तात्पर्य लिली से छिपा न रहा। विस्मय और भय से उसकी ओर देख कर बोली—"उमा के लिए तुम मुझे बरबाद कर दोगे? खुद पागलखाने चले जाओगे?"

"हाँ, मैं उमा के लिए सब कुछ कर सकता हूँ।" मुरारी दृढ स्वर में बोला।

"और फिर भी कहते हो कि तुम्हें उससे प्यार नहीं है।"

"प्यार के मर्म को तुम नहीं समझ सकती, लिली।" मुरारी गम्भीर स्वर में बोला। "तुम्हारी नजर में स्त्री-पुरुष का शारीरिक सम्बन्ध ही प्यार है। शायद तुम नहीं जानती कि भाई-बहन के बीच में भी प्यार की पावन गंगा बहती है।"

अपनी बात समाप्त करके मुरारी तेज़ी से बाहर चला गया। उसके इस कथन की प्रतिक्रिया लिली पर क्या हुई वह यह तो न जान सका पर हाँ उस रात को लिली ने उमा से हाल में जाने के लिए नहीं कहा।

दिन बीतते गये। लिली मुरारी से रूठी-रूठी रहने लगी। मुरारी ने मनाने की चेष्टा भी नहीं की। लिली को शायद विश्वास नहीं हुआ था कि मुरारी उमा को बहन के रूप में देखता है। उसकी दृष्टि में उमा सौत ही थी।

तभी एक दिन मुरारी की दृष्टि एक ऐसे समाचार पर पड़ी जिसने उसे उद्विग्न कर दिया। दिल्ली से प्रकाशित होने वाले एक समाचार-पत्र में छपा था—

"सरकारी डाक्टर की काली करतूतें !
डाक्टर रँगरेलियों में मस्त रहा !!
बिचारा रोगी मर गया !!!

मेरठ के सरकारी अस्पताल के डाक्टर श्री दिलीपकुमार की असावधानी के कारण एक रोगी की मृत्यु हो गयी। ज्ञात हुआ है कि रोगी की चिन्ताजनक दशा पर ध्यान न देकर वे अस्पताल की एक नर्स को लेकर रँगरेली मनाने चले गये थे। रोगी के सम्बन्धियों ने उच्चाधिकारियों से शिकायत की है। मामले की जाँच जारी है। श्री दिलीपकुमार पहले आगरा में थे और अभी हाल में ही स्वेच्छा से तबादला करा कर मेरठ आये थे। इस घटना से नगर की जनता में काफी क्षोभ है। श्री दिलीपकुमार को नौकरी से बरख्वास्त कर दिया जायेगा, ऐसी सम्भावना है।"

इस समाचार ने मुरारी को व्याकुल कर दिया। उसके हृदय ने कहा कि दिलीप अवश्य माया को छोड़ कर मेरठ चला गया होगा। माया आगरे में अकेली रह गयी होगी। कैसे गुज़र करती होगी ? क्या करती होगी ? और माया का चेहरा आँखों के सामने घूमने लगा। उसकी आँसू भरी आँखें उसे आमंत्रण देने लगीं। आगरा जाकर माया को देखने की इच्छा हुई। मगर वह आगरा जाये कैसे ? दुनियाँ की दृष्टि में वह मर चुका है। आगरा जाना ठीक नहीं।

मुरारी दिन भर बेचैन रहा, उदास रहा। शाम को जब वह उमा के कमरे में गया तो उमा उसकी व्याकुलता देख कर सिहर उठी। वह यह जानती थी कि उसके लिए मुरारी और लिली में कहा-सुनी हुई है। मुरारी की दशा देख कर उसे आत्म-ग्लानि हुई।

"आपके कष्टों की जड़ मैं ही हूँ।" वह मन्द और दुखी स्वर में बोली। "न यहाँ आती और न आप दोनों में लड़ाई होती।"

"ऐसा न कहो, उमा।" मुरारी दयनीय स्वर में बोला।

"अब मैं यहाँ नहीं रह सकती। आज ही चली जाऊँगी।" उमा ने निश्चय की दृढ़ता से कहा।

"तुम्हें···तुम्हें यहाँ कोई कष्ट है ?"

"मगर मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण आपको खरी-खोटी सुननी पड़ी।"

"मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगा। जब तक मैं यहाँ रहूँगा तब तक तुम भी रहोगी।"

"मैं एक शर्त पर रह सकती हूँ।"

मुरारी कुछ बोला नहीं। केवल उमा की ओर देख कर रह गया।

"अगर मुझे और लड़कियों की तरह रहने दिया जाये तभी रह सकती हूँ।"

'ऐसा नहीं हो सकता, उमा, ऐसा नहीं हो सकता !" मुरारी अपने हाथ से मस्तक की फूली हुई नसों को सहलाता हुआ बोला। 'फिर कभी ऐसी बात मुँह से न निकालना।"

"आपके हृदय में मेरे लिए जो भावना है उसका आदर करती हूँ।" उमा धीरे-धीरे बोली। "मगर ज़रा सोचिये तो ! मुझमें और नूरजहाँ शीला, बीना, सरोज, मार्था आदि में क्या फर्क है ? आपका पक्षपात देख कर दीदी अपने मन में न जाने क्या-क्या सोचती हैं।"

"मुझे किसी की चिन्ता नहीं है, उमा ! तुम मेरे लिए बहन की तरह हो। फिर तुम्हें और लड़कियों की तरह शरीर बेचने की आज्ञा कैसे दे सकता हूँ ?"

उमा ने भावावेश में आकर मुरारी के पैर पक लिए। आर्द्र कण्ठ से बोली—"मुझ अभागिन, पतिता को आपने बहन बनाया यह मेरा अहो-भाग्य है ! मगर···मगर इसी तरह क्या आप और लड़कियों को भी भाई का स्नेह नहीं दे सकते ? क्या उन्हें भी इस नरक से मुक्ति नहीं दिला सकते ?"

उसकी बात मुरारी को चुनौती सी लगी। वह गम्भीर हो गया। सोचा, उमा ठीक ही तो कहती है। उमा में क्या विशेषता है ? पूर्व परिचित होने के नाते ही क्या वह औरों से भिन्न हो गयी। शरीर का व्यवसाय यदि बुरा है तो सभी को इससे छुटकारा मिलना चाहिए। नूरजहाँ, मार्था, सरोज, शीला, बीना सभी उसकी बहनें हैं। केवल वे ही क्यों, देश की हर अभागिन नारी उसकी बहन है।

"तुम ठीक कहती हो, उमा, शायद तुम ठीक कहती हो।" मुरारी बड़बड़ाया। "मैं अँधेरे में भटक रहा था। तुमने रोशनी दिखाई है। कोशिश करूँगा कि जल्द से जल्द······।"

और वह अपना वाक्य बिना पूरा किये ही बाहर निकल आया।

दूसरे दिन उसने श्रीधर और मार्था की शादी करा दी। लिली ने कोई आपत्ति नहीं की। मुरारी यह सोच कर प्रसन्न था कि एक और बहन को नरक से मुक्ति मिली।

मगर इस तरह शादी-ब्याह रचा कर तो सबको मुक्ति नहीं दिलायी जा सकती। देश-व्यापी जाल को छिन्न-भिन्न करने के लिए कोई ठोस कदम उठाना चाहिए। ठोस कदम······!! लेकिन क्या ? पुलिस···। हाँ, पुलिस को इन अड्डों की सूचना दी जा सकती है। मगर पुलिस कुछ करेगी ? लिली तो कहती थी कि पुलिस के सिर पर चाँदी का जूता है ! सब काम पुलिस की जानकारी में होते हैं ! जब रक्षक ही भक्षक हैं तब कहाँ जाये, किस के पास जाये ?

उसके बाद एक दिन उमा बीमार पड़ गयी। लिली का विशेष डाक्टर आया; मगर दशा बिगड़ती गयी। शरीर बुरी तरह अकड़ने लगा, चेहरा नीला पड़ता गया और तीन-चार घण्टे में ही वह चल बसी।

उमा की दशा देख कर सन्देह का कीड़ा मुरारी के दिल में घुस गया था। मरने से पहले उमा ने फुसफुसा कर जो कुछ कहा था उससे संदेह की पुष्टि हो गयी। उमा के शब्द—"दीदी···विष···।" उसके कानों में गूंज रहे थे। लिली ने उमा को विष दिया है या किसी से दिलवाया है

"अब मैं यहाँ नहीं रह सकती। आज ही चली जाऊँगी।" उमा ने निश्चय की दृढ़ता से कहा।

"तुम्हें···तुम्हें यहाँ कोई कष्ट है?"

"मगर मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण आपको खरी-खोटी सुननी पड़ी।"

"मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगा। जब तक मैं यहाँ रहूँगा तब तक तुम भी रहोगी।"

"मैं एक शर्त पर रह सकती हूँ।"

मुरारी कुछ बोला नहीं। केवल उमा की ओर देख कर रह गया।

"अगर मुझे और लड़कियों की तरह रहने दिया जाये तभी रह सकती हूँ।"

'ऐसा नहीं हो सकता, उमा, ऐसा नहीं हो सकता!" मुरारी अपने हाथ से मस्तक की फूली हुई नसों को सहलाता हुआ बोला। 'फिर कभी ऐसी बात मुँह से न निकालना।"

"आपके हृदय में मेरे लिए जो भावना है उसका आदर करती हूँ।" उमा धीरे-धीरे बोली। "मगर ज़रा सोचिये तो! मुझमें और नूरजहाँ शीला, बीना, सरोज, मार्था आदि में क्या फर्क है? आपका पक्षपात देख कर दीदी अपने मन में न जाने क्या-क्या सोचती हैं।"

"मुझे किसी की चिन्ता नहीं है, उमा! तुम मेरे लिए बहन की तरह हो। फिर तुम्हें और लड़कियों की तरह शरीर बेचने की आज्ञा कैसे दे सकता हूँ?"

उमा ने भावावेश में आकर मुरारी के पैर पक लिए। आर्द्र कण्ठ से बोली—"मुझ अभागिन, पतिता को आपने बहन बनाया यह मेरा अहो-भाग्य है! मगर···मगर इसी तरह क्या आप और लड़कियों को भी भाई का स्नेह नहीं दे सकते? क्या उन्हें भी इस नरक से मुक्ति नहीं दिला सकते?"

उसकी बात मुरारी को चुनौती सी लगी। वह गम्भीर हो गया। सोचा, उमा ठीक ही तो कहती है। उमा में क्या विशेषता है ? पूर्व परिचित होने के नाते ही क्या वह औरों से भिन्न हो गयी। शरीर का व्यवसाय यदि बुरा है तो सभी को इससे छुटकारा मिलना चाहिए। नूरजहाँ, मार्था, सरोज, शीला, बीना सभी उसकी बहनें हैं। केवल वे ही क्यों, देश की हर अभागिन नारी उसकी बहन है।

"तुम ठीक कहती हो, उमा, शायद तुम ठीक कहती हो।" मुरारी बड़बड़ाया। "मैं अँधेरे में भटक रहा था। तुमने रोशनी दिखाई है। कोशिश करूँगा कि जल्द से जल्द······।"

और वह अपना वाक्य बिना पूरा किये ही बाहर निकल आया।

दूसरे दिन उसने श्रीधर और मार्था की शादी करा दी। लिली ने कोई आपत्ति नहीं की। मुरारी यह सोच कर प्रसन्न था कि एक और बहन को नरक से मुक्ति मिली।

मगर इस तरह शादी-ब्याह रचा कर तो सबको मुक्ति नहीं दिलायी जा सकती। देश-व्यापी जाल को छिन्न-भिन्न करने के लिए कोई ठोस कदम उठाना चाहिए। ठोस कदम······!! लेकिन क्या ? पुलिस···। हाँ, पुलिस को इन अड्डों की सूचना दी जा सकती है। मगर पुलिस कुछ करेगी ? लिली तो कहती थी कि पुलिस के सिर पर चाँदी का जूता है ! सब काम पुलिस की जानकारी में होते हैं ! जब रक्षक ही भक्षक हैं तब कहाँ जाये, किस के पास जाये ?

उसके बाद एक दिन उमा बीमार पड़ गयी। लिली का विशेष डाक्टर आया; मगर दशा बिगड़ती गयी। शरीर बुरी तरह अकड़ने लगा, चेहरा नीला पड़ता गया और तीन-चार घण्टे में ही वह चल बसी।

उमा की दशा देख कर सन्देह का कीड़ा मुरारी के दिल में घुस गया था। मरने से पहले उमा ने फुसफुसा कर जो कुछ कहा था उससे संदेह की पुष्टि हो गयी। उमा के शब्द—"दीदी···विष···।" उसके कानों में गूंज रहे थे। लिली ने उमा को विष दिया है या किसी से दिलवाया है

यह जान कर उसका हृदव रोष और घृणा से भर गया। प्रतिशोध की आग में रोम-रोम जलने लगा। ईर्ष्या की ज्वाला में दग्ध होकर लिली ऐसा अमानुषिक कृत्य करेगी, इसकी उसने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी।

मुरारी ने अपनी जानकारी को किसी पर प्रकट न होने दिया। वह जानता था कि लिली ने पैसे के ज़ोर से डाक्टर को साध लिया है। भारी मन से उसने उमा का दाह-संकार किया और उसकी धधकती हुई चिता को साक्षी करके मन-ही-मन प्रण किया कि वह उसकी हत्या का प्रतिशोध लेगा।

उसकी मृत्यु के बाद लिली फिर मुरारी के निकट आने की चेष्टा करने लगी। उसका रूठना अपने-आप समाप्त हो गया। मगर लिली ज्यों-ज्यों उससे घुलने-मिलने की चेष्टा करती मुरारी त्यों-त्यों उससे दूर होता जाता। उसे लिली की शक्ल से घृणा हो गई थी। उसके कानों में गुप्ता के स्वर गूँजते—"हर औरत नागिन है; चलती-फिरती मौत है। उससे दूर रहो, दूर रहो, दूर रहो।"

(७)

जिस समय लिली ने कमरे में प्रवेश किया, मुरारी पलँग पर पड़ा सिगरेट पी रहा था। अभी-अभी उसने चौथा पेग समाप्त किया था। लिली को उसने देख कर भी नहीं देखा।

लिली बहुत परेशान थी। चेहरे पर घबराहट और आँखों में भय के चिन्ह थे। हाथ में एक तार था जो अभी-अभी कलकत्ते से आया था।

"हाय, अब क्या होगा ?" लिली थकी सी मुरारी के पलँग पर बैठ कर बोली और फिर तार पढ़ने लगी।

लिली को परेशान देख कर मुरारी को आनन्द आ रहा था। चिढ़ाने के स्वर में बोला—"कौन सा पहाड़ टूट पड़ा है सिर पर ?"

"पहाड़ ही टूटा है ! लो पढ़ो।" रुँआसी होकर लिली ने तार मुरारी को थमा दिया।

मुरारी ने लेटे-लेटे ही तार पढ़ लिया। लिखा था—

"रात को पहुँच रहा हूँ। जीत।"

जीत के आगमन से लिली क्यों घबरा रही है, मुरारी न समझ सका। बोला—"कलकत्ते से जीत आ रहा है। इसमें पहाड़ टूटने की क्या बात है ?"

"ओह, कैसे समझाऊँ ? सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जायेगा।"

मुरारी उठ कर बैठ गया। तेज़ स्वर में बोला—"साफ-साफ कहो क्या बात है ?"

"जीत ने मदन को देखा है। तुम्हें देखते ही जान लेगा कि तुम मदन नहीं हो।" लिली सिसक कर बोली।

"तो इसमें घबराने की क्या बात है ? मैं कह दूँगा कि मैं मदन

नहीं, मुरारी हूँ।" मुरारी ने चिढ़ाया।

"तुम्हें उसके सामने नहीं पड़ना चाहिए। मेल आने में अभी दो घण्टे की देर है। तुम दो-चार दिन के लिए कहीं बाहर चले जाओ।" लिली अनुनय के स्वर में बोली।

"मैं कहीं नहीं जाऊँगा।"

"अगर भेद खुल गया तो···तो मेरा धन्धा तो चौपट होगा ही, तुम्हें भी फिर पागलखाने जाना पड़ेगा।" लिली ने धमकी दी।

"कोई चिन्ता नहीं।" मुरारी हँस कर बोला। "पागलखाना यहाँ से बहुत अच्छा है। वहाँ इन्सान के रूप में हैवान नहीं रहते और न वहाँ रोटी के दो टुकड़ों के लिए जिस्म बेचना पड़ता है।"

मुरारी की तीखी बात लिली को कड़ुवे जहर सी लगी। तिलमिला कर बोली—"मैं उपदेश सुनने की आदी नहीं। बोलो, बाहर जाओगे या नहीं ?"

"नहीं, नहीं, नहीं !!!"

"जीत बहुत भयंकर आदमी है। अगर वह कुछ ऐसी-वैसी बात कर बैठा तो मैं जिम्मेदार नहीं हूँ।" लिली ने आखिरी दाँव फेंका।

"वक्त पढ़ने पर मैं भी खतरनाक बन सकता हूँ।" मुरारी का उत्तर था।

लिली समझ गयी कि मुरारी अपनी ज़िद पर अड़ा रहेगा। एक क्षण बाद स्वर में मिठास भर कर बोली—"जैसी तुम्हारी इच्छा। अच्छा, यह तो कर सकते हो कि बीमारी का बहाना करके कमरे में ही पड़े रहो!"

"हाँ, यह कर सकता हूँ—तुम्हारी खातिर···।" मुरारी ने मुस्करा कर कहा।

"मैं जीत को जल्द से जल्द विदा करने की कोशिश करूँगी।" लिली बोली। 'अगर उसने तुमसे मिलने की ज़िद की तो यहाँ लाना ही

पड़ेगा।"

"मैं उसके स्वागत के लिए तैयार रहूँगा।" मुरारी फिर मुस्कराया।

लिली बाहर चली गयी। मुरारी खुल कर हँसा—खूब हँसा ! फिर सोचा, न जाने कब तक कमरे में बन्द रहना पड़े इसलिए जीत के आने से पहले तो बाहर घूमलूँ। शीघ्रता से पाँचवा पेग पीकर वह नीचे उतरा। हाल में पहुँच कर सब लड़कियों से खूब बातें कीं। खुद हँसा और उनको भी हँसाया। वह बहुत प्रसन्न था—शायद लिली की परेशानी और घबराहट देख कर।

लिली उसका व्यवहार देख कर मन-ही-मन कुढ़ रही थी। मुरारी को उसे कुढ़ाने में मजा आ रहा था। लिली को सुना कर वह सब लड़कियों से बोला—"देखो, कलकत्ते से जो जीत आ रहा है न, वह बहुत खतरनाक आदमी है। उससे दूर रहना, हाँ...। अगर सामने पड़ गयीं तो कच्चा चबा जायेगा।"

और फिर मुरारी इस तरह मुँह चलाने लगा मानो कोई वस्तु चबा रहा हो। उसका अभिनय देख कर लड़कियाँ खिलखिला कर हँस पड़ीं।

"हम कोई मूली-गाजर हैं जो कच्चा चबा जायेंगे।" नूरजहाँ शरारत के स्वर में बोली।

"नूरी...।" लिली चीख पड़ी।

सब लड़कियाँ सहम गयीं। मुरारी ने कन्धों को झटका दिया, सिगरेट सुलगायी और फिर दार्शनिक की मुद्रा में धीरे-धीरे ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

रात को जब लिली सोने आयी तो उसने मुरारी को बताया कि जीत आ गया है और उसने दो सप्ताह रहने का इरादा प्रकट किया है। मुरारी मौन रहा, मानो कुछ सुना ही न हो।

"बीमारी का बहाना कब तक चलेगा ?" लिली झुँझला कर

बोली। "अगर तुम बाहर चले जाते तो तुम्हारा क्या बिगड़ जाता ? मगर तुम तो मुझे बरबाद करने पर तुले हो।"

मुरारी ने मुँह दूसरी ओर कर लिया। लिली सिसकने लगी।

दूसरे दिन लिली ने मुरारी से आकर कहा कि जीत उससे मिलने की ज़िद कर रहा है।

"ले आओ।" मुरारी ने सहज स्वर में कह दिया।

इससे पहले कि लिली कुछ उत्तर दे या उठ कर बाहर जाये, जीत ख़ुद कमरे में घुस आया। उसे देख कर मुरारी उठने का उपक्रम करने लगा।

"लेटे रहिये, लेटे रहिये।" कह कर जीत कुर्सी पर बैठ गया। उसने मुरारी को देखा तो चौंक पड़ा। आँखें मल कर फिर देखा। वह समझ गया कि पलँग पर लेटा हुआ व्यक्ति मदन नहीं है।

"माई डियर लिली," जीत लिली की ओर घूम कर व्यंग्य से बोला। "यह किस लफंगे को मदन बना दिया है ? मेरा दोस्त, जिगर का टुकड़ा मदन कहाँ है ?"

लिली सिर झुकाये हाथ मलती रही।

"क्यों हज़रत, तुम कौन हो और मदन बनने का स्वाँग क्यों कर रहे हो ? बोलो, क्या तुम दोनों ने मेरे दोस्त को......।" और जीत ने अपना वाक्य शब्दों से पूरा न करके संकेत से पूरा कर दिया।

"आपका ख़्याल ग़लत है।" मुरारी उठ कर बैठ गया। "हमने मदन का ख़ून नहीं किया है।"

"फिर कहाँ है मदन ?" जीत का स्वर कठोर हो गया और उसकी क्रूर आँखों में हिंसा नाचने लगी।

लिली थरथर काँपने लगी। उसका चेहरा पीला पड़ गया।

"ज़रा शान्ति से काम लीजिये। अभी सब बताता हूँ।" कह कर मुरारी ने सच्ची बात बता दी।

सुन कर जीत कुछ देर तक गम्भीर बना बैठा रहा। फिर सहसा ठहाका मार कर हँस पड़ा। लिली के कन्धे पर हाथ रख कर बोला—

"वेरी गुड, लिली डियर, वेरी गुड। मेरे सिवा किसी और को भी असलियत का पता है ?"

लिली ने नकारात्मक सिर हिला दिया।

"पगली, मुझसे झूठ बोलने की क्या ज़रूरत थी ? मैं तो घर का आदमी हूँ।" जीत मीठे स्वर में बोला। "यकीन रक्खो, मैं इस राज़ को अपने तक ही रक्खूँगा।"

और फिर जीत हो-हो करके हँस पड़ा। उसकी हँसी मुरारी को ज्वालामुखी के विस्फोट सी लगी।

"अच्छा मिस्टर मदन, आप अब आराम कीजिये। आपकी तबियत खराब है।" जीत हँसना बन्द करके बोला। फिर लिली का हाथ पकड़ कर कहा—"चलो लिली डियर, मुझे तुमसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं।"

लिली जीत के साथ बाहर चली गयी। मुरारी ने सन्तोष की साँस लेकर मस्तक का पसीना पोंछा।

दूसरे दिन से मुरारी ने लिली में बहुत परिवर्तन पाया। वह उसकी उपेक्षा करने लगी। हर समय जीत के ही साथ रहती। उससे हंसती-बोलती। जीत भी मुरारी का रह-रह कर अपमान करता। मुरारी समझ गया कि अवसरवादिनी लिली जीत से मिल कर उसके विरुद्ध किसी भयंकर जाल की रचना कर रही है। शायद एक दिन उसे भी उमा की तरह मरना पड़ेगा। वह पहले तो बहुत डरा फिर चौकन्ना रहने लगा। उसके अन्तर में प्रतिशोध की आग और प्रबल होकर भड़क उठी।

मुरारी को यह मालूम हो गया था कि तिजोरी में जो अटैची रक्खी है उसमें हज़ारों रुपयों के अतिरिक्त कुछ कागज़ात भी हैं जिनमें भारत के प्रमुख-प्रमुख नगरों के अड्डों के पते और उन्हें चलाने वाले व्यक्तियों के नाम हैं। यदि वे कागज़ात उसे मिल जायें तो देश भर में मकड़ी के

जाले की तरह फैला हुआ यह अनैतिक व्यवसाय समाप्त हो सकता है। जिस तरह भी हो उसे इन काग़ज़ातों को प्राप्त करना ही चाहिए।

मुरारी हमेशा अवसर की ताक में रहने लगा। एक दिन मौका पाकर तिजोरी की कुंजी की छाप मोम पर ले ली। अमीनाबाद जाकर कुंजी भी बनवा लाया। उस कुंजी को वह सदा अपने ही पास सुरक्षित रखता। न जाने कब ज़रूरत पड़ जाये!

एक दिन जीत और लिली श्रीधर की बड़ी कार पर मैटिनी शो देखने गये। मुरारी से न लिली ने पूछा और न जीत ने। अगर वे कहते भी, तब भी वह न जाता। उन दोनों के जाने के बाद उसने कमरा अन्दर से बन्द किया और तिजोरी में चाभी लगायी। तिजोरी खुल गयी। मुरारी खिल पड़ा। अटैची निकाल कर तिजोरी फिर बन्द कर नौकर से टाट, सूजा और सुतली मँगा कर अटैची के ऊपर टाट सिल दिया। भेजने वाले के स्थान पर लिखा--मदनलाल और पाने वाले का नाम लिखा मुरारीलाल! अटैची बगल में दबा कर नीचे उतरा। पोर्टिको में कार खड़ी कर दी। स्टेशन पहुँच कर पार्सल-आफिस में गया और अटैची की बिल्टी बनवा ली। बिल्टी कोट की गुप्त जेब में रख कर सन्तोष की साँस ली।

उसकी योजना थी कि कानपुर पहुँच कर अटैची छुड़ा लेगा और फिर वे काग़ज़ात कानपुर की पुलिस के सुपुर्द कर देगा। लखनऊ की पुलिस पर उसे विश्वास न था।

योजना के अनुसार उसने कार कानपुर की ओर मोड़ दी। वह बहुत संतुष्ट और प्रसन्न था। योजना सफल होने में सन्देह की गुंजायश नहीं थी। उसकी कार चालीस मील प्रति घण्टा के वेग से जा रही थी। वह जल्द से जल्द कानपुर पहुँच जाना चाहता था।

मगर मनुष्य कुछ सोचता है और परमात्मा कुछ और करता है।

भावी पर किसी का बस नहीं। गंगा-पुल के निकट उसकी कार एक ट्रक से टकरा गयी। उसके सिर पर वज्रपात हुआ और फिर वह अचेत हो गया।

पूर्व-स्मृति-खण्ड समाप्त

१८

※※※

रिक्शे वाले को पैसे देने के बाद माया जब कुली से सामान उठवा कर फोर्ट स्टेशन के प्लेटफार्म पर पहुँची तो ट्रेन छूटने में केवल पाँच मिनट की देरी थी। मिस्टर शर्मा और मिस्टर कापड़िया उत्सुकता और बेचैनी से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसे देख कर मिस्टर शर्मा की बाँछें खिल गयीं। प्रसन्न स्वर में कहा—"बहुत इन्तज़ार कराया आपने। आइये।"

माया दोनों के साथ चल दी। कुली पीछे-पीछे चलने लगा। 'आगरा-बरेली' पैसेन्जर में एक बोगी लखनऊ की लगी थी। उसी बोगी के एक फर्स्ट क्लास में दोनों का सामान था। दो बर्थों पर बिस्तर खुले थे। तीसरे बर्थ पर कुली ने माया का बिस्तर खोल दिया और सूटकेस ऊपर रख दिया। मिस्टर शर्मा ने कुली को पैसे दे दिये।

ट्रेन चल दी। उस डिब्बे में केवल तीन ही यात्री थे।

"यह ट्रेन लखनऊ जायेगी?" माया ने गला साफ करते हुये मिस्टर शर्मा से पूछा।

"ट्रेन तो बरेली जायेगी।" मिस्टर शर्मा ने उत्तर दिया। "टूँडला में यह बोगी कट जायेगी और फिर दिल्ली से फैज़ाबाद जाने वाली ट्रेन में जोड़ दी जायेगी। हम लोग रात भर आराम से सो सकते हैं।"

माया कुछ बोली नहीं। शाल से पैरों को ढाँक कर घोक लगा कर बैठ गयी।

"पहली पिक्चर रिलीज़ होते ही अगर आप चमक न जायें तो नाम

बदल देना।" मिस्टर कापड़िया ने चापलूसी करते हुये कहा। "मुल्क भर में आपकी शोहरत हो जायेगी।"

"फिलम-इन्डस्ट्री में पढ़ी-लिखी लड़कियाँ हैं कहाँ ? बड़ी-बड़ी हीरोइनें मुश्किल से दस्तखत कर पाती हैं। आप बी० ए० हैं, सुन्दर हैं, कला को समझती हैं। आपका फ्यूचर बहुत ब्रायट है, माया देवी।" मिस्टर शर्मा ने पुट दिया।

माया दोनों की प्रशंसा सुन कर मन-ही-मन फूली नहीं समा रही थी। वह उस दिन की कल्पना कर रही थी जब उसका पहला चित्र प्रदर्शित होगा, हर शहर में उसकी शोहरत होगी, अखबारों में चर्चा होगी, उसे नये-नये कान्ट्रैक्ट मिलेंगे।

डिब्बे की सब खिड़कियाँ बन्द थीं फिर भी माया को ठण्ड लग रही थी। वह सीट पर लेट गयी और रेशमी रजाई ओढ़ ली। मिस्टर शर्मा और मिस्टर कापड़िया अपने-अपने बिस्तरों पर बैठे सिगरेट फूंकते रहे।

टूँडला आ गया। बोगी ट्रेन से काट दी गयी। ट्रेन चली गयी परन्तु वह बोगी प्लेटफार्म पर ही खड़ी रही। 'दिल्ली-फैज़ाबाद' पैसेन्जर के आने में आध घण्टे की देर थी।

मिस्टर शर्मा ने चाय मँगायी। चाय पीने के बाद माया ने अपने शरीर में गर्मी का अनुभव किया।

जब बैरा चाय की ट्रे और बिल के पैसे ले गया तो मिस्टर कापड़िया ने द्वार बन्द करके अन्दर से सिटकनी चढ़ा दी। फिर सन्तोष की साँस लेकर कहा—"अब हम चैन से सो सकते हैं।"

मिस्टर कापड़िया लेट गये। रजाई से सिर भी ढक लिया। मिस्टर शर्मा ने अपने बिस्तर पर लम्बे होकर कहा—"आप भी लेट जाइये, माया देवी। जागने से क्या लाभ ?"

"लेट जाऊगी। अभी नींद भी नहीं लगी है।" कह कर माया बैठी रही। धोक लगा कर पैर फैला लिए और रजाई पैरों पर डाल ली।

काला और गर्म धुँआँ उगलती हुयी 'दिल्ली फैजाबाद' पैसेन्जर आ गयी। प्लेटफार्म फिर चहल-पहल से भर गया। लखनऊ की बोगी ट्रेन के पीछे जोड़ दी गयी। कुछ देर बाद ट्रेन चल दी।

माया धोक लगाये बैठी थी। आँखें बन्द किये रंगीन कल्पनाओं में डूबी थी। उसके मानस-पटल पर अनेक चित्र बन-बिगड़ रहे थे। ट्रेन के धीमे हिचकोले उसे बहुत भले लग रहे थे। धीरे-धीरे आलस आने लगा। जमुहाइयों ने निद्रा-देवी के आगमन की पूर्व सूचना दी।

माया ने आँखें खोल कर मिस्टर शर्मा और मिस्टर कापड़िया की ओर देखा। दोनों सो रहे थे। वह भी लेट गयी। कन्धों तक रजाई ओढ़ ली। आँखें अपने आप झपकने लगीं और शीघ्र ही पलकों में नींद का सागर लहराने लगा और फिर सपनों की रजत तरी उत्ताल तरंगों पर इठलाने लगी।

स्वप्न निरर्थक नहीं होते। फ्रायड के मतानुसार हम जिन इच्छाओं का दमन करते हैं वे ही निद्रा में स्वप्न का रूप लेती हैं। जागृत अवस्था में जो कामनायें सामाजिक अथवा आर्थिक कठिनाइयों के कारण पूर्ण नहीं हो पाती वे उपचेतन मस्तिष्क में दबी पड़ी रहती हैं और निद्रा में उपचेतन मस्तिष्क कर्मशील हो जाता है। कामनायें करवटें लेकर मचल पड़ती हैं—वे खुल कर खेलती हैं क्योंकि तब न तो सामाजिक खाई होती है और न आर्थिक खन्दक।

माया भी अजीब-अजीब सपने देखने लगी। पहले देखा कि वह एक सरोवर के तट पर बैठी है। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पर्वत हैं जिनकी श्रेणियाँ हिमाच्छादित हैं। सरोवर में रंग-बिरंगे कमल खिले हैं। मराल जल-क्रीड़ा में रत हैं। वह ध्यानपूर्वक एक कमल की ओर देख रही है। उसे लगता है कि कमल का वह फूल एक सुन्दर राजकुमार में बदल गया है और वह उसे संकेत से अपने पास बुला रहा है। वह सरोवर में कूद पड़ती है। तैरना चाहती है, पर तैर नहीं पाती। पैरों में कमल

नाल उलझ गये हैं। वह थक गयी है। दम फूल रहा है और···और और फिर वह डूबने लगती है।

दृश्य बदलता है। माया अपने को रानी के रूप में देखती है। वह बहुमूल्य रेशमी वस्त्र पहने है। शरीर पर रत्नजड़ित आभूषण हैं। सिर पर मुकुट है। वह मणिक और लालों से जगमगाते हुये एक सिंहासन पर बैठी है। वैभव, विलास और ऐश्वर्य उसके सेवक हैं; शक्ति उसकी दासी है। सिंहासन के समीप ही हाथ बाँधे मंत्री खड़ा है। मंत्री का चेहरा एकदम दिलीप की तरह है। कुछ दूर पर दो सैनिक खड़े हैं। उनके चेहरे मिस्टर शर्मा और कापड़िया से मिलते हैं।

मंत्री के अधर हिलते हैं। वह कहता है—"महारानी जी, राज्य का सबसे बड़ा द्रोही पकड़ा गया है। आज्ञा हो तो उपस्थित किया जाये।"

माया संकेत द्वारा बन्दी को लाने का आदेश देती है। सैनिक चले जाते हैं और एक क्षण बाद ही एक बन्दी को लाते हैं। बन्दी का शरीर श्रृंखलाओं से जकड़ा हुआ है। उसे देख कर माया चौंक पड़ती है क्योंकि बन्दी के रूप में प्रत्यक्ष मुरारी है।

"यह व्यक्ति बहुत भयंकर है, महारानी जी।" मन्त्री कहता है। "इसने आपका राज्य मिटाने की चेष्टा की है। यह राज-द्रोही है। इसे कठोर से कठोर दण्ड दीजिये।"

"राज द्रोही के लिए कौन सा दण्ड-विधान है?" माया मन्त्री से पूछती है।

"प्राण दण्ड का।"

माया सिहर उठती है। कम्पित स्वर म आज्ञा देती है—"बन्दी को प्राण-दण्ड दिया जाये।"

बन्दी का चेहरा घृणा से विकृत हो जाता है। आँखों से आग के शोले निकलने लगते हैं। उसके अधर खुलते हैं और उसका तीखा स्वर गूँजने लगता है—"धिक्कार है तुझ पर! तू इस पवित्र सिंहासन पर

बैठने योग्य नहीं ! तू विलास की पुतली है। यह न समझ कि मुझे प्राण-दण्ड देकर तू चैन पा सकेगी। याद रख, मैं अमर हूँ। मुझे कोई नहीं मार सकता; मैं जिन्दा रहूँगा···मैं ज़िन्दा रहूँगा···।"

और फिर वह ज़ोर से अट्टहास कर उठता है। माया ने देखा कि बन्दी के बन्धन अपने आप खुल गये हैं। श्रृंखलाये खनखना कर संगमरमर के फर्श पर गिर गयी हैं और बन्दी हाथ फैला कर उसका गला घोंटने के लिए आगे बढ़ रहा है।

"बचाओ, मुझे इस राक्षस से बचाओ।" माया भीत स्वर में मन्त्री से कहती है।

मगर मन्त्री स्वयं डर गया है ! वह भाग रहा है। सैनिक भी डर कर भाग गये हैं। वह अकेली रह गयी है—एक दम अकेली और बन्दी उसकी ओर बढ़ रहा है—हाथ फैलाये हुये, दाँत पीसता हुआ।

माया के मुख से तीव्र चीख निकल जाती है।

"क्या बात है, माया देवी, बोलिये क्या बात है ?" तभी उसके कानों में मिस्टर शर्मा का स्वर आता है। उसे लगता है कि कोई उसके कन्धे झकझोर रहा है।

माया घबरा कर बैठ गयी। देखा, पास ही चिन्तित मुद्रा में मिस्टर शर्मा खड़े हैं।

"क्या बात थी, माया देवी ? आप चीखीं क्यों थीं ?" मिस्टर शर्मा ने उसके समीप बैठ कर पूछा।

"एक अजीब सा सपना देखा था।" माया ने धीमे स्वर में उत्तर दिया। "आपकी नींद खराब हुई इसके लिए माफी माँगती हूँ।"

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं।" मिस्टर शर्मा ने हँस कर कहा। "दर अस्ल मैं जाग ही रहा था। आपकी चीख सुन कर घबरा गया। क्या बहुत डरावना सपना था ?"

"हाँ। मैं जंगल में रास्ता भूल गयी थी। चारों ओर शेर-चीते झुम

खाने के लिए झपट रहे थे।" माया झूठ बोल गयी।

"यह तो बहुत शुभ सपना है।" मिस्टर शर्मा ने हर्ष प्रदर्शित करते हुये कहा। "जंगल का अर्थ है आपकी शोहरत और शेर-चीते हुये प्रोड्यूसर और डायरेक्टर।"

मिस्टर कापड़िया खर्राटे ले रहे थे। माया अँगड़ाई ले कर बोली—"अब आप भी सोइये, मिस्टर शर्मा! मुझे भी नींद आ रही है।"

मिस्टर शर्मा अपने बिस्तर पर लेट गये। माया भी लेट गयी, पर वह फिर सो न सकी।

लखनऊ स्टेशन पर एक व्यक्ति इन लोगों को लेने आया। मिस्टर शर्मा ने उसका परिचय कम्पनी के डायरेक्टर मिस्टर श्रीधर कह कर दिया। श्रीधर अपनी कार लाया था। सामान पीछे रख दिया गया। कार लिली की विशाल कोठी के अन्दर रुक गयी।

"यह है हमारा हैड आफिस।" मिस्टर कापड़िया ने कहा।

माया को एक कमरे में ठहरा दिया गया।

दोपहर को लिली उसके कमरे में गयी। माया ने हाथ जोड़ कर अभिवादन किया।

"मिस्टर शर्मा और मिस्टर कापड़िया कहाँ हैं ?" माया ने उन्हें सुबह के बाद नहीं देखा था।

"वे ज़रूरी काम से बम्बई चले गये हैं।" लिली ने उत्तर दिया। "मगर तुम किसी बात की चिन्ता न करो। तुम्हें यहाँ कोई कष्ट न होगा।"

लिली चली गयी। माया पलँग पर लेट कर सोचने लगी कि यह स्त्री कौन हो सकती है ? शायद कोई अभिनेत्री हो। हो सकता है, डायरेक्टर श्रीधर की पत्नी हो! होगा, मुझको क्या ? हीरोइन का रोल मुझे तो मिलेगा ही; फिर मैं क्यों चिन्ता करूँ ?

सोचते-सोचते माया सो गयी। जब आँख खुली तो अँधेरा हो चुका था। उठ कर हाथ-मुँह धोया। वस्त्र बदलने का विचार कर ही रही थी कि एक लड़की ने कमरे में प्रवेश किया।

"दीदी आपको हाल में बुला रही हैं। कपड़े पहन कर जल्द आ जाइये।" कह कर लड़की जाने का उपक्रम करने लगी।

"आपका क्या नाम है ?" माया ने पूछा।

लड़की रुक गयी। धीमे स्वर में कहा—"नूरजहाँ।"

"नाम तो अच्छा है ! क्या आप भी फिल्म में काम करने के लिए आयी हैं ?" माया ने नूरजहाँ को पलँग पर बैठा कर पूछा।

नूरजहाँ के अधरों पर गूढ़ मुस्कान खेल गयी। वह समझ गयी कि इस लड़की को हीरोइन बनाने का स्वप्न दिखा कर फाँसा गया है। उसकी इच्छा हुई कि वास्तविकता से उसे अवगत करा दे। फिर सोचा कि मुझे क्या पड़ी है ! हाल में पहुँचते ही सचाई अपने आप खुल जायेगी।

"आपने कुछ जवाब नहीं दिया।" माया ने नूरजहाँ को मौन देख कर फिर कहा।

"अभी मैं जल्दी में हूँ। फिर कभी बातें होंगी।" कह कर नूरजहाँ द्वार के पास आ गयी। "ज़ल्दी कीजिये। वरना दीदी नाराज़ होंगी।"

नूरजहाँ चली गयी। माया वस्त्र बदलन लगी।

दस मिनट बाद वह हाल में पहुँची। कई लड़किवाँ सजी-धजी बैठी थीं। एक कोच पर लिली बैठी थी। उसके पास ही एक पुरुष बैठा था। माया लिली के पास जाकर खड़ी हो गयी।

"यही लड़की आगरे से आयी है ?" लिली के पास बैठे हुए व्यक्ति न प्रश्न किया।

लिली ने सिर हिला दिया।

"ठीक है।" माया को सिर से पैर तक देख कर वह व्यक्ति बोला।

माया का हृदय खिल पड़ा। उसने समझा कि वह व्यक्ति प्रोड्यूसर है और उसने उसको हीरोइन के रोल के लिए पसन्द कर लिया है।

"बैठो।" उस व्यक्ति ने माया से अपने पास वंठने को कहा

माया पहले तो झिझकी पर फिर संकुचित सी बैठ गयी।

"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"माया।"

"ठीक है। मेरा नाम जीत है।" उस व्यक्ति ने कहा।

तभी श्रीधर के साथ तीन व्यक्ति हाल में आये। तीनों ही वेश-भूषा से बड़े लोग लग रहे थे। श्रीधर उन्हें लिली के पास छोड़ कर फिर न चे चला गया। लिली का संकेत पाकर सब लड़कियाँ उन व्यक्तियों के पास आ गयीं। पल भर में ही चुनाव हो गया। तीन लड़कियाँ उन्हें लेकर अपने-अपने कमरों में चली गयीं। उन तीन लड़कियों में एक नूर-जहाँ भी थी। जाते-जाते उसने अर्थ भरी दृष्टि माया पर डाली। उसका मतलब था कि अब समझीं तुम यहाँ क्यों लाई गयी हो ?

एक क्षण बाद ही लिली भी उठ कर चली गयी। जब लौटी तो उसके हाथ में सौ-सौ के तीन नोट थे। नोट उसने जीत को दे दिये।

माया का माथा ठनका। उसकी अन्तरात्मा काँप उठी। आँखों के सामने से भ्रम का पर्दा उठ गया। उसे यह समझते देर न लगी कि हीरोइन बनाने का प्रलोभन देकर वह जाल में फाँस ली गयी है। फिल्म बनाने की ओट में ये लोग लड़कियों का व्यापार करते हैं। माया को चक्कर सा आ गया। उसकी दशा मकड़ी के रेशमी और सुनहरे जाल में फँसी निरीह मक्खी की तरह हो रही थी।

जीत की अभ्यस्त आँखों से माया के अन्तर की दशा छिपी न रही। वह कठोर स्वर में बोला—"अब तुम्हें अँधेरे में रखने की जरूरत नहीं है। सचाई तुम जान ही गयी हो। अगर सुख और आराम की ज़िन्दगी बसर करना चाहती हो तो हमारा कहना मानो वरना······।" और जीत ने अपनी बात अधूरी छोड़ दी।

"मैं···मैं···समझी नहीं आपका मतलब···!" माया ने अन्जान बन कर हकलाते हुये कहा।

"बहुत भोली न बनो।" जीत ने व्यंग्यपूर्वक कहा। "कान खोल कर सुन लो। हमारे चंगुल से बचना अब बहुत मुश्किल है। अगर सीधी तरह ग्राहकों का मनोरंजन करोगी तो इन लड़कियों की तरह चैन से रहोगी नहीं तो काल-कोठरी में डाल दी जाओगी। जब भूखी-प्यासी रहोगी तब रास्ते पर आजाओगी। भलाई इसी में है कि समझदारी से काम लो और अपनी सुन्दरता और जवानी का फायदा उठाओ।"

और लड़कियाँ सहमी सी जीत की बातें सुन रही थीं। वे जानती थीं कि जीत के लिए कोई भी कार्य असम्भव नहीं है। लिली को और लड़कियों के सामने ऐसी बातें करना ठीक न लगा। उसने लड़कियों को जाने की आज्ञा दी। वे चुपचाप चली गयीं। हाल में जीत, माया और लिली के अतिरिक्त और कोई न रहा।

"मगर······मगर मैं तो यहाँ फिल्म में काम करने के लिए लायी गयी हूँ।" माया आँखों में आँसू भर कर बोली। "मैं······मैं भले घर की लड़की हूँ। सच······मैं······।"

"यहाँ जितनी लड़कियाँ हैं सभी भले घर की हैं।" जीत भयंकर अट्टहास कर उठा। "ग्राहक भी भले घर के ही आते हैं।"

"लेकिन मैं······मैं······यह पाप नहीं कर सकती।"

"नहीं कर सकती की बच्ची!" जीत ने माया के गाल पर पूरे ज़ोर से थप्पड़ मार कर कहा। "जानती नहीं, मेरा नाम जीत है। हज़ारों लड़कियों को मोम की पुतलियों की तरह मन चाहे ढंग से मोड़ चुका हूँ। तू है किस खेत की मूली?"

थप्पड की चोट से माया बिलबिला गयी। उसके गाल पर पाँचों उँगलियाँ उभर आयी थीं। वह फिर भी न रोयी, न सिसकी। सिंहनी की तरह गरज कर बोली—"मोम की पुतली समय पड़ने पर पत्थर की प्रतिमा बन जाती है जो टूट कर बिखरना जानती है, मुड़ना नहीं। चाहे मुझे जान से मार डालो मगर मैं अपना शरीर नहीं बेचूंगी, नहीं बेचूंगी।"

लिली और जीत दोनों को उसके साहस पर आश्चर्य हुआ। माया की समझ में स्वयं नहीं आ रहा था कि इतना साहस उसमें कहाँ से आ गया है।

"लातों के भूत बातों से नहीं मानते।" जीत दहाड़ कर बोला और उसने अपना हाथ माया पर प्रहार करने के लिए फिर उठाया।

"मारने से क्या फायदा है!" लिली ने जीत का उठा हुआ हाथ पकड़ लिया। "रात भर नीचे कोठरी में पड़ी रहने दो। सुबह समझ आ जायेगी।"

"मैं इसे अभी ठीक कर दूँगा।" जीत अपना हाथ छुड़ा कर बोला। "यह छोकरी अपने को समझती क्या है? पूरे दो हज़ार दिये हैं इसके लिए!"

"मारने से अधिक प्रभाव समझाने का पड़ता है।" लिली ने विरोध किया। "यू लीव हर टु मी।"

"तुम्हें जो कुछ करना है सो कल करना। रात भर इसे काल-कोठरी में सड़ने दो।" कह कर जीत माया को घसीटता हुआ नीचे ले गया और उसे एक तंग, सीलन भरी, अँधेरी कोठरी में बन्द कर दिया।

कोठरी में न चारपाई थी न बिस्तर। पत्थर का फर्श बर्फ सा गलाने वाला था। माया न लेट सकती थी, न बैठ सकती थी। वह बहुत देर तक टहलती रही। अतीत के चित्र आँखों के सामने घूमने लगे। उसे अपने कुकृत्यों पर आत्म-ग्लानि हो रही थी—पश्चाताप हो रहा था। आज पहली बार उसने सच्चे हृदय से अपनी भूल स्वीकार की। वह सोचने लगी कि यह सब मेरे पापों का ही फल है! स्वर्ग सी गृहस्थी को कलह से नरक बना दिया। दिन रात कोंच-कोंच कर देवता से पति की आत्मा को कष्ट पहुँचाया। वस्त्रों और आभूषणों के लोभ में अन्धी होकर पति के प्यार को धोखा दिया; उसके साथ विश्वासघात कर के दिलीप को अपने शरीर से खेलने दिया। पति को पागलखाने

भिजवाया ताकि मैं दिलीप के साथ खुल कर रंगरेलियाँ कर सकूँ! मैं सचमुच बहुत पापिन हूँ; नारी के नाम पर कलंक हूँ! मेरे ही कारण पति की मृत्यु हुयी। मैं पतिघातिनी हूँ। मुझे रौरव नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा।

प्रायश्चित की आग पानी बन कर आँखों की राह बहने लगी। और फिर माया ने निश्चय किया कि अब तक हुआ सो हुआ, पर अब भविष्य में वह अपना जीवन सुधारने की चेष्टा करेगी। उसने सोचा कि मैं भेड़ियों की माँद में घुस आयी हूँ। भेड़िये मेरा माँस नोच-नोच कर खाना चाहते हैं। मगर मैं जान दे दूँगी पर अपना शरीर नहीं छूने दूँगी। जीत और लिली को भी मालूम हो जायेगा कि अबला नारी समय पड़ने पर काली और दुर्गा भी बन सकती है।

रात भर माया उसी कोठरी में टहलती रही। वह भूख-प्यास भूल गयी थी। आँखों में नींद का नाम तक न था।

१६

***

मुरारी सीलन भरी छोटी सी कोठरी में बन्द था। उसके हाथ-पैर बँधे थे। हिलने-डुलने में भी कष्ट होता था। भूख के मारे बुरा हाल था। पेट में चूहे कूद रहे थे। उसे यह ज्ञात नहीं था कि वह कितनी देर बेहोश रहा। द्वार के छिद्रों से आने वाले प्रकाश से उसने अनुमान लगाया कि दिन का समय है।

तभी उसे किसी की भारी पदचाप सुनाई दी। कोई कोठरी की ओर ही आ रहा था। कोठरी के निकट आकर पदचाप रुक गयी। मुरारी उत्सुकता से द्वार की ओर देखने लगा। कोठरी का ताला खोल कर एक पल बाद ही जीत अन्दर आया।

"कहिये, मिस्टर मदन !" जीत ने चिढ़ाने के स्वर में कहा ! "अब दिमाग ठिकाने लगा या नहीं ? मुझे पहचानने में अब तो परेशानी नहीं हो रही है ?"

मुरारी पल भर मौन रहा, फिर अत्यन्त रूखे स्वर में कहा—"गंगा-पुल की दुर्घटना के बाद सब कुछ भूल गया था। अब विस्मरण का आवरण उठ गया है।"

"तो फिर बताओ वह अटैची कहाँ है ?" जीत ने मुरारी के उत्तर से चिढ़ कर तेज़ स्वर में पूछा और फिर उसकी कमर पर जूते की ठोकर मारी।

मुरारी पीड़ा से तिलमिला गया। यदि उसके हाथ-पैर खुले होते तो वह निश्चय ही जीत पर भूखे बाज़ की तरह टूट पड़ता।

"जबाब दो।" जीत जेब से पिस्तौल निकाल कर बोला। "तुमने अटैची कहाँ छिपायी है ?"

मुरारी जानता था कि पिस्तौल जीत ने उसे डराने के लिए ही निकाली है। अटैची प्राप्त किये बिना वह उसे मार नहीं सकता। जब तक वह अटैची का रहस्य सुरक्षित रक्खेगा तब तक उसके जीवन को कोई खतरा नहीं है। फिर भी पिस्तौल देख कर भयभीत होने का अभिनय करता हुआ मुरारी बोला—"बताता हूँ। अभी बताता हूँ। मुझे मारो मत !"

मुरारी के अभिनय ने जीत को धोखे में डाल दिया। वह समझ गया कि मुरारी सचमुच डर गया है। पिस्तौल जेब में रख कर बोला—"ज़ल्दी बताओ।"

"अटैची मेरे साथ कार में ही थी।" मुरारी धीमे स्वर में बुदबुदाया।"

"कार में ही थी ?" जीत विस्मय और अविश्वास के मिश्रित स्वर में बोला—"मगर पुलिस को तो कोई अटैची नहीं मिली।"

"पुलिस वाले रुपया हज़म कर गये होंगे।"

"लेकिन उसमें कुछ कागज़ात भी थे। अगर अटैची पुलिस के हाथ पड़ गयी होती तो पुलिस हर अड्डे पर छापा मारती। नहीं, अटैची कार में नहीं थी। तुम झूठ बोलते हो। बोलो, कहाँ छिपायी है तुमने अटैची ?" सहसा जीत का स्वर फिर कठोर हो गया।

मुरारी समझ गया कि उसका झूठ पकड़ा गया है। वह यह भी जान गया कि जीत को धोखा देना सरल नहीं है।

"लेकिन मैं सच कहता हूँ कि अटैची कार में ही थी।" मुरारी ने अपनी बात को फिर दोहराया।

उसी समय लिली ने कोठरी में प्रवेश किया। आते ही जीत से पूछा—"कुछ पता लगा ?"

"नहीं ! अभी अक्ल ठीक नहीं हुई है। पड़ा रहने दो भूखा-प्यासा।" कह कर जीत ने मुरारी की कमर में एक ठोकर और मारी और फिर

वह बाहर निकल गया।

"खाना मँगाऊँ हुज़ूर के लिए ?" लिली ने चिढ़ाया।

"दूर हो जाओ मेरी नज़रों से। मुझे तुमसे नफ़रत है।" मुरारी चीख पड़ा।

लिली खिलखिला कर हँस पड़ी। फिर गम्भीर होकर बोली—तुमने उमा के लिए मुझसे टक्कर लेने की कोशिश की उसी का यह नतीजा है। कभी मैंने तुम्हें अपना प्यार दिया था मगर अब मुझे तुमसे घृणा है। समझे ? मैं तुमसे, तुम्हारी सूरत से नफ़रत करती हूँ।"

इससे पहले कि मुरारी कुछ कह सके, लिली बाहर चली गयी। कोठरी का द्वार बन्द करके ताला लगा दिया। कोठरी में मुरारी अकेला रह गया। अँधेरे में उसका दम घुटने लगा।

द्वार के छिद्रों से आने वाला प्रकाश भी बन्द हो गया। मुरारी समझ गया कि रात हो गयी है। भूख और ठण्ड से बुरा हाल था। फर्श पर पड़े-पड़े पीठ ऐंठ गयी थी। अंग-अंग में दर्द था। हाथ के बन्धन ढीले करने की चेष्टा में कलाइयाँ छिल गयीं। रक्त निकलने लगा।

रात को फिर पदचाप सुनायी दी। सोचा. फिर जीत आकर अटैची के बारे में प्रश्न करेगा। मगर इस बार उसकी कोठरी का द्वार नहीं खुला। उसे लगा कि पास ही दूसरी कोठरी खोली और बन्द की गयी है। उसने अनुमान लगाया कि कोई और अभागा काल-कोठरी में डाला गया है!

किसी प्रकार रात कटी। सुबह का प्रकाश द्वार के सूराखों से आने लगा। मुरारी ने सन्तोष की साँस ली।

कुछ देर बाद ही मुरारी को लगा कि कोई कोठरी की तरफ आ रहा है। उसने पदचाप से पहचान लिया कि आने वाली लिली है। उसने पास की कोठरी खोले जाने का स्वर सुना। फिर लिली की आवाज़ सुनायी दी। वह कह रही थी—"मैं समझती हूँ, रात भर यहाँ रह कर

तुम रास्ते पर आ गयी होगी। बोलो, अब क्या विचार है ?"

मुरारी समझ गया कि पास वाली कोठरी में किसी लड़की को बन्द किया गया था।

तभी उसे दूसरा स्वर सुनाई दिया—"शरीर बेचने की अपेक्षा मैं इसी कोठरी में मर जाना पसन्द करती हूँ।"

मुरारी चौंक पड़ा। स्वर माया का था। मगर माया यहाँ कहाँ ? जरूर कानों को धोखा हुआ है ! मुरारी अपनी समस्त चेतना कानों में केन्द्रित करके बातें सुनने लगा।

"मरने की बात करना आसान होता है, पर मरना कठिन।" लिली कह रही थी।

"जीवन का मोह कायरों का काम होता है। मुझे अपना सतीत्व प्राणों से अधिक प्यारा है।" दूसरा स्वर आया।

इस बार मुरारी को इस बात में कोई सन्देह न रहा कि दूसरा स्वर माया का ही है ! कुछ अजीब सी भावना मन में उदित हुई। सोचा, माया यहाँ कैसे आ गयी ? शायद दिलीप के जाने के बाद वह पैसे के लोभ के कारण इस अमानुषिक दल के चक्कर में फँस गयी है और अब उस मक्खी की तरह उड़ने के लिए व्याकुल हो रही है जो लालच में फँस कर स्वयं अपने पंखों में चिपचिपा शहद लपेट लेती है। मुरारी के हृदय में माया के प्रति जो क्रोध था वह न जाने कहाँ विलुप्त हो गया और उसका मन दया और सहानुभूति से भर गया। घृणा का स्थान तरस ने ले लिया। वह कान लगा कर माया और लिली की बातें सुनने लगा।

"तुम अभी नादान हो।" लिली माया को समझा रही थी। "मैंने दुनिया देखी है। मेरी बात मानो और ज़िन्दगी का मज़ा लो।"

"एक औरत हो कर तुम मुझे शरीर बेचने का उपदेश दे रही हो, यह देख कर आश्चर्य होता है।" माया का गम्भीर स्वर मुरारी को सुनाई दिया। "मैं किसी भी शर्त पर यह अनैतिक कार्य नहीं कर सकती।"

"इसमें अनैतिक क्या है ? और धन्धों की तरह यह भी एक व्यवसाय है।" लिली ने फुसलाने की चेष्टा की।

"वेश्यावृत्ति तुम्हारे लिए व्यवसाय हो सकती है, मेरे लिए नहीं।"

"स्त्री-पुरुष के प्राकृतिक सम्बन्ध को तुम यदि वेश्यावृत्ति समझती हो तो फिर शादी वैधानिक वेश्यावृत्ति के अतिरिक्त और क्या है ? लिली तर्क पर उतर आयी। "तुम पढ़ी-लिखी और समझदार लड़की हो ! तुम्हें मालूम होना चाहिए कि स्त्री-पुरुष के बीच शादी का बन्धन नहीं था। नारी पूरी तरह स्वतन्त्र थी। धीरे-धीरे वह भी भूमि और पशु की तरह सम्पत्ति समझी जाने लगी और एकाधिकार की भावना से प्रेरित होकर पुरुष ने शादी की प्रथा शुरू की। नारी पुरुष की दासी बन गयी। आज उसे न आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त है और न सामाजिक। इसीलिए उसे रोटी के लिए पुरुष पर निर्भर रहना पड़ता है। मैं तुम्हें अपने पैरों पर खड़ा होना सिखा रही हूँ।"

मुरारी लिली का प्रत्येक शब्द ध्यान से सुन रहा था। उसे यह जान कर विस्मय हुआ कि वह कैसी-कैसी बातें करके किसी अबोध लड़की को पथभ्रष्ट कर सकती है। उसे भय हुआ कि लिली का समाज-शास्त्र पर यह प्रवचन सुन कर कहीं माया विचलित न हो जाये। ठीक उसी तरह जिस तरह उसकी रूप, रुपया और रोटी के सम्बन्ध की विवेचना सुन कर कभी उसका ईमान डोल गया था।

"मैं तुम्हें यह बताना चाहती हूँ कि मैं बी० ए० में समाजशास्त्र की छात्रा रही हूँ और जो कुछ तुमने अभी तक कहा वह मेरे लिए नया नहीं है। सब कुछ पढ़ चुकी हूँ।" माया का उत्तर सुन कर मुरारी ने सन्तोष की साँस ली।

"फिर क्या उत्तर है तुम्हारा ?" लिली ने पूछा।

"मुझे उत्तर में यही कहना है कि पाप की कमाई पर ज़िन्दा रहने वाली तुम शादी के मर्म को क्या समझो ?"

"और तुम्हीं क्या समझती हो ?" लिली चिढ़े स्वर में बोली। "जहाँ तक मुझे मालूम हुआ है तुम अभी तक क्वाँरी हो !"

"वह सूचना ग़लत थी। मैं विवाहिता हूँ।" माया का गम्भीर स्वर मुरारी के कानों से टकराया।

"तुम···तुम शादीशुदा हो···? फिर तुम्हारा पति कहाँ है ?" लिली के स्वर में बेचैनी ओर घबराहट थी। "क्या उसने तुम्हें छोड़ दिया ?"

"नहीं।" माया ने उत्तर दिया। "मैं ही अन्धी थी जो पति का मूल्य न आँक सकी। ने देवता थे। मैं पापिन थी। मैंने उन्हें धोखा दिया, पागलखाने भिजवाया और······और मैं ही उनकी मृत्यु का कारण हूँ।" माया सिसकने लगी। "मगर अब आँखें खुल गयी हैं। मेरी कमज़ोरी ही मेरी शक्ति बन गयी है। अब मैं जान दे दूँगी मगर किसी पर पुरुष को अपना शरीर न छूने दूँगी।"

मुरारी पर वज्रपात हुआ। माया यह सब क्यों कह बैठी ? यदि लिली समझ गयी कि वह मेरी पत्नी है तो······? और मुरारी की शंका सत्य सिद्ध हुयी। उसके कानों में लिली का स्वर पड़ा। वह कह रही थी—

"ओह, तो तुम मुरारी की पत्नी हो !"

"हाँ, हाँ ! मगर तुम उन्हें कैसे जानती हो ?" माया ने आतुर होकर पूछा।

"श्रीधर······।" लिली ने माया के प्रश्न का उत्तर न देकर श्रीधर को ज़ोर से पुकारा।

"अभी आया······।" मुरारी ने दूर से आती हुई श्रीधर की आवाज़ सुनी।

मुरारी की अन्तरात्मा काँप उठी। अब क्या होगा।

"कहिये, क्या आज्ञा है ?" पास आकर श्रीधर ने पूछा।

"मिस्टर जीत को तुरन्त भेजो।" लिली ने आदेश दिया।

मुरारी ने श्रीधर की दूर जाती हुई पदचाप सुनी।

"यह जान कर खुशी हुई कि तुम मुरारी की पत्नी हो।" लिली माया से कह रही थी। "यकीन रक्खो, अब तुमसे यह धन्धा अपनाने के लिए नहीं कहूँगी।"

"सच···? तो······तो मैं यहाँ से जा सकती हूँ?" माया ने प्रसन्न होकर पूछा।

"हाँ! मगर अभी नहीं।" लिली का उत्तर था।

थोड़ी देर तक निस्तब्धता रही।

मुरारी की आँखों के सामने लिली और माया के चेहरे घूमने लगे।

फिर उसे जीत की भारी पदचाप समीप आती हुई सुनाई दी।

"क्या बात है, लिली?" आते ही जीत ने पूछा। "क्या यह छोकरी अब भी अपनी ज़िद पर अड़ी है?"

"जिसे तुम छोकरी समझ रहे हो वह मुरारी की बीवी है।" लिली ने कहा।

"सच? तब तो हमारा काम बहुत आसान हो गया।" जीत ने हर्षित होकर कहा। "देखें, अब मुरारी कैसे खामोश रहता है!"

"अब तो उसे अटैची का पता बताना ही पड़ेगा।" लिली ने विश्वास के साथ कहा।

माया ने जब अपना वास्तविक परिचय लिली को दिया था तब मुरारी के दिमाग में भी यही विचार आया था। वह समझ गया था कि जीत और लिली यह जान कर फूले न समायेंगे कि माया मेरी पत्नी है क्योंकि वे उसका प्रयोग मुझ से अटैची का पता जानने के लिए करेंगे। हो सकता है मेरी आँखों के सामने उसको यंत्रणायें दें।

"तुम लोग क्या कह रहे हो, मेरी समझ में नहीं आता।" माया परेशान स्वर में उनसे कह रही थी। "उनकी तो मृत्यु हो चुकी है, फिर भला अटैची का पता कैसे बतायेंगे?"

"और तुम्हीं क्या समझती हो ?" लिली चिढ़े स्वर में बोली। "जहाँ तक मुझे मालूम हुआ है तुम अभी तक क्वाँरी हो !"

"वह सूचना ग़लत थी। मैं विवाहिता हूँ।" माया का गम्भीर स्वर मुरारी के कानों से टकराया।

"तुम···तुम शादीशुदा हो···? फिर तुम्हारा पति कहाँ है ?" लिली के स्वर में बेचैनी ओर घबराहट थी। "क्या उसने तुम्हें छोड़ दिया ?"

"नहीं।" माया ने उत्तर दिया। "मैं ही अन्धी थी जो पति का मूल्य न आँक सकी। ने देवता थे। मैं पापिन थी। मैंने उन्हें धोखा दिया, पागलखाने भिजवाया और······और मैं ही उनकी मृत्यु का कारण हूँ।" माया सिसकने लगी। "मगर अब आँखें खुल गयी हैं। मेरी कमजोरी ही मेरी शक्ति बन गयी है। अब मैं जान दे दूँगी मगर किसी पर पुरुष को अपना शरीर न छूने दूँगी।"

मुरारी पर वज्रपात हुआ। माया यह सब क्यों कह बैठी ? यदि लिली समझ गयी कि वह मेरी पत्नी है तो······? और मुरारी की शंका सत्य सिद्ध हुयी। उसके कानों में लिली का स्वर पड़ा। वह कह रही थी—

"ओह, तो तुम मुरारी की पत्नी हो !"

"हाँ, हाँ ! मगर तुम उन्हें कैसे जानती हो ?" माया ने आतुर होकर पूछा।

"श्रीधर······।" लिली ने माया के प्रश्न का उत्तर न देकर श्रीधर को ज़ोर से पुकारा।

"अभी आया······।" मुरारी ने दूर से आती हुई श्रीधर की आवाज़ सुनी।

मुरारी की अन्तरात्मा काँप उठी। अब क्या होगा।

"कहिये, क्या आज्ञा है ?" पास आकर श्रीधर ने पूछा।

"मिस्टर जीत को तुरन्त भेजो।" लिली ने आदेश दिया।

मुरारी ने श्रीधर की दूर जाती हुई पदचाप सुनी।

"यह जान कर खुशी हुई कि तुम मुरारी की पत्नी हो।" लिली माया से कह रही थी। "यकीन रक्खो, अब तुमसे यह धन्धा अपनाने के लिए नहीं कहूँगी।"

"सच...? तो......तो मैं यहाँ से जा सकती हूँ?" माया ने प्रसन्न होकर पूछा।

"हाँ! मगर अभी नहीं।" लिली का उत्तर था।

थोड़ी देर तक निस्तब्धता रही।

मुरारी की आँखों के सामने लिली और माया के चेहरे घूमने लगे।

फिर उसे जीत की भारी पदचाप समीप आती हुई सुनाई दी।

"क्या बात है, लिली?" आते ही जीत ने पूछा। "क्या यह छोकरी अब भी अपनी ज़िद पर अड़ी है?"

"जिसे तुम छोकरी समझ रहे हो वह मुरारी की बीवी है।" लिली ने कहा।

"सच? तब तो हमारा काम बहुत आसान हो गया।" जीत ने हर्षित होकर कहा। "देखें, अब मुरारी कैसे खामोश रहता है!"

"अब तो उसे अटैची का पता बताना ही पड़ेगा।" लिली ने विश्वास के साथ कहा।

माया ने जब अपना वास्तविक परिचय लिली को दिया था तब मुरारी के दिमाग में भी यही विचार आया था। वह समझ गया था कि जीत और लिली यह जान कर फूले न समायेंगे कि माया मेरी पत्नी है क्योंकि वे उसका प्रयोग मुझ से अटैची का पता जानने के लिए करेंगे। हो सकता है मेरी आँखों के सामने उसको यंत्रणायें दें।

"तुम लोग क्या कह रहे हो, मेरी समझ में नहीं आता।" माया परेशान स्वर में उनसे कह रही थी। "उनकी तो मृत्यु हो चुकी है, फिर भला अटैची का पता कैसे बतायेंगे?"

"मुरारी की मौत नहीं हुई। वह ज़िन्दा है।" लिली बोली।

"तुम झूठ बोल रही हो; छल से मुझे बहकाना चाहती हो।" माया अविश्वास के स्वर में बोली!

"हाथ कंगन को आरसी क्या? अपनी ही आँखों से देख लोगी।" जीत का भारी स्वर गूँज उठा। "बगल की कोठरी में पड़ा है।"

"लेकिन……।"

"वह यहाँ से अटैची लेकर भागा था। उसमें रुपये और कुछ ज़रूरी कागज़ात हैं। हमें धोखा देना चाहता था। शायद यह नहीं जानता था कि हमसे टक्कर लेना हँसी-खेल नहीं, लोहे के चने चबाना है। जल्द ही हमारे चंगुल में फिर आ गया।" जीत भयंकर अट्टहास कर उठा।

"भगवान बहुत दयालु है! उसने तुम्हें भी भेज दिया।" लिली गम्भीर स्वर में बोली। "तुम उसे समझाओ कि हमारी चीज़ हमें दे दे।"

"हाँ! भलाई इसी में है कि सीधी तरह बता दे। याद रक्खो, तुम लोग इस कोठी से ज़िन्दा तभी जा सकते हो जब हमें अटैची मिल जाये।" जीत ने धमकी के स्वर में कहा।

"भगवान के लिए उन पर हाथ न उठाना।" माया गिड़गिड़ा कर बोली। "उन्हें तो पैसे का लोभ कभी न था। दूसरे की सोने की गगरी को छूना भी वे महापाप समझते हैं। तुम लोगों ने उन्हें समझने में ज़रूर भूल की है।"

"समय इन्सान को शैतान बना देता है। शायद तुम नहीं जानतीं कि अब उसमें ज़मीन-आसमान का फर्क हो गया है।" लिली ने कहा।

"जाओ और उसे समझाओ। जान-बूझ कर मौत के मुँह में कूदना ठीक नहीं।" जीत ने गम्भीरता से कहा।

जीत की धमकी सुन कर मुरारी का रोम-रोम काँप गया। वह समझ गया कि जीत जैसे भयंकर व्यक्ति के लिए नर-हत्या उसी प्रकार

साधारण बात है जिस प्रकार शिकारी के सिए पशु-पक्षी हत्या !

तभी मुरारी को लगा कि उसकी कोठरी का ताला खोला जा रहा है। ताला खुला और नत-शिर माया ने कोठरी में प्रवेश किया।

द्वार फिर बन्द हो गया।

"मुरारी की मौत नहीं हुई। वह ज़िन्दा है।" लिली बोली।

"तुम झूठ बोल रही हो; छल से मुझे बहकाना चाहती हो।" माया अविश्वास के स्वर में बोली।

"हाथ कंगन को आरसी क्या ? अपनी ही आँखों से देख लोगी।" जीत का भारी स्वर गूँज उठा। "बगल की कोठरी में पड़ा है।"

"लेकिन······।"

"वह यहाँ से अटैची लेकर भागा था। उसमें रुपये और कुछ ज़रूरी कागज़ात हैं। हमें धोखा देना चाहता था। शायद यह नहीं जानता था कि हमसे टक्कर लेना हँसी-खेल नहीं, लोहे के चने चबाना है। जल्द ही हमारे चंगुल में फिर आ गया।" जीत भयंकर अट्टहास कर उठा।

"भगवान बहुत दयालु है ! उसने तुम्हें भी भेज दिया।" लिली गम्भीर स्वर में बोली। "तुम उसे समझाओ कि हमारी चीज़ हमें दे दे।"

"हाँ ! भलाई इसी में है कि सीधी तरह बता दे। याद रक्खो, तुम लोग इस कोठी से ज़िन्दा तभी जा सकते हो जब हमें अटैची मिल जाये।" जीत ने धमकी के स्वर में कहा।

"भगवान के लिए उन पर हाथ न उठाना।" माया गिड़गिड़ा कर बोली। "उन्हें तो पैसे का लोभ कभी न था। दूसरे की सोने की गगरी को छूना भी वे महापाप समझते हैं। तुम लोगों ने उन्हें समझने में ज़रूर भूल की है।"

"समय इन्सान को शैतान बना देता है। शायद तुम नहीं जानतीं कि अब उसमें ज़मीन-आसमान का फर्क हो गया है।" लिली ने कहा।

"जाओ और उसे समझाओ। जान-बूझ कर मौत के मुँह में कूदना ठीक नहीं।" जीत ने गम्भीरता से कहा।

जीत की धमकी सुन कर मुरारी का रोम-रोम काँप गया। वह समझ गया कि जीत जैसे भयंकर व्यक्ति के लिए नर-हत्या उसी प्रकार

साधारण बात है जिस प्रकार शिकारी के लिए पशु-पक्षी हत्या !

तभी मुरारी को लगा कि उसकी कोठरी का ताला खोला जा रहा है। ताला खुला और नत-शिर माया ने कोठरी में प्रवेश किया।

द्वार फिर बन्द हो गया।

२०

※※※

माया कोठरी में प्रवेश करते समय विश्वास-अविश्वास के झूले पर झूल रही थी। उसे लिली और जीत की बातों पर पूरा यकीन न हुआ था। मगर जब उसने दीवार की धोक लगा कर बैठे हुये मुरारी को देखा तो हृदय हर्ष से गद्गद् हो गया। अन्धे को आँखें मिल गयीं। तभी उसने देखा कि मुरारी के हाथ-पैर मज़बूत रस्सी से बँधे हैं और कलाइयाँ लहू-लुहान हो रही हैं। रात भर सीलन भरी कोठरी में बन्द रहने के कारण माया की रग-रग दुख रही थी मगर उस समय वह अपनी पाड़ी भूल गयी। झपट कर मुरारी के हाथ-पैर खोले। आँखों से अविरल अश्रु-धार बह रही थी; कण्ठ अवरुद्ध था।

मुरारी समझाते हुये धीमे स्वर में बोल—'आँसू पोंछ डालो, माया! ज़माने की ठोकरों ने तुम्हारी आँखें खोल दी हैं। सुबह का भूला अगर शाम को घर आ जाये तो भूला नहीं कहलाता।''

"मेरे अपराध अक्षम्य हैं। मैं क्षमा नहीं, दण्ड की याचना करती हूँ।" माया सिसकती हुयी बोली। "अपने हाथों से मेरा गला घोंट दो। मैं ज़िन्दा रहने योग्य नहीं हूँ।" और माया मुरारी के पैरों से चिपट गयी।

"सच्चा प्रायश्चित ही सबसे बड़ा दण्ड होता है।" मुरारी गम्भीर स्वर में बोला। "प्रायश्चित के आँसुओं ने तुम्हारे अन्दर का कलुष धो दिया है।"

माया मुरारी के पैरों से लिपटी रही और उसी प्रकार बिलख-बिलख कर रोती रही।

"उठो, माया।" मुरारी उसकी बाँहें पकड़ कर उठाता हुआ बोला। "अपराध व्यक्ति का नहीं; परिस्थितियों का होता है।" V. Best

मुरारी ने अपने हाथ से माया के आँसू पोंछे। फिर धीमे स्वर में पूछा—"तुम इन लोगों के जाल में कैसे फँस गयीं?"

माया ने रो-रो कर अपनी राम-कहानी सुना दी।

मुरारी ने अपने विषय में उसे कुछ नहीं बताया। माया ने पूछा भी नहीं। उसके लिए तो यही यथेष्ट था कि वह जीवित है।

मुरारी ने उठने की कोशिश की। पैर अकड़ गये थे। कठिनाई का अनुभव हुआ। माया ने सहारा देकर उसे खड़ा किया। दोनों धीरे-धीरे द्वार की ओर बढ़े। द्वार के निकट पहुँच कर मुरारी ने द्वार पर दस्तक दी। द्वार खुल गया। लिली और जीत बाहर खड़े मुस्करा रहे थे।

"मैं अटैची का पता बता दूँगा।" मुरारी ने टूटे हुये स्वर में कहा। "मगर पहले भोजन······।"

पलक मारते ही दोनों के लिए भोजन आ गया। कोठरी में ही बैठ कर दोनों ने भोजन किया। दोनों के शरीरों में नयी जान आयी। आँतों की कुलबुलाहट बन्द हो गयी।

जैसे ही नौकर थाली-गिलास ले कर गया, जीत ने मुरारी से प्रश्न किया—"अब बताओ! कहाँ है अटैची?"

"कानपुर के एक बैंक में।"

'किस बैंक में?"

"नाम जान कर क्या करोगे? अटैची 'लाकर' में बन्द है। चाभी मेरे पास है। जब तक मैं नहीं जाऊँगा, अटैची नहीं मिलेगी।"

लिली और जीत ने एक दूसरे की ओर देखा। आँखों ही आँखों में मंत्रणा हुई फिर लिली बोली—"चाभी हमें दे दो। हम कोशिश करेंग कि अटैची हमें मिल जाये।"

"चाभी देने से कु छ नहीं होगा। बैंक का मैनेजर मेरे सिवा किसी

२०

***

माया कोठरी में प्रवेश करते समय विश्वास-अविश्वास के झूले पर झूल रही थी। उसे लिली और जीत की बातों पर पूरा यकीन न हुआ था। मगर जब उसने दीवार की धोक लगा कर बैठे हुये मुरारी को देखा तो हृदय हर्ष से गद्‌गद् हो गया। अन्धे को आँखें मिल गयीं। तभी उसने देखा कि मुरारी के हाथ-पैर मज़बूत रस्सी से बँधे हैं और कलाइयाँ लहू-लुहान हो रही हैं। रात भर सीलन भरी कोठरी में बन्द रहने के कारण माया की रग-रग दुख रही थी मगर उस समय वह अपनी पाड़ी भूल गयी। झपट कर मुरारी के हाथ-पैर खोले। आँखों से अविरल अश्रु-धार बह रही थी; कण्ठ अवरुद्ध था।

मुरारी समझाते हुये धीमे स्वर में बोल—'आँसू पोंछ डालो, माया ! ज़माने की ठोकरों ने तुम्हारी आँखें खोल दी हैं। सुबह का भूला अगर शाम को घर आ जाये तो भूला नहीं कहलाता।"

"मेरे अपराध अक्षम्य हैं। मैं क्षमा नहीं, दण्ड की याचना करती हूँ।" माया सिसकती हुयी बोली। "अपने हाथों से मेरा गला घोंट दो। मैं ज़िन्दा रहने योग्य नहीं हूँ।" और माया मुरारी के पैरों से चिपट गयी।

"सच्चा प्रायश्चित ही सबसे बड़ा दण्ड होता है।" मुरारी गम्भीर स्वर में बोला। "प्रायश्चित के आँसुओं ने तुम्हारे अन्दर का कलुष धो दिया है।"

माया मुरारी के पैरों से लिपटी रही और उसी प्रकार बिलख-बिलख कर रोती रही।

"उठो, माया।" मुरारी उसकी बाँहें पकड़ कर उठाता हुआ बोला। "अपराध व्यक्ति का नहीं; परिस्थितियों का होता है।" V. Best

मुरारी ने अपने हाथ से माया के आँसू पोंछे। फिर धीमे स्वर में पूछा—"तुम इन लोगों के जाल में कैसे फँस गयीं?"

माया ने रो-रो कर अपनी राम-कहानी सुना दी।

मुरारी ने अपने विषय में उसे कुछ नहीं बताया। माया ने पूछा भी नहीं। उसके लिए तो यही यथेष्ट था कि वह जीवित है।

मुरारी ने उठने की कोशिश की। पैर अकड़ गये थे। कठिनाई का अनुभव हुआ। माया ने सहारा देकर उसे खड़ा किया। दोनों धीरे-धीरे द्वार की ओर बढ़े। द्वार के निकट पहुँच कर मुरारी ने द्वार पर दस्तक दी। द्वार खुल गया। लिली और जीत बाहर खड़े मुस्करा रहे थे।

"मैं अटैची का पता बता दूंगा।" मुरारी ने टूटे हुये स्वर में कहा। "मगर पहले भोजन······।"

पलक मारते ही दोनों के लिए भोजन आ गया। कोठरी में ही बैठ कर दोनों ने भोजन किया। दोनों के शरीरों में नयी जान आयी। आँतों की कुलबुलाहट बन्द हो गयी।

जैसे ही नौकर थाली-गिलास ले कर गया, जीत ने मुरारी से प्रश्न किया—"अब बताओ! कहाँ है अटैची?"

"कानपुर के एक बैंक में।"

'किस बैंक में?"

"नाम जान कर क्या करोगे? अटैची 'लाकर' में बन्द है। चाभी मेरे पास है। जब तक मैं नहीं जाऊँगा, अटैची नहीं मिलेगी।"

लिली और जीत ने एक दूसरे की ओर देखा। आँखों ही आँखों में मंत्रणा हुई फिर लिली बोली—"चाभी हमें दे दो। हम कोशिश करेंगे कि अटैची हमें मिल जाये।"

"चाभी देने से कुछ नहीं होगा। बैंक का मैनेजर मेरे सिवा किसी

और को 'लाकर-रूम' में न घुसने देगा।"

जीत को शंका हुई कि मुरारी कोई चाल चल रहा है। बिगड़ कर बोला—"हमें धोखा देने की कोशिश मत करो। ठीक-ठीक बताओ, अटैची कहाँ है?"

"मैं ठीक कह रहा हूँ। तुम मेरे साथ चलो। तुम्हें अटैची दे दूँगा।"

"ठीक है। मगर याद रखना अगर धोखा देने की कोशिश की तो अच्छा न होगा।" जीत भयंकर स्वर में बोला। "तुम मेरे साथ कानपुर चलोगे। माया यहीं रहेगी। जब हमें अटैची मिल जायेगी तो हम माया को छोड़ देंगे।"

"मुझे यह शर्त मंजूर नहीं है।" मुरारी ने विरोध किया। "माया भी हमारे साथ चलेगी। तुम अटैची लेकर चले आना। हम दोनों रुक जायेंगे।"

जीत ने फिर लिली की ओर देखा। लिली की सहमति पाकर बोला—"जैसी तुम्हारी मर्जी! मैं दस मिनट में तैयार होता हूँ।"

कोठरी का द्वार बाहर से वन्द करके जीत और लिली चले गये। कोठरी में अँधेरा हो गया।

माया ने मुरारी का हाथ कस कर पकड़ लिया। उसका दुर्बल हृदय भावी आशंका से पीपल के पत्ते की तरह काँप रहा था।

मुरारी बैठ गया और फिर मौन-निस्पन्द बैठा रहा, मानो वह जीता जागता इन्सान नहीं, कोई लाश या पत्थर की प्रतिमा हो।

माया के मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार आ-जा रहे थे। वह मुरारी के प्रति चिन्तित थी। सोच रही थी कि कानपुर में कोई दुर्घटना न घटित हो जाये।

'तुमने अटैची का सच्चा पता बता दिया है न?" माया ने भीत स्वर में पूछा।

"हाँ !" कह कर मुरारी मौन हो गया।

"मेरा दिल घबरा रहा है।" कह कर माया उससे सट कर बैठ गयी।

"घबराओ मत।" मुरारी समझाते हुये बोला। 'भगवान सब ठीक करेगा।"

मुरारी की आँखों के सामने उमा का धुँधला चेहरा घूम रहा था। वह यह कैसे भूल सकता था कि उमा को लिली ने विष दिया था और उसकी धधकती हुई चिता को साक्षी करके उसने प्रतिशोध लेने का प्रण किया था। अब भी उसके सामने चिता की लपटें उठ रही थीं और उन लपटों से उमा की तरह अनेक लड़कियों के चेहरे झाँक रहे थे।

कुछ देर बाद ही जीत की भारी और क्रूर पदचाप सुनाई दी। माया उसी प्रकार काँप उठी जैसे मृत्यु-दण्ड पाया हुआ क़ैदी वार्डर की भारी पदचाप सुन कर काँप जाता है। माया ने सहम कर मुरारी के दोनों हाथ पकड़ लिये।

द्वार खुला। जीत ने मुस्करा कर कहा—"चलिये, जनाब ! बाहर कार आपका इन्तज़ार कर रही है।"

माया और मुरारी एक दूसरे का हाथ दृढ़ता से पकड़े हुये कोठरी के बाहर आ गये।

२१

***

एक बड़ी 'स्टूडी-बेकर' कार लखनऊ शहर की जन-संकुल सड़कों को बहुत पीछे छोड़ कर कानपुर की ओर तीव्र वेग से जा रही थी। कार की पिछली सीट पर उदास माया बैठी थी। जीत गाड़ी चला रहा था और मुरारी उसकी बगल में बैठा था। कार में पूर्ण मौन व्याप्त था। माया का मन अन्दर ही अन्दर घुट रहा था। वह परेशान थी, पर अपनी परेशानी को व्यक्त नहीं कर रही थी। मन-ही-मन भगवान से मुरारी की रक्षा के लिए विनती कर रही थी।

मुरारी की दृष्टि सड़क पर थी पर मस्तिष्क भाँति-भाँति की योजनायें बना रहा था। वह अटैची जीत को नहीं देना चाहता था। उसका अटल निश्चय था कि अटैची में रक्खे हुये काग़ज़ात पुलिस को सौंप देगा। मगर यह किस तरह सम्भव है, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। वह एक योजना बनाता, फिर उसे बिगाड़ देता—जैसे बच्चा रेत में घरौंदे बनाता-बिगाड़ता है। सबसे बड़ी समस्या माया की सुरक्षा की थी। वह कोई ऐसा कदम नहीं उठाना चाहता था जिससे माया का जीवन खतरे में पड़े। काफी सोच-विचार के बाद एक योजना उसके मन में घर कर गयी। उसने निश्चय किया कि चाहे जो कुछ हो वह उसे कार्यान्वित अवश्य करेगा।

कार पूरे वेग से जा रही थी। नवाबगंज और उन्नाव को पीछे छोड़ कर वह शीघ्र ही गंगा-पुल पर पहुँच गयी। पुल पार करके कार कानपुर शहर की ओर बढ़ने लगी।

"कार किधर मोड़ूँ ?" छावनी के एक चौराहे पर पहुँच कर जीत ने पूछा।

"सामने चले चलो। हमें पंजाब-बैंक पहुँचना है।"

और दस मिनट बाद ही कार पंजाब-बैंक के सामने पहुँच कर रुक गयी।

"तुम यहीं ठहरो। मैं अभी अटैची लेकर आता हूँ।" मुरारी ने कार से उतर कर जीत से कहा। फिर कार की पिछली खिड़की के पास जाकर बोला—"आओ, माया !"

"माया मेरे पास रहेगी। आगे आकर बैठो, माया।" जीत ने आज्ञा दी।

माया जीत के पास जाकर बैठ गयी।

"अब जाओ तुम।" जीत मुरारी से बोला। "मगर इतना ध्यान रखना कि माया मेरे पास है और मैं जेब में हमेशा पिस्तौल रखता हूँ। अगर मुझे ज़रा भी शक हुआ कि तुम धोखा देना चाहते हो तो मैं माया को गोली से उड़ा दूँगा फिर चाहे मुझे फाँसी पर क्यों न चढ़ना पड़े।"

"इसकी ज़रूरत ही न पड़ेगी। मैं अभी आता हूँ अटैची लेकर।" कहता हुआ मुरारी माया की ओर देखे बिना ही शीघ्रता से बैंक के फाटक में घुस गया।

मुरारी को एक ओर माया की चिन्ता थी और दूसरी ओर उसकी आँखों के सामने उन असंख्य लड़कियों की दुर्दशा का चित्र घूम रहा था जिन्हें अपना पेट भरने के लिए शरीर का व्यवसाय करना पड़ रहा था। उसके हृदय में तीव्र द्वन्द्व चल रहा था। माया जीत के चंगुल में थी। यदि उसे ज़रा भी शक हो गया तो माया का जीवन खतरे में पड़ने की पूरी आशंका थी। वह जानता था कि जीत के लिए पिस्तौल का घोड़ा दबाना कठिन कार्य नहीं है। मुरारी की बुद्धि ने कहा—"क्यों बेकार की बला मोल लेते हो ? अटैची जीत को देकर अपना और माया का पिन्ड

छुड़ाओ। तुम्हें दुनिया भर का ठेका लेने की क्या गरज़ है ?"

तभी हृदय के कोने से भावना बोल पड़ी—"स्वार्थी न बनो। अनगिन अबलाओं की भलाई के लिए यदि एक माया का जीवन चला भी जाये तो क्या है ?"

बुद्धि फिर तर्क करने लगी मगर मुरारी ने उधर ध्यान न दिया। भावना की बात उसे जँच गयी और उसने निर्णय कर लिया कि वह अपनी योजना को अवश्य कार्यान्वित करेगा और लाखों अभागिन युवतियों के कल्याण और उद्धार के लिए माया के जीवन की भी चिन्ता न करेगा।

इस निश्चय से उसकी गति में दृढ़ता आ गयी। वह शीघ्रता से मैनेजर के कमरे में गया।

"मैं अपना 'लाकर' खोलना चाहता हूँ।" कह कर मुरारी ने अपने 'लाकर' का नम्बर बता दिया।

मैनेजर ने एक रजिस्टर पर उसके हस्ताक्षर कराये और फिर उसके साथ 'लाकर-रूम' की ओर जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

"मगर पहले मैं पुलिस-सुपरिन्टेंडेन्ट से बात करना चाहता हूँ।" कह कर उसने मेज पर रक्खे फोन का चोंगा उठा लिया। "क्या आप उनका नम्बर बताने की कृपा करेंगे ?"

मैनेजर ने नम्बर बता दिया।

"एस० एस० पी० स्पीकिंग।" नम्बर मिलाने के बाद उधर से आवाज़ आयी।

"मैं पंजाब-बैंक से बोल रहा हूँ। मेरे पास कुछ ज़रूरी काग़ज़ात हैं जिन्हें मैं आपको देना चाहता हूँ। मगर एक व्यक्ति धमकी दे रहा है कि यदि मैंने काग़ज़ात उसे नहीं सौंपे तो वह मेरी पत्नी को मार डालेगा।" मुरारी एक साँस में ही कह गया।

"आप किस ब्रान्च से बोल रहे हैं और आपका नाम क्या है ?" उधर से एस० एस० पी० ने पूछा।

"माल रोड की ब्रान्च से। मेरा नाम मुरारी है। वह व्यक्ति बैंक के सामने अपनी कार में बैठा है। मेरी पत्नी उसी के पास है। जी···? स्टूडीबेकर गाड़ी है—नीले रंग की। कागज़ात···? वे बैंक के लाकर में हैं। वह बाहर उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहा है। आप कृपा करके जल्दी कुछ कीजिये नहीं तो······।"

"आप फिक्र न करें।" उधर से एस० एस० पी० का आश्वासन-पूर्ण स्वर आया। "मैं अभी पहुँचता हूँ। देखिये, आप 'लाकर' से काग़-ज़ात निकाल लीजिये। फिर कुछ देर अन्दर ही रहिये। दस मिनट बाद बाहर जाइये। अगर आपको उस कार के आस-पास कोई सफेद बालों वाला बूढ़ा भिखारी दिखाई दे तो समझ लीजिये कि हम तैयार हैं। आप कागज़ात उस व्यक्ति को सौंप कर अपनी पत्नी को कार से उतार लीजिये। बाकी काम हम पर छोड़ दीजिये।"

"देखिये, ज़रा सावधानी से काम लीजियेगा। उसके पास पिस्तौल है।" मुरारी ने चेतावनी दी।

"आप हमारी फिक्र न करें।" एस० एस० पी० की हँसी सुनाई दी और फिर फोन का सम्बन्ध कट गया।

चोंगा रख कर मुरारी मैनेजर के साथ 'लाकर-रूम' में गया। मैने-जर ने अपनी कुंजी से ताला खोल कर कहा—"अब आप अपनी चाभी से 'लाकर' खोल लीजिये।"

मुरारी ने कोट की आस्तीन में बनी गुप्त जेब से चाभी निकाल कर ताले में लगायी।

"कैसे कागज़ात हैं इसमें?" मैनेजर ने जिज्ञासा से पूछा। "किसी पोलिटीकल-प्लाट के कनेक्शन के तो नहीं हैं?"

"जी नहीं।" मुरारी मुस्करा कर बोला। 'दो एक दिन में आपको मालूम हो जायेगा।

मैनेजर मुरारी को 'लाकर-रूम' में अकेला छोड़ कर अपने कमरे में

चला गया। मुरारी ने 'लाकर' खोल कर अटैची निकाली और फिर 'लाकर' बन्द कर दिया। दाहिने हाथ में अटैची लटका कर वह फिर मैनेजर के कमरे में गया।

"यह चाभी लीजिये। अब मुझे 'लाकर' की ज़रूरत नहीं है।" कह कर उसने चाभी मेज़ पर रख दी।

मैनेजर ने चाभी उठा कर मेज़ की दराज में रख दी।

मुरारी कुर्सी पर बैठ गया। उसकी दृष्टि दीवार पर लगी बिजली से चलने वाली घड़ी पर लगी थी। एक-एक मिनट कठिनाई से कट रहा था। मैनेजर ने सिगरेट की डिब्बी उसके सामने बढ़ायी। मुरारी ने धन्यवाद देकर एक सिगरेट सुलगा ली।

ठीक दस मिनट बाद वह उठा। अटैची को दृढ़ता से बगल में दबा लिया और कमरे से निकल कर बाहर की ओर चल दिया। कार अपने स्थान पर खड़ी थी। उसे देख कर जीत और माया दोनों की आँखें हर्ष से चमक उठीं।

सफेद बालों वाला एक बूढ़ा भिखारी कार के पास ही चक्कर लगा रहा था। मुरारी ने मन-ही-मन भगवान को धन्यवाद दिया।

"यह लो अटैची।" कह कर मुरारी ने अटैची जीत को थमा दी। "और यह रही इसके ताले की चाभी।"

जीत ने मुरारी के हाथ से छोटी कुंजी ले ली। व्यग्रता से ताला खोला। अटैची नोटों से भरी थी। काग़ज़ात भी थे। जीत ने काग़ज़ात निकाल कर देखे। जब सब प्रकार से मन भर गया तो माया से बोला—

"अब तुम आज़ाद हो।"

माया कार से उतर आयी। जीत भी उतरा। पीछे जाकर उसने कार का 'लगेज-बूट' खोला और माया का बिस्तर तथा सूटकेस निकाल कर ज़मीन पर रख दिया। 'बूट' बन्द करके वह अपने स्थान पर बैठ गया और मुरारी की ओर उन्मुख होकर बोला—"गुड बाई, फ्रेन्ड! नो इल फीलिंग्स।"

और फिर कार एक धीमे झटके के साथ आगे बढ़ गयी। मुरारी माया के पास खड़ा होकर कार की तरफ देखने लगा। उसे यह नहीं ज्ञात था कि एस० एस० पी० की क्या योजना है।

कार कठिनाई से सौ क़दम गयी होगी कि समीप के मोड़ से पुलिस की जीप गाड़ी प्रकट हुई और जीत की कार के ठीक सामने रुक गयी। जीत ने कार रोक दी। उसी समय आस-पास की गलियों से दर्जनों सिपाहियों ने निकल कर जीत की कार को घेर लिया। जीत इस अचानक घटना से घबड़ा गया। उसका हाथ कोट की जेब की तरफ बढ़ा मगर इससे पहले कि वह पिस्तौल निकाल सके, उसके हाथों में हथकड़ी डाल दी गयी।

माया को वहीं रुकने का आदेश देकर मुरारी तेज़ी से आगे की ओर दौड़ा। पुलिस-जीप के पास रुक कर हाँफते स्वर में कहा—"मेरा नाम मुरारी है। कार में जो अटैची है उसी में काग़ज़ात हैं।"

एस० एस० पी० ने अटैची अपने कब्जे में ले ली। सड़क दर दर्शकों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। पुलिस जीत को कोतवाली ले गयी। माया और मुरारी को भी कोतवाली जाना पड़ा।

एस० एस० पी० मुरारी को अपने दफ्तर में ले गया। मेज़ पर काग़ज़ खोल कर फैलाते हुये कहा—"आप इन्हीं काग़ज़ातों का ज़िक्र कर रहे थे, मिस्टर मुरारी? इनमें तो कुछ पतों और नामों के अलावा और कुछ नहीं।"

"ये नाम उन व्यक्तियों के हैं जो लड़कियों को बेचने वाले दल के प्रधान हैं।" मुरारी गम्भीर स्वर में बोला। "और ये पते इस देशव्यापी दल के प्रमुख अड्डों के हैं।"

एस० एस० पी० ने अपनी नुकीली आँखों से मुरारी की ओर देखा। फिर प्रश्न किया—"आपका इस दल से क्या सम्बन्ध है और आपके अधिकार में ये काग़ज़ात कैसे आये?"

"परिस्थितियों की चक्की में पिस कर मैं इस दल के जाल में फँस गया था। मैं लखनऊ से यह अटैची लेकर भागा हूँ। भगवान के लिए अब शीघ्र ही छापे मारने का प्रबन्ध कीजिये। देर होने से वे सतर्क हो जायेंगे और मेरा किया-कराया धूल में मिल जायेगा।"

"आप निश्चिन्त रहें। अभी सब प्रबन्ध होता है। हाँ, आप ठहरेंगे कहाँ ?"

'अगर ठहरना जरूरी है तो किसी होटल में ठहर जाऊँगा क्योंकि इस समय तो मैं एकदम बेकार और बेघरबार हूँ।"

"तब आप सपत्नीक मेरे बँगले पर ठहरिये। दो-एक दिन में कुछ न कुछ प्रबन्ध हो जायेगा।" कह कर एस० एस० पी ने एक सिपाही को आदेश दिया कि वह माया और मुरारी को जीप द्वारा उनके बँगले पर पहुँचा दे।

और उसके बाद वायरलेस द्वारा अत्यावश्यक और गुप्त सन्देश भेजे जाने लगे

२२

एस० एस० पी० का परिवार बाहर गया हुआ था इसलिये माया और मुरारी उनकी कोठी में निःसंकोच ठहर गये । नौकरों ने उनकी खूब आवभगत की । मगर दिन भर मुरारी को यह ज्ञात न हो सका कि पुलिस ने क्या कार्यवाही की है। वह बेचैनी से एस० एस० पी० के आने की प्रतीक्षा करता रहा।

माया के अन्तर में अजीब भावनायें उदित हो रही थीं । यदि मुरारी उसे दण्ड देता, भला-बुरा कहता तो और बात थी मगर उसने तो उसे क्षमा कर दिया था । यह क्षमा उसके लिए सबसे बड़े दण्ड के समान सिद्ध हुई थी। उसकी अन्तरात्मा उसे धिक्कार रही थी। मुरारी से बात करने में संकोच का अनुभव होता था । दिन भर वह बहुत बेचैन रही।

रात को दस बजे एस० एस० पी० आया । मुरारी ने व्यग्रता से पूछा कि छापे मारने के सम्बन्ध में क्या प्रबन्ध हुआ है। एस० एस० पी० ने हँस कर कह दिया कि सुबह मालूम हो जायेगा।

सुबह के समाचार-पत्र छापों के विवरण से भरे पड़े थे । रात में देश के सैकड़ों अड्डों पर पुलिस ने छापे मारे थे । चार-पाँच सौ व्यक्ति गिरफ्तार हुये थे और हजारों लड़कियाँ बरामद हुई थीं। राज्य-सरकारों ने लड़कियों को अपने-अपने राज्यों के सरकारी महिला-आश्रमों में रखने की व्यवस्था करदी थी । समाचार-पत्रों ने भारत-सरकार से ज़ोरदार शब्दों में शरीर के अनैतिक व्यापार पर रोक लगाने की अपील का थी।

मुरारी ने समाचार पढा तो प्रसन्न हो उठा। उसका कार्य पूरा हो

गया था। अभागिन बहनों को नरक से मुक्ति मिल गयी थी । उसने सन्तोष की साँस ली ।

"आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ । मेरा प्रतिशोध पूरा हुआ।" मुरारी ने माया से कहा।

माया मौन रही। प्रतिशोध की बात उसकी समझ में न आयी।

उसी समय एस० एस० पी० ने कमरे में प्रवेश किया। मुस्करा कर कहा—"अब तो आप खुश हैं, मिस्टर मुरारी ?"

"मेरा श्रम सफल हो गया । क्या आप बता सकते हैं कि लिली भी गिरफ्तार हुई या नहीं ?"

"उसने गिरफ्तार होने से मर जाना अच्छा समझा।"

"क्या......?"

"हाँ ! जैसे ही पुलिस कोठी में घुसी, उसने खुदकशी करली।"

और मुरारी को लगा कि जैसे वह जीत कर भी हार गया है और लिली हार कर भी जीत गयी है।

"आपके इस काम के लिए सरकार बहुत कृतज्ञ है ।" तभी एस० एस० पी० ने कहा। "मैंने शिफारिश की है कि जो रुपया अड्डों पर प्राप्त हुआ है उसमें से बीस हज़ार आपको पुरस्कार स्वरूप दिया जाये ।"

"मुझे रुपये की चाह नहीं है। हाँ, यदि......।" और मुरारी माया की ओर देखने लगा ।

"हम भूखे-नंगे रह लेंगे पर पाप की कमाई की एक कौड़ी भी न लेंगे।" माया ने दृढ़ता से कहा।

मुरारी को माया का उत्तर सुन कर हर्ष हुआ।

"ऐसे कब तक काम चलेगा ? कोई नौकरी कर लो। चाहो तो खुफिया-विभाग में आज नौकरी दिला दूं !" एस० एस० पी० ने कहा।

"आपकी कृपा के लिए धन्यवाद।" मुरारी ने उत्तर दिया। "सच तो यह है कि अब शहरों से मन ऊब गया है। शहरी सभ्यता पीतल पर

लम्मे की तरह है। यहाँ की तड़क-भड़क, चमक-दमक सब झूठी है।"

"शहरों में मनुष्य नहीं, मनुष्य के रूप में जंगली जानवर रहते हैं।" भी माया बोल पड़ी। "जो एक दूसरे को निगलने के लिए हमेशा मुँह ये रहते हैं।"

"फिर क्या इरादा है?" एस० एस० पी० ने पूछा।

"किसी गाँव में जाकर रहेंगे। मेहनत-मज़दूरी करेंगे और सुख-न्ति से रहेंगे।" मुरारी का उत्तर था।

"हम गाँव वालों की सेवा करेंगे।" माया न उत्साह से कहा। "वे पेट भरने के लिए अन्न दे ही देंगे।"

एस० एस० पी० के चेहरे पर प्रशंसा के भाव उभर आये।

और उसी दोपहर को मुरारी और माया एक दूसरे का हाथ पकड़ गाँव की ओर जा रहे थे। उनके चेहरों पर उत्साह था, गति में श्वास की दृढ़ता थी; पीछे कुछ दूरी पर सिर पर सूटकेस और बिस्तर वे एक मजदूर था।

उनकी मंज़िल उनके सामने थी और वे शीघ्रता से बढ़े जा रहे —उसी तरह जिस तरह दिन भर इधर-उधर भटकने के बाद शाम को छी का जोड़ा अपने नीड़ की ओर जाता है।

दोनों आगे बढ़ रहे थे और प्रतिपल गुनाहों की वह काली दुनिया छे छूट रही थी जहाँ वासना का सागर दहाड़ता है और विलास की रें अँगड़ाई लेती हैं; जहाँ की हवा में तीखे ज़हर की तरह छल-फरेब और जहाँ असत्य का धुँआ छाया रहता है; जहाँ दिन के उजाले में न और इन्सानियत का गला घोंटा जाता है और रात के अँधेरे में इह रूप और मासूम जवानी का सौदा होता है; जहाँ रोटी के टुकड़े लिए ग़रीबी अमीरी के हाथ अपना जिस्म बेचती है; जहाँ की गलियों, कों और इमारतों से दिन-रात एक ही आवाज़ आती रहती है—

1022
8.

4000.

15,000 = 3000 — 2 yrs.

5000 - Cm

12,000

$$15000 \times \left(1 + \frac{1}{10}\right)^{1/12}$$

12

42

ख।